मैत्रेयी पुष्पा : कथा साहित्य का सांस्कृतिक अनुशीलन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी से
हिन्दी साहित्य विषय में पी-एच0डी0
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2007
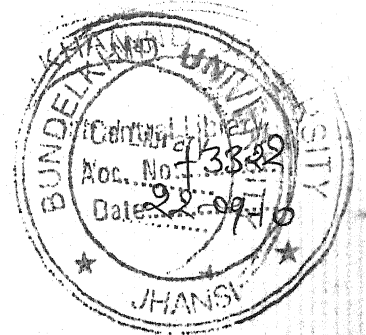
डॉ० एस० एन० सोनकिया
पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष (हिन्दी)
एस० एन० महाविद्यालय
अड़ोखर भिण्ड (म० प्र०)

शोध पर्यवेक्षक :
डॉ० श्यामसुन्दर सौनकिया
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
श्रीमंत विजयाराजे सिंधिया महाविद्यालय
अड़ोखर, जिला-भिण्ड (म0प्र0)

सह मार्गदर्शक :
डॉ० डी०पी० श्रीवास्तव
भूतपूर्व – हिन्दी प्राध्यापक
डी0वी0सी0, उरई

अनुसंधित्सु :
मीनाक्षी
कु० मीनाक्षी
आत्मजा : श्री ओमप्रकाश शर्मा
तोपखाना, जालौन (उ0प्र0)
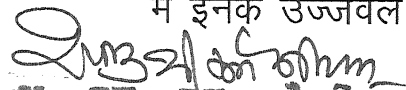
प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कु0 मीनाक्षी ने मेरे निर्देशन में **"मैत्रेयी पुष्पा : कथा साहित्य का सांस्कृतिक अनुशीलन"** विषय पर अपना शोध–कार्य पूर्ण किया है।

शोधार्थिनी ने मेरे निर्देशन में 200 दिन की उपस्थिति देकर शोध–कार्य को विधिवत् सम्पन्न किया।

शोध–प्रबन्ध विश्वविद्यालय की शोध–उपाधि से सम्बन्धित अध्यादेश की वांछित नियमावली को पूर्ण करता है तथा विषयवस्तु और भाषाशिल्प दोनों ही दृष्टियों से परीक्षकों के सम्मुख प्रस्तुत करने योग्य है।

मैं इनके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

डॉ० एस० एस० सौनकिया
आचार्य एवं अध्यक्ष (हिन्दी)
एस० व्ही० एम० महाविद्यालय
अड़ोखर भिण्ड (म० प्र०)

मार्गदर्शक
डॉ0 श्यामसुन्दर सौनकिया
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
श्रीमंत विजयाराजे सिंधिया,
महाविद्यालय, अड़ोखर–भिण्ड (म0प्र0)

सहमार्गदर्शक
डॉ0 डी0पी0 श्रीवास्तव
पूर्व हिन्दी प्राध्यापक
डी0वी0सी0 उरई (उ0प्र0)

शोधार्थी का घोषणा-पत्र

मैं घोषणा करती हूं कि **"मैत्रेयी पुष्पा : कथा साहित्य का सांस्कृतिक अनुशीलन"** शीर्षक शोध–प्रबन्ध डॉ0 श्यामसुन्दर सौनकिया के मार्गदर्शन में किया गया सर्वथा मौलिक प्रबन्ध है तथा मेरे द्वारा किये गये शोध कार्य पर आधारित है। मेरे पूर्ण ज्ञान से इस शीर्षक पर किसी भी विश्वविद्यालय और शैक्षणिक संस्थान में अभी तक कोई कार्य नहीं हुआ।

अनुसंधित्सु

मीनाक्षी

कु0 मीनाक्षी

अनुसंधान क्रम एवं आभार

दयानन्द वैदिक महाविद्यालय, उरई के पुस्तकालय भवन में आयोजित विचार संगोष्ठी में डॉ0 अशोक बाजपेयी, डॉ0 मैनेजर पाण्डेय एवं मैत्रेयी पुष्पा के व्याख्यान सुनने के बाद मन में एक बलवती धारणा जाग्रत हुई कि मैं मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य पर शोध कार्य करूँ। यह लालसा जब मैंने आदरणीय डॉ0 श्याम सुन्दर सौनकिया के समक्ष रखकर उनसे शोध–निर्देशन हेतु विनम्र अनुरोध किया तो बड़ी सह्रदयता पूर्वक उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी तथा प्रस्तावित विषय की विस्तृत रूप–रेखा तैयार करने में मेरी मदद की।

मैत्रेयी पुष्पा का कथा–साहित्य बुन्देलखण्ड की धरती का समाज और उसकी संस्कृति का ज्वलंत दस्तावेज है। इनका कथा–साहित्य जितना इस अंचल के भूगोल को समेटे हुए हैं, उतने से अधिक इस अंचल के जन–जीवन की रूढ़ियों और परम्पराओं में बँधा हुआ है। बुन्देलखण्ड का समाज सदियों से जिस संस्कृति के अनुरूप जीवन–यापन कर रहा है, वह संस्कृति की अंचल विशेष के समाज को प्राणवान बनाये हुए है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मैत्रेयी पुष्पा के इदन्नमम, बेतवा बहती रही, झूलानट, चाक, अल्मा कबूतरी, कस्तूरी कुण्डल बसै, कही ईसुरी फाग, विजन तथा अगनपाखी उपन्यासों एवं गोमा हँसती है, ललमनियाँ तथा चिह्नार कहानी संग्रहों को अनुशीलन का आधार बनाया गया है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से शोध प्रबन्ध को आठ अध्यायों में विभाजित किया गया है। अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत संदर्भ ग्रन्थों की सूची दी गई है।

शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में लेखिका के व्यक्तित्व और कृतित्व का विश्लेषण है। व्यक्तित्व के अन्तर्गत उनके जन्म, परिवार, सामाजिक–आर्थिक परिवेश, शिक्षा, संस्कार, व्यक्तित्व और स्वभाव का उल्लेख किया गया है। कृतित्व के अन्तर्गत उनके सभी उपन्यास एवं कहानी संग्रहों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है। अध्याय के अंत में लेखिका को उपलब्धियों पर प्राप्त सम्मान एवं पुरस्कारों का विवरण है।

द्वितीय एवं तृतीय अध्यायों के अन्तर्गत मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना का विवेचन प्रस्तुत है। सामाजिक चेतना का तात्पर्य तथा उसके आयामों का विश्लेषण करते हुए तीन प्रमुख संघटक तत्वों (परिस्थितिगत, संस्कारगत एवं प्रभाव जनित) का विवेचन किया गया है। सामाजिक चेतना के प्रभाव को व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना, जन–जागरण, राष्ट्रीयता तथा शोषण शीर्षकों के माध्यम से दर्शाया गया है। मैत्रेयी पुष्पा के सभी उपन्यासों एवं कहानियों में सामाजिक चेतना का स्वरूप भी उद्घाटित है।

चतुर्थ अध्याय में मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य में वर्णित पारिवारिक सम्बन्धों के माधुर्यपूर्ण एवं कटुतापूर्ण दोनों स्वरूपों का तात्विक विवेचन है। माता–पिता, पति–पत्नी, भाई–बहन, देवरानी–जिठानी, ननद–भाभी तथा सास–बहू के सम्बन्धों को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है। परित्यक्ता एवं विधवा स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का स्वरूप भी विवेचित है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों एवं कहानियों में नायक, नायिका, प्रतिनायक तथा प्रतिनायिका की स्थितियों का विवेचन पाँचवें अध्याय में किया गया है। कथावस्तु को प्रभावित करने वाले अन्य विशिष्ट पात्रों के क्रियाकलापों का विवरण भी प्रस्तुत किया गया है।

छठवें अध्याय में कथा–साहित्य का सांस्कृतिक अनुशीलन इस शोध कार्य का मुख्य प्रतिपाद्य है। यहाँ बुन्देलखण्ड की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों के अन्योन्याश्रित सम्बन्धों को उजागर किया गया है। संस्कृति के स्वरूप का विवेचन करते हुए संस्कृति एवं सभ्यता में अन्तर वर्णित है। भारतीय संस्कृति के तत्वों– आध्यात्मिकता, अवतारवाद, पुनर्जन्म, वर्णाश्रम व्यवस्था, परलोक, संस्कार, पर्व एवं त्यौहार, लोकगीत आदि का सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत किया गया है।

मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य में भाषा एवं शिल्प की विशेषतायें व्यंजित हैं सप्तम् अध्याय में। भाषा शैली को अभिव्यक्ति का माध्यम मानकर उनकी भाषा में

आगत लोक भाषा के शब्दों को उजागर किया गया है। कहावतों एवं मुहावरों के प्रयोगों का स्पष्ट रेखांकन भी किया है।

अष्टम् अध्याय के अन्तर्गत शोध–प्रबन्ध का उपसंहार है। इसमें मैत्रेयी पुष्पा के सम्पूर्ण कथा–साहित्य के सांस्कृतिक अनुशीलन का सारांश प्रस्तुत किया गया है।

इस शोध–प्रबन्ध में समुपस्थित कतिपय व्यवहारिक कठिनाईयों का निराकरण करने में डॉ0 वन्दना मिश्रा, डॉ0 योगेश कुमार पचौरी, कु0 श्वेता दीक्षित, विवेक सौनकिया, डॉ0 मनीष समाधिया, डॉ0 छाया सिंह सेंगर, मयंक अग्रवाल, मोहित मिश्रा तथा अंकित शर्मा ने अपना अमूल्य योगदान दिया। एतदर्थ मैं उनका आभार प्रकट करती हूँ।

डॉ0 नीलम मुकेश, डॉ0 राजेश पाण्डेय, डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, डॉ0 रामशंकर द्विवेदी, डॉ0 डी0पी0 श्रीवास्तव, डॉ0 हरिमोहन बुधौलिया, डॉ0 पवन अग्रवाल, डॉ0 कालीचरण स्नेही, डॉ0 सीताकिशोर, डॉ0 कामिनी, डॉ0 एन0डी0 समाधिया, डॉ0 यामिनी, डॉ0 रामस्वरूप खरे, डॉ0 मुनीव शर्मा, श्री सन्तोष सौनकिया, श्री अखिल परिहार, श्री संजय यादव, डॉ0 नत्थू सिंह सेंगर, डॉ0 प्रेम नारायण अवस्थी, डॉ0 प्रबल प्रताप सिंह, श्री विनोद सौनकिया, श्री रामशंकर बुधौलिया, डॉ0 विजय कुमार पाठक, श्री आदेश गोस्वामी, श्री अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' आदि प्रभृति विद्वानों ने समय–समय पर अपने अमूल्य सुझावों से उपकृत किया है। इन सभी विद्वानों के प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

यह शोध–प्रबन्ध डॉ0 श्याम सुन्दर सौनकिया के कुशल निर्देशन में लिखा गया है। उन्होंने अपने हार्दिक स्नेहपूर्ण आदेश–निर्देश से निरन्तर मेरा पथ–प्रदर्शन किया है। अगर कभी स्नेहमय दुलार से अशुद्धियों का निराकरण करवाया है तो कभी डाँटा और फटकारा भी है। उनके सहृदय सौजन्य एवं स्नेहिल सान्निध्य ने मेरी समस्त शोधगत कठिनाईयों का सरलता से समाधान किया है। उनकी मैं सदा ऋणी रहूँगी। सह शोध निर्देशक डॉ0 डी0पी0 श्रीवास्तव की मैं विशेष आभारी हूँ।

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालयीन पुस्तकालय झाँसी, लखनऊ विश्वविद्यालयीन टैगोर पुस्तकालय लखनऊ, जिला पुस्तकालय झाँसी, राजकीय पुस्तकालय उरई, गाँधी महाविद्यालय तथा दयानन्द वैदिक महाविद्यालय के पुस्तकालय मेरी शोध यात्रा के दौरान सामग्री संकलन में विशेष सहायक रहे हैं। इनके पुस्तकालयाध्यक्षों का विनम्र अभिवादन के साथ मैं आभार व्यक्त करती हूँ।

अन्त में अपने परम श्रद्धेय दादा जी, दादी जी, पिताश्री, माताश्री, चाचा जी एवं चाची जी का अमूल्य सहयोग कभी विस्मृत न कर सकूँगी, जिन्होंने आर्थिक रूप से मदद देकर सारी दिक्कतों को दूर किया। अपने अनुज रम्मू एवं राहुल भइया की शरारत भरी चुनौतियाँ मुझे आगे बढ़ने की बलवती प्रेरणा देती रहीं, इनके स्नेह एवं सद्व्यवहार के कारण यह धन्यवाद के पात्र हैं।

अक्षर कम्प्यूटर एण्ड प्रिन्टर्स, सेंवढ़ा, जिला दतिया के संचालक श्री ज्योति प्रकाश श्रीवास्तव की मैं हृदय से आभारी हूँ तथा श्री राजेश कुमार गुप्ता जी, उरई का भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ जिनके सहयोग से इस शोध–प्रबन्ध को सुन्दर, स्वच्छ ढंग से टाइप कर ग्रन्थ को सजाया–सवाँरा गया।

मैंने अपने गुरुजनों के आशीर्वाद एवं मित्रजनों व परिजनों के सहयोग से अपनी अति साधारण भाषा द्वारा प्रस्तुत विषय को प्रतिपादित करने का प्रयास किया है, जिसमें त्रुटियों एवं विच्युतियों के रह जाने की पूर्ण संभावना है और उसके लिए मैं क्षमायाची हूँ।

अनुसंधित्सु,

दिनाँक :

मीनाक्षी

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

मैत्रेयी पुष्पा - व्यक्तित्व और कृतित्व

(क) जन्म - परिवार :

समकालीन कथा–लेखन में सक्रिय, एक सशक्त हस्ताक्षर मैत्रेयी पुष्पा का जन्म 30 नवम्बर, 1944 को अलीगढ़ जिले के सिकुर्रा ग्राम में हुआ था। आपके पितामह पं0 मेवा लाल पाण्डेय किसी परिस्थितिवश अपने पैतृक निवास स्थान ग्राम मीठना से आकर सिकुर्रा में बस गये थे। इनके एकमात्र पुत्र हीरालाल थे, जिनका विवाह कस्तूरी के साथ हुआ था। मैत्रेयी के पिता पाण्डेय व माता उपाध्याय गोत्र की सनाढ्य परम्परा के ब्राह्मण कुल में थे।[1]

माता कस्तूरी अपूर्व साहसिकता की प्रतिमूर्ति, प्राचीन रूढ़ियों एवं परम्पराओं का तार्किक विरोध करने में समर्थ, प्रगतिशील विचार सम्पन्न तथा अपने सिद्धान्तों के प्रति अडिग रहने वाली महिला थीं। पिता हीरालाल ऊँचा कद, उजला रंग, तराशी मूछों वाला रूपवान चेहरा[2] तथा देखने में प्रभावशाली व्यक्तित्व वाले सामान्य पुरुष थे। हीरालाल का अपनी पत्नी कस्तूरी के साथ सहयोगी भाव नगण्य था।

मैत्रेयी के जन्म के अठ्ठारह माह पश्चात् मोतीझला की बीमारी में मैत्रेयी के पिता का 35 वर्ष की अल्पायु में आकस्मिक निधन हो गया।[3] अबोध मैत्रेयी तथा वृद्ध व अपाहिज ससुर की देखभाल व ग्रहस्थी का भार मैत्रेयी की माँ कस्तूरी के कंधों पर आ गया। स्वभाव की तेज पर चरित्रवान महिला कस्तूरी ने संघर्षरत रहकर गृहस्थी–संचालन का सकुशल निर्वाह करते हुए मैत्रेयी का लालन–पालन किया। पं0 मेवालाल की मृत्यु के पश्चात् ग्राम–सेविका बनने तक कस्तूरी देवी मैत्रेयी के साथ सिकुर्रा में रहीं। नौकरी की वजह से स्वयं तो खैलार चली जाती हैं और मैत्रेयी को अलीगढ़ में समाज कल्याण बोर्ड की संयोजिका के यहाँ पढ़ने के लिए छोड़ जाती हैं।[4]

---

1. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ0 9
2. उपरिवत्, पृ0 16
3. उपरिवत्, पृ0 25
4. उपरिवत्, पृ0 49

बाबा की मृत्यु ने मैत्रेयी के हृदय में संसार के प्रति उदासीनता उत्पन्न कर दी। इनकी दृष्टि के सामने सदैव अकेलापन, संसार की अस्थिरता, नश्वरता और क्षण भंगुरता नृत्य करने लगी। माँ की ममता कभी न मिलने के कारण आपका मन शिक्षा से भी विमुख हो गया। किन्तु यौवन की दहलीज पर प्रवेश करते ही उनकी कल्पना ने सुख–स्वप्नों का ऐसा संसार रचना आरम्भ किया कि उन्हें जीवन की क्षणजीवी अनुभूतियाँ बड़ी सरस और मधुर प्रतीत होने लगीं।

माँ की असहयोगात्मक भावना ने आपके मन में अकेलापन पैदा कर दिया जिससे ऊबकर मैत्रेयी ने माँ से मात्र 17 वर्ष की आयु में ही कह दिया 'कि माँ मेरी शादी कर दो।'[1] मैत्रेयी अपनी जिन्दगी में स्थिरता लाना चाहती थीं। वह अकेलेपन से थक चुकी थीं। माँ का दहेज विरोधी होना विवाह में बाधा बन गया। मैत्रेयी की माँ जहाँ भी जाती, वहीं उन्हें दहेज का दानव मुँह खोले मिलता। अपने अथक परिश्रम से उन्होंने मैत्रेयी के लिए डॉक्टर वर ढूंढ़ लिया, जो अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) में चिकित्सक के पद पर कार्यरत था। 19 वर्ष की आयु में (12 दिसम्बर, 1963) डॉ0 रमेश चन्द्र शर्मा के साथ आपका दहेज रहित विवाह सम्पन्न हुआ। वैवाहिक जीवन अत्यन्त सुखमय रहा। आपके पति अपने अमूल्य परामर्शों और परिश्रम व धैर्य द्वारा आपके विभिन्न कार्यों में सहयोगी रहे।

सन्तानों में आपके तीन विवाहित पुत्रियाँ हैं। नम्रता, मोहिता एवं सुजाता। दो पुत्रियाँ व दामाद अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान में चिकित्सक हैं व एक पुत्री का अपना निजी नेत्र चिकित्सालय है। मैत्रेयी जी के पति भी अपना कुछ समय नेत्र चिकित्सालय की देखभाल में व्यतीत करते हैं। वर्तमान में मैत्रेयी जी सुख, समृद्धि एवं यशस्वी जीवन व्यतीत कर रही हैं तथा समसामयिक कथाकारों में वरेण्य एवं श्लाघ्य हैं।

(ख) सामाजिक - आर्थिक परिवेश :

मैत्रेयी का समकालीन समाज ग्राम पंचायतों, जाति व्यवस्था और संयुक्त

---

1. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 58

परिवारों द्वारा नियंत्रित होता था। समाज अनेक रूढ़ियों, रीति–रिवाजों एवं सामाजिक कुरीतियों से ग्रस्त था। जाति–पाँति, वर्ण व्यवस्था तथा छुआछूत में लोगों का विश्वास था तथा दहेज प्रथा का विष समाज में परिव्याप्त था।

ऊँच–नीच व छुआ–छूत की भावना का प्राबल्य था। बड़ों के साथ–साथ बच्चों के मन में भी यह भावना देखी जाती थी। छोटी जाति के लोगों को हीनता की दृष्टि से देखा जाता था। मैत्रेयी की मित्रता भी छोटी जाति के एक बालक एदल्ला से थी, एदल्ला का पक्ष लेने पर जाटों के लड़के मैत्रेयी को अपमानित करते हैं ''आज से इसे ब्राह्मनी नहीं चमरिया कहेंगे।''[1] एदल्ला द्वारा जाट लड़कों का खाना गिर जाता है, जिसे वह छू लेता है, वे बालक छुआछूत के कारण खाना नहीं खाते, क्योंकि उनके लिए वह धर्म विरूद्ध कार्य था। वह एदल्ला से कहते हैं– ''साले ढेढ़ यह क्या किया, हमारा खाना छूकर धरम बिगाड़ दिया। अब हम सारे दिन भूखे रहेंगे।''[2] वह लड़के उसे शारीरिक यातना भी देते हैं तथा उसी के अंगोछे से एदल्ला के हाथ पैर बांधकर जमींदारी प्रथा का पालन करते हैं– 'जमींदार ऐसी ही सजा देता है।'[3]

इस प्रकार की जानकारियाँ जब मैत्रेयी की माता कस्तूरी को मिलती हैं, तो वह सोचती है– 'अगर एदल्ला ऊँचे लोगों का बोझ ढोने और गन्दगी साफ करने को तैयार रहे तो समाज की मार से बच सकता है।'[4]

छुआछूत की एक अन्य समस्या मैत्रेयी के विवाह में सामने आती है। कस्तूरी के यहाँ विवाह के समय हबीबन (छोटी जाति) बर्तन धोती है। इस बात को लेकर जब उच्च कुल, जाति, गोत्रों के स्वामियों की पत्नियाँ बिदकने लगीं, तब मैत्रेयी के मामा हेतराम कस्तूरी को रंग में भंग न डालने का आग्रह करते हैं। कस्तूरी कहती है 'तो न पियें पानी।' ब्राह्मणों का ब्राह्मणपना, बनियों की बनियांगीरी और जाटपना तो बहुत

---

1. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 40
2. उपरिवत्, पृ0 40
3. उपरिवत्, पृ0 40
4. उपरिवत्, पृ0 41

देखा है, अब यह भी तो पता चले कि किसी में इंसानियत का रग–रेशा भी है या नहीं? बेगार ही करवाते हैं या भाईचारा भी मानते हैं।[1]

तत्कालीन समाज में व्यभिचार भी चरम सीमा पर था। अल्प उम्र की लड़की मैत्रेयी के साथ जगदीश साइकिल वाला चरित्रहीनता का व्यवहार करता है और एदल्ला के आ जाने पर उसे भी पीट देता है। कस्तूरी देवी ने लड़की की सुरक्षा के लिए उसे नियुक्त किया था न कि यौन शोषण के लिए।[2] वहीं मैत्रेयी संयोजिका व उस वृद्ध महिला (बुढ़िया) के यहाँ भी सुरक्षित नहीं रहती। बुढ़िया के लड़के के व्यवहार से मैत्रेयी के मन में भय घर कर जाता है तथा मैत्रेयी उस बुढ़िया के साथ ही रात्रि शयन करने लगती है।[3] कहीं वह परिचय की भाभी के यहाँ उसके रिश्ते के मामा का शिकार होने से बचती है,[4] तो कहीं बस ड्राइवर के नकली रिश्तेदार बनने जैसे कटु अनुभवों से गुजरती है। इस प्रकार मैत्रेयी के जीवन में अनेक मोड़ आये, जिनका सामना उन्होंने अपूर्व साहस से किया तथा समाज को अपने प्रखर व्यक्तित्व का आभास कराया।

मैत्रेयी को अपने युवा जीवन में प्रेममय परिवेश भी मिला। कभी उनके जीवन में नन्दकिशोर जैसे युवक आए, तो कभी जानकीरमण। जब स्कूल का प्रिंसिपल मैत्रेयी के साथ घिनौनी हरकत करता है, तो जानकीरमण मैत्रेयी का साथ देता है और प्रिंसिपल का विरोध करता है। स्कूल में स्थान–स्थान पर लिखा मिल जाता – 'पुष्पा बराबर जानकी, बाजी लगा दो प्रान की।'[5] एक अन्य युवक शिवदयाल भी उनकी जिन्दगी में आता है, जिसके लिए वह तन, मन व धन से समर्पित रहती हैं। उसके शहीद होने की खबर से उन्हें अत्यन्त दुःख पहुँचता है। उक्त तथाकथित युवकों के प्रति उनका अतीव आकर्षण तो था किन्तु निर्मम सामाजिक व्यवस्था के कारण हृदयों का पारस्परिक प्रेम–भाव अन्तर्जातीय विवाह का स्वरूप ग्रहण नहीं कर सका।

---

1. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 219
2. उपरिवत्, पृ0 40–41
3. उपरिवत्, पृ0 116
4. उपरिवत्, पृ0 54
5. उपरिवत्, पृ0 125

दहेज की समस्या पर ब्रजलाल मास्साब ने सब लड़कों के साथ मैत्रेयी से भी वचन लिया था 'इस कुप्रथा का समर्थन कभी न करना, अपने विवाह में भी इसका बहिष्कार करना।'[1] इन परिस्थितियों में मैत्रेयी के लिए जहाँ भी वर ढूँढ़ा गया, वहाँ दहेज के कारण सम्बन्ध नहीं हो सका। कस्तूरी देवी मैत्रेयी के विवाह में दहेज देने के विरोध में थीं। वह अपनी बेटी की योग्यता को ही दहेज मानती थीं। समाज में लोगों ने उन्हें समझाया कि जमीन गिरवी रखकर पुत्री का विवाह करो, पर स्वाभिमान की भावना उनमें कूट–कूट भरी थी। वह कहती हैं कि – 'बेटी का विवाह कर्ज लेकर नहीं करूँगी, उसके लिए जमीन बेच दूँगी।'[2] समाज में व्याप्त दहेज प्रथा का विरोध वे खुलकर करती हैं। अन्ततः मैत्रेयी का विवाह दहेज रहित सम्पन्न होता है।

मैत्रेयी की माँ कस्तूरी अपनी समाज विरोधी गतिविधियों के कारण समाज में पुरुष वर्चस्व के समकक्ष स्थान उपलब्ध नहीं कर सकीं, किन्तु अपने अडिग स्वाभिमान तथा सच्चरित्रता पर आधारित जीवन में जीर्ण–शीर्ण प्राचीन रूढ़ियों एवं सड़ी–गली परम्पराओं का अनवरत् विरोध करते हुए अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करती रहीं। इस व्यावहारिक प्रखरता के कारण उन्हें कहीं यथोचित सम्मान भी मिला तथा कहीं 'कठकरेज लुगाई'[3] जैसा कटु सम्बोधन भी।

मैत्रेयी जी के पितामह पं0 मेवालाल मीठना से आकर अपनी ससुराल सिकुर्रा में बस गये थे। यहाँ उन्हें जमीन–जायदाद मिली थी। वह घर जमाई बनकर आए थे। उस समय उनके पास साठ बीघा जमीन थी। समाज में उनकी अच्छी स्थिति थी। ससुराल में रहने के कारण उनका सभी आदर करते थे। उनकी पत्नी का अल्पायु में ही निधन हो गया था। अतः जो जमीन माता के नाम पर थी, पुत्र हीरालाल के नाम पर आ गयी थी। हीरालाल की मृत्यु के पश्चात् उनकी पत्नी कस्तूरी उस जमीन की हकदार बनीं।

---

1. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 111
2. उपरिवत्, पृ0 77
3. उपरिवत्, पृ0 26

बाद में मैत्रेयी की माता ने संघर्ष करते हुए अपना शिक्षण कार्य जारी रखा व ग्राम सेविका की नौकरी भी कर ली। आर्थिक परिस्थितियों ने मैत्रेयी की सफलता का कभी रास्ता नहीं रोका। विवाह भी अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के चिकित्सक से हुआ, जिससे आपको सामाजिक व आर्थिक दोनों रूपों में सफलता उपलब्ध हुई। वर्तमान में आप स्वयं अपनी प्रतिभा के बल पर समाज में अपनी अलग पहचान बनाए हुए हैं।

(ग) शिक्षा संस्कार :

मैत्रेयी की माँ जागरूक व प्रगतिशील महिला थीं। वह चाहती थीं कि उनकी पुत्री सुचेता कृपलानी व सरोजनी नायडू की तरह बने। उन्होंने मैत्रेयी की शिक्षा को दृष्टि में रखते हुए ही उन्हें अलीगढ़ में अकेला छोड़ा, जहाँ रहकर उनको जीवन के कटु अनुभव हुए। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अलीगढ़ में हुई, पर आपका प्रारम्भिक जीवन झाँसी जिले के खिल्ली ग्राम में दादा चमन सिंह यादव के यहाँ व्यतीत हुआ।

आपने टीकाराम कन्या विद्यालय, अलीगढ़ से हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। बाद में खिल्ली में रहकर मोंठ के डी0वी0 इण्टर कॉलेज से इण्टरमीडिएट की परीक्षा तथा स्नातक व परास्नातक की शिक्षा आपने झाँसी के बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय से प्राप्त की। आपका विद्यार्थी जीवन सादगीपूर्ण रहा।

मैत्रेयी को जीवन के प्रत्येक मोड़ पर अपने नारी होने का प्रबल अनुभव होता रहा। दुष्परिणाम भी सामने आये किन्तु अपनी कर्मठता, सहनशीलता तथा अडिग साहसिकता के साथ प्रतिकूलताओं को अनुकूलताओं में परिवर्तित करते हुए विश्वविद्यालयीन उच्च शिक्षा प्राप्त करके जीवन में अपना एक सम्माननीय स्तर बनाने में उनको सफलता प्राप्त हुई।

देश की पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था के विपरीत अपना मन्तव्य प्रकट करने का गुण उन्हें अपनी माँ कस्तूरी से विरासत में मिला था। उक्त मन्तव्य का साकार स्वरूप उनके कथा–साहित्य में देखने को मिलता है। यह संस्कार जन्म से ही

उनके हृदय में पनप रहा था, जो अपूर्व साहस का संयोग पाकर उनके उपन्यासों एवं कहानियों में लिखित स्वरूप ग्रहण कर सका। उच्च शिक्षा प्राप्त मैत्रेयी जी ने अपने क्रान्तिकारी विचारों से समाज को एक नई दिशा दी तथा अपने प्रबल तर्कों से अपने विरोध को पुष्टि प्रदान करते हुए नई पीढ़ी को सोचने के लिए विवश कर दिया। मैत्रेयी जी एक ऐसी विचारशील महिला हैं, जिन्होंने नारी सम्मान की सुरक्षा एवं व्यवस्था हेतु एक क्रान्तिकारी कदम उठाया और सदियों से दबी, कुचली, पीड़ित तथा असहाय अबला नारी को पुरुष प्रधान व्यवस्था को झकझोर देने के लिए प्रेरित किया।

(घ) व्यक्तित्व व स्वभाव :

मैत्रेयी जी स्वभाव से मृदुल, विनोदी व हँसमुख हैं। आपके जीवन में बनावटीपन कहीं भी नहीं झलकता। आप स्वाभिमानी, आत्मनिर्भर और साहित्य साधना में निरत रहती हैं। उन्होंने अपनी साहित्य साधना को ही 'अपने जीवन की साधना' माना है। इसीलिए आपके जीवन और साहित्य में समता, सामंजस्य और समन्वय की जो चेष्टा दिखलाई देती है, वह आपके व्यक्तित्व की अप्रतिम विशेषता है। इसी के कारण वे सदैव आत्मश्लाघा से दूर हैं और आत्मप्रकाशन की विकृत चेष्टा से विचलित नहीं होतीं। आप बाल्यकाल से ही बड़ी गम्भीर, संवेदनशील और जिज्ञासु प्रवृत्ति की हैं। जीवन की अपनी मौलिक एवं संवेदनशील दृष्टि के कारण आपके कथा साहित्य में तत्कालीन परिस्थितियों व परम्पराओं का प्रभाव देखा जा सकता है।

किसी भी साहित्यकार के कृतित्व को समझने के लिए उसके व्यक्तित्व की अभिज्ञता अत्यावश्यक है। आत्माभिव्यक्ति की इच्छा मनुष्य में स्वाभाविक ही होती है, क्योंकि मनुष्य भी एक सामाजिक प्राणी है। कृतित्व का समुचित अध्ययन करने से ही साहित्यकार का व्यक्तित्व पता लग जाता है। मैत्रेयी जी का व्यक्तित्व तो उभरकर उनके साहित्य में बोलने सा लगता है। मिडिल्टन मरे का मत है कि 'कलाकार कृति से इतना तादाम्य स्थापित कर लेता है कि कलाकार का व्यक्तित्व न रहकर स्वयं कृति का व्यक्तित्व बन जाता है। कलाकार के विचारों और भावों के साथ ही उसका विकास

होता है एवं कलाकार के व्यक्तित्व के साथ संसार की गतिविधि की छाप भी रहती है।

अंतरंग व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति दिनचर्या एवं व्यक्तिगत भेंट से हो जाती है। मैत्रेयी जी के व्यक्तित्व की प्रथम परख का प्रथम सोपान उनकी मुखाकृति है, जो साधारण होते हुए भी असाधारण लगती है। उनके मध्यम कद, गौर वर्ण, नेत्र, नासिका, मुख पर बिखरी रेखायें एवं दृढ़ता का परिचय देने वाले अधरों पर हँसी की अमिट स्मित आभा एवं उदार ह्रदय उनके व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान करते हैं।

(ङ) कृतित्व का संक्षिप्त परिचय :

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मैत्रेयी पुष्पा एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। यदि यह कहा जाए कि वे हिन्दी साहित्य परिदृश्य की एक महत्वपूर्ण उपस्थिति हैं तो अत्युक्ति नहीं होगी। आपने अपने कथा साहित्य में नारी–विमर्श तथा नारी–चेतना पर विशेष बल दिया है। मैत्रेयी ने अपने उपन्यासों में मध्य वर्ग की समस्याओं को उठाया है और अपने पात्रों को संघर्ष से टकराने के लिए प्रेरित किया है। आपके उपन्यासों में बेतवा बहती रही, चाक, इदन्नमम, अल्मा कबूतरी, अगनपाखी, झूलानट, विजन, कस्तूरी कुण्डल बसै, खुली खिड़कियाँ तथा कही ईसुरी फाग आदि प्रमुख हैं। कहानी क्षेत्र में चिह्नार, ललमनियाँ तथा गोमा हँसती है, आपके कहानी संग्रह हैं।

मैत्रेयी जी के उपन्यासों एवं कहानी संग्रहों का संक्षिप्त परिचय क्रमशः प्रस्तुत है।

बेतवा बहती रही –

मैत्रेयी पुष्पा ने 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में बुन्देलखण्ड के पिछड़े अंचलों में नारी जीवन की अभिशप्त व्यथा–कथा को आन्तरिक यातना एवं दर्द के सूत्र में पिरोकर यह सिद्ध कर दिया कि देश का नगरीय जीवन भले ही विकासोन्मुख हो, किन्तु ग्रामीण परिवेश अभी भी सामन्ती प्रथा के पिंजड़ों में बंद है। ऐसी स्थिति में नारी यदि अभी भी क्रय–विक्रय की वस्तु बनी है, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। पुरुष प्रधान व्यवस्था की तानाशाही से विवश होकर नारी जीवन केवल सहने, झेलने एवं

जूझने की कहानी मात्र बनकर रह गया है। नारी—विमर्श, नारी—जागरण, नारी—उत्थान तथा नारी—शिक्षा केवल सिद्धान्त बनकर रह गये हैं, व्यावहारिक रूप ग्रहण नहीं कर सके।

'बेतवा बहती रही' उपन्यास की नायिका उर्वशी अद्भुत रूप सम्पन्न है। पारिवारिक विपन्नता होने पर भी सर्वदमन के साथ उर्वशी का विवाह हो जाना, उसके लिए सौभाग्य की बात थी। दुर्घटनाग्रस्त होकर सर्वमदन का असमय ही कालकवलित हो जाना, उसके भावी जीवन को निराशामय अंधकार से आच्छादित कर देता है। वह भाई अजीत के दुष्टतापूर्ण व्यवहार से पीड़ित होकर अपने पुत्र देवेश का लालन—पालन दाऊ के संरक्षण में नहीं कर पाती है। माता—पिता की निर्धनता जन्य बेवशी तथा दाऊ पर लगाये गये आरोपों के कारण उर्वशी त्रस्त हो जाती है। अजीत का स्वार्थ और बरजोर की वासना का सम्मिलित षडयंत्र उर्वशी के पवित्र जीवन में वासना का विष घोलने का प्रयास करता है। देवेश को उससे पृथक करके उसकी ही बाल—संगिनी मीरा के पिता बरजोर के साथ पुनर्विवाह करने को उसे बाध्य किया जाता है। मैत्रेयी पुष्पा ने इस कारूणिक कथा को सहज संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। ''यह संवेदनशीलता, आत्मपरकता और गलदश्रु भावुकता के रूप में नहीं है। स्थितियों और चरित्रों के वस्तुनिष्ठ विश्लेषण और यथार्थ से सीधे साक्षात् करने के साहस से प्रमाणित है कि मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी संवेदनशीलता का सर्जनात्मक उपयोग किया है।''[1]

उपन्यास के अंत में लेखिका उर्वशी में अद्भुत साहस एवं शान्ति का सृजन कर उसे गौरव सम्पन्न चित्रित करती है। उपन्यास का समापन कारूणिक है। बरजोर सिंह की सलाह से वैद्य उर्वशी को विषपान कराता है। उर्वशी की दर्दनाक मृत्यु हो जाती है। किन्तु मृत्यु से पूर्व उदय के भाई की विधवा पत्नी के साथ उदय का विवाह कराकर उर्वशी जिस अपूर्व साहस और आत्म विश्वास का परिचय देती है, उससे उपन्यास की छवि विशिष्ट बन जाती है।

---

1. हंस, मार्च, 1993, समीक्षा डॉ0 वेद प्रकाश अमिताभ, पृ0 77

उर्वशी ने वैधव्य के दुष्परिणामों का विषपान किया है, इसलिए विजय की विधवा के प्रति उसकी हार्दिक संवेदना एवं गहरी अनुभूति स्वाभाविक है। प्रारम्भ से ही वाक्–संयमी उर्वशी अन्याय का प्रतिरोध करती हुई कहती है– "कह लई सब? तुम हमें काये के लाने लाये, सो हमें जानने की जरूरत नहीं है। बस तुम इतनी सुन लो कि हम काहे के लाने आये हैं – अन्याय हम नहीं होने देंगे ..... हमारे रहते जा अनरथ नहीं हो सकत।"[1] उर्वशी के सक्षम विरोध से बरजोर तिममिला जाते हैं। इधर दादी की आन्तरिक सद्भावना भी उसे प्राप्त है। "लला काऊ को तो आगे आनै ही पड़ है।"[2] इस क्रान्तिकारी पहल के माध्यम से जहाँ युवा विधवा की समस्या का समाधान खोजा गया है, वहीं लेखिका ने ग्रामीण परिवेश में "बेटी तो सुख जोहती गइया है रे .... काऊ खूँटा से बाँध दो। भोली बछिया सी चल देत है ..... जितै चाहौ उतै ही।"[3]

'मैत्रेयी पुष्पा की इस कृति से यह भी ध्वनित है कि नारी की लड़ाई अन्ततः नारी को ही लड़नी पड़ती है, लेकिन उदय जैसे युवकों के सहयोग के अभाव में यह लड़ाई जीती नहीं जा सकती है।'[4] जब पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी को लेकर खासी चिन्तित हो। "नयी पीढ़ी के जवान लरका दूसरे की पीर महसूस नहीं करते। बस अपनी–अपनी सोचते।"[5]

लेखिका ने उपन्यास में जिन जीते–जागते चरित्रों दाऊ, उर्वशी, दादी, मीरा, उदय आदि का सकारात्मक संयोजन किया है, वे सभी मानवीय जीवन–मूल्यों के पक्षधर हैं। उर्वशी की कथा को सामाजिक तथा मानवीय जीवन मूल्यों से सम्बद्ध कर मैत्रेयी ने अपनी लोक–धर्मिता और वैचारिक प्रबलता को समृद्ध बनाया है।

उपन्यास में कथ्य और शिल्प की सहज संश्लिष्टता ने इसकी सम्प्रेषण शक्ति को निश्चय ही बढ़ाया है। मर्मस्पर्शी संवेदनशीलता, समय की प्रामाणिकता और

---

1. बेतवा बहती रही, पृ0 142
2. उपरिवत्, पृ0 143
3. उपरिवत्, पृ0 32
4. हंस, मार्च, 1993, समीक्षा डॉ0 वेद प्रकाश अमिताभ, पृ0 77
5. बेतवा बहती रही, पृ0 34

प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति से समन्वित यह कृति लोकप्रियता और स्तरीयता इन दोनों कसौटियों पर आश्वस्त करती है।

चाक –

मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' उपन्यास ग्रामीण नारी की गौरवपूर्ण गाथा है। ग्रामीण समस्याओं पर शहरी मध्यवर्ग की दृष्टि से काल्पनिक समाधान प्रस्तुत करने वाला यह एक प्रयोगवादी उपन्यास है। यह एक ऐसा आख्यान है, जिसमें विशिष्ट किस्म के नारी पात्रों की विविधता है और अलग–अलग प्रकार के सामाजिक प्रसंगों में उनकी भूमिकाएं भी अलग–अलग किस्म की हैं। चरित्र निर्माण में बहुरंगी वैविध्य के कारण यह उपन्यास बार–बार नये सिरे से गंभीर विवेचन की चुनौती पेश करता है।

'चाक' की कथा कई प्रवृत्तियों के बीच पनपती है। जहाँ इसमें सामन्ती कृषि सम्बन्ध हैं, वहीं आधुनिकीकरण की अन्तर्धारा भी है। उपन्यास की भूमि अतरपुर में ठहराव है, भू बिलगन है, पलायन, पंयाचती राज, प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति, तिकड़मी चुनाव संस्कृति, भ्रष्टाचार, मुकद्दमेबाज़ी, ऋण–ग्रस्तता, जाति–अन्तर्विरोध, लिंग उत्पीड़न, घुटन और पुरुष सत्ता के खिलाफ विद्रोह है। इन विभिन्न प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि हैं सारंगनैनीं, रेशम, रंजीत, श्रीधर, प्रधान जी, भवानीदास जैसे पात्र।

सारंग की रिश्ते की बहिन रेशम की हत्या उपन्यास का प्रस्थान बिन्दु है। रेशम की हत्या क्यों हुई? क्योंकि विधवा होने के पश्चात् किसी से प्रेम किया, उससे गर्भवती हुई और वह इस गर्भ के साथ सम्मानपूर्वक जीना चाहती है। रेशम का तर्क बिल्कुल साफ है, क्या विधवा होने के बाद स्त्री का जीवन रुक जाता है? रेशम के तर्क में दम है। किसी भी स्त्री को यह बताने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए कि वह किसका बच्चा अपने पेट में पाल रही है। वह चाहे तो अपने सम्बन्ध का खुलासा कर सकती है। रेशम भी शायद इसे गोपनीय नहीं रख पाती, यदि उसे अपनी योजना के अनुसार जीने दिया जाता। लेकिन यह दिलचस्प और नवीन संभावनाओं से भरा हुआ कथानक बीच में ही तोड़ दिया जाता है। रेशम की हत्या और हत्यारे का बच निकलना

परम्परागत नैतिक व्यवस्था की सामाजिक जीत है।

आगे यही दण्ड प्रेम पिपासु गुलकंदी को दिया जाता है। गुलकंदी अपने प्रिय व्यक्ति से प्रेम करने का खतरा न उठाकर उससे गंधर्व विवाह कर लेती है। अपने वर के साथ कुछ दिनों के लिए अदृश्य होकर इस उम्मीद से गाँव लौटती है कि उसके सम्बन्धों को वैधता मिल जायेगी। किन्तु प्रतिशोध की भावना से पीड़ित उसका भाई व गाँव के कुछ लोग मिलकर गुलकंदी, उसके पति व माँ को अग्निकाण्ड के सुपुर्द कर देते हैं।

उपन्यास की नायिका सारंग की स्थिति रेशम और गुलकंदी से भिन्न है। रेशम और गुलकंदी के लिए स्वाधीनता कुछ और मूल्यों की वाहक भी है। यहाँ प्रेम अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं है। ऐसा प्रेम त्याज्य है, जो आदमी को अन्याय के आगे कमजोर बनाता है। सारंग के लिए रेशम की मौत केवल इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि उसकी हत्या की गई थी। रेशम के प्रति भी सारंग के मन में कहीं प्रशंसा भाव है, इसलिए वह रेशम की हत्या के औचित्य को स्वीकार नहीं कर पाती। जबकि शेष गाँव इसे एक उचित और स्वाभाविक घटना मानता है।

रंजीत का चरित्र कई कारणों से दिलचस्प और महत्वपूर्ण है। आधुनिक शिक्षा सम्पन्न होकर गाँव में रहकर खेती करते हुए गाँव को सुधारना चाहता है। लेकिन इसके लिए संकल्प शक्ति और प्रगतिशीलता चाहिए, वह उसके पास नहीं है। वह एक लगातार पतित होता हुआ चरित्र है। अन्त में, वह पतन की पराकाष्ठा के विरूद्ध विद्रोह करता है और अपनी पत्नी की शरण में जाता हुआ दिखाया गया है। इसके विपरीत सारंग का व्यक्तित्व एक लगातार उत्कर्षशील व्यक्तित्व है, जिसे लेखिका ने अपनी मूल–चेतना का वाहक बनाया है।

श्रीधर शहरी संस्कृति का प्रतिनिधि है। लेकिन गाँव में इसके लिए उसने शिक्षा को माध्यम चुना है। श्रीधर और सारंग का मिलन दो रचनात्मक वेदनाओं का मिलन है और इस मिलन से अद्भुत चट्टानी शक्ति का उदय होता है। स्त्री होने के

कारण सारंग की सीमायें समझ में आती हैं। वह घर के भीतर से ही प्रतिरोध की शक्ति जुटाती है, लेकिन श्रीधर गाँव में परिवर्तन की ताकतों को जमा करने का कोई व्यवस्थित प्रयास नहीं करता, यह बात कुछ चकित करती है।

सारंग और श्रीधर की घनिष्ठता की भरपूर कीमत श्रीधर चुकाता है, उस पर घातक शारीरिक हमला होता है। परिणाम स्वरूप वह तथा सारंग एक–दूसरे के और नजदीक आते हैं। यहीं वह घटना होती है, जिसे सुसंस्कृत समाजों में व्यभिचार कहा गया है। व्यभिचार शब्द की एकांगिता इसी बात से स्पष्ट है कि इसका अधिकतर प्रयोग स्त्री के विरोध में किया गया है। ''चाक'' में प्रश्न उठना अपरिहार्य है कि क्या सारंग के आचरण का यह पहलू समर्थनीय है? स्वयं मैत्रेयी पुष्पा ने इसका समर्थन दो स्रोतों से खोजने का प्रयास किया है। एक स्रोत स्त्री की मातृत्व करुणा है, दूसरा स्रोत जाट समूह के परम्परागत नैतिक मानदण्डों में खोजने की कोशिश है। लेकिन मामला केवल किसी एक समुदाय की यौन नैतिकता के समर्थन का नहीं है, क्योंकि इस सिलसिले में ''ब्राह्मण–बनियों'' के आचरण को 'पाखण्डी' बताकर एक सामान्य सिद्धान्त की स्थापना भी की गई है। इसलिए 'चाक' द्वारा उठाया गया यह सवाल महत्वपूर्ण है कि क्या स्त्री–पुरुष के रिश्तों में इतनी स्वाधीनता नहीं होना चाहिए कि विवाह के बाहर भी सम्बन्ध बन जाऐं तो इसकी उदार छूट हो?

मैत्रेयी पुष्पा की यह विशेषता है कि उन्होंने जीवन के आधुनिकतम प्रश्नों की मीमांशा उसी जमीन पर करने की कोशिश की है, जो उनकी अपनी जमीन है, अर्थात् उत्तर–भारत का एक गाँव। यह भी मैत्रेयी की विशेषता है कि उन्होंने सारंग को करुणा से भरपूर बनाया है। सारंग रंजीत का परित्याग नहीं करती, केवल अपनी स्वाधीनता अर्जित करने का संघर्ष करती है। इसीलिए उसका यह संघर्ष निजी संघर्ष नहीं है, बल्कि एक नई नैतिकता की माँग है जिसके दायरे में पूरा गाँव और इस बहाने पूरा समाज आ जाता है, जो उसके द्वारा प्रधान का चुनाव लड़ने के निर्णय से प्रकट होता है। उपन्यास इस बिन्दु पर समाप्त होता है कि उसका पति रंजीत ''बूथ कैप्चरिंग'' की योजना बना रहे शक्तिशाली लोगों से मारपीट कर अपने घर की चौखट

पर सिर टेक देता है। उसे लगता है कि वह 'चलती चाक' पर बैठा है, लेकिन क्या यह वही चाक नहीं है जिस पर सारंग श्रीधर और गाँव के दूसरे आज भी बैठे हुए हैं। हर स्थिति में कोई रचना जहाँ तक जा सकती है, 'चाक' वहाँ तक जाता है और हम में एक रचनात्मक खलबली पैदा करता है, यही उसकी सफलता है।

'चाक' उपन्यास पाठक को चिन्तन के लिए विवश कर देता है, क्योंकि इसकी नायिका कई लक्ष्मण रेखाओं को तोड़ती है। पति को ग्राम प्रधान का चुनाव लड़ने में मदद न देकर स्वयं अपने लिये परचा भरना फिर भी मान्य हो सकता है, किन्तु इस तथ्य को कम ही लोग पचा पायेंगे कि वह न केवल एक पर–पुरुष से प्रेम करती है बल्कि उसके साथ रात भी बिताती है। यह उसे व्यभिचार नहीं लगता बल्कि एक सहज स्थिति लगती है, जिसके लिए उसके मन में कोई परिताप नहीं है। विलक्षण बात यह है कि इसमें उसके बूढ़े ससुर का समर्थन भी है।

उपन्यास की नायिका 'सारंग नैनी' भारतीय संस्कृति, स्त्री मर्यादा और नैतिक पाखण्ड के प्रवचनों की असलियत से पूर्ण परिचित है। गुरुकुल के वातावरण में बहुधा होने वाले यौन सम्बन्धों के हादसे भी उसकी स्मृति को आच्छन्न किये हुए हैं। वह यह भी जानती है कि ऐसे सम्बन्धों के भंडाफोड़ के बाद सारा दण्ड स्त्री को ही दिया जाता है। वह स्वयं इन घटनाओं के बीच एक छोटे–मोटे संघर्ष की अगुवाई भी कर चुकी है।

इदन्नमम –

इस उपन्यास में घटनाओं के केन्द्र में है सोनपुरा और प्रासंगिक रूप से जुड़ जाता है श्यामली गाँव। दोनों गाँवों के बिम्ब–प्रतिबिम्ब और अन्तर्क्रियायें एक–दूसरे को प्रच्छन्नरूप से प्रभावित करती रहती हैं। उपन्यास की घटनाओं में गत्यात्मकता है और प्रमुख एवं गौण पात्रों का ऐसा पारम्परिक विनियोग है, जिसमें जय–पराजय और टूटने–जुड़ने की जीवन लीला तुमुल संघर्ष में घटित–विघटित होती रहती हैं।

अम्मा (प्रेम) को बहला–फुसला कर भगा ले जाने वाला रतन यादव

उपन्यास में कहीं प्रकट नहीं होता। उसका मात्र सूचित परिचय मिलता रहता है। तीन–तीन औरतों का अपहरण करने वाले रतन यादव का एक मात्र उद्‌देश्य उन औरतों की सम्पत्ति हथयाना है। ''तीन विधवाओं की जमीन चांपे बैठा है रतन यादव। किसी को भगाकर तो किसी को बहला–फुसलाकर, उससे बढ़कर उसका बेटा राजू यादव। वह पठ्ठा पिस्तौल की नौक पर करता है सारे काम। वकील, जज सब उसके बस में।''[1]

'प्रेम' का प्रायश्चित विधान और अपनी बेटी मंदाकिनी के लिए उसकी उमड़ती ममता का चित्रण मार्मिक है। प्रेम के चरित्र का सारा कल्मष लेखिका के सौहार्द्र और सहानुभूति से धुल जाता है। प्रेम की वापसी फिर भी नहीं हो पाती। बऊ द्वारा वह घर से लौटा दी जाती है। लेखिका बऊ की कुंठाओं और दमित यौनाकांक्षाओं को इसका कारण मानती है और बहुत खुलकर उसका विश्लेषण करती है।

मंदाकिनी अपने गाँव सोनपुरा में बाल–संगिनी सुगना और श्यामली में कुसुमा भाभी से अंतरंग रूप से जुड़ी रहती है। कुसुमा भाभी का चरित्र आत्मनिर्णय और दृढ़ संकल्पों से निर्मित चरित्र है, जो अपने व्यक्तित्व को क्रमशः दृढ़तर बनाती चलती है। मंदाकिनी के व्यक्तित्व को भी वह संकल्पों में ढालती है। पति यशपाल की परित्यक्ता कुसुमा जन्म से ही रुग्ण दाऊ जू (अमर सिंह) से प्रेम करती है और प्रेम के फलस्वरूप प्राप्त संतान पर गर्व करती है।

कुसुमा भाभी सामाजिक वर्जनाओं पर खुली चुनौती बनकर उभरती है। मैत्रेयी पुष्पा की लेखकीय सहानुभूति और नारी विषयक धारणायें यत्किंचित मात्रा में कुसुमा भाभी के चरित्र में निश्चय ही साकार हुई हैं। कुसुमा भाभी की कथात्मक अनिवार्यता श्यामली गाँव के घटनाक्रमों को मंदाकिनी से जोड़ने के रूप में भी कथित होती है। लेकिन यही साहस मंदाकिनी की बाल–संगिनी सगुना में नहीं आ पाता। औरतों के जिस्म का व्यापारी और शोषक, दुष्ट चरित्र अभिलाख की हवस का शिकार,

---

1. इदन्नमम्, पृ0 126

वह अपने पिता जगेसर के कारण बनती है। प्रश्न शेष रह जाता है कि जो सगुना बहिष्कृत मतदान से अलग रखने के लिए अपने पिता को कमरे में बंद कर सकती है, वही सगुना साहस के साथ कुकृत्यों का प्रतिवाद क्यों नहीं कर पाती। अभिलाख से गर्भवती बनी सगुना अंततः अभिलाख की हत्या के पश्चात् आत्महत्या कर लेती है।

उपन्यास में मंदाकिनी घटनाक्रमों में बड़े सहज ढंग से धीरे–धीरे उभरती है। सबसे बड़ी विवशता उसका स्त्री होना है और उसी की कीमत उसे चुकानी पड़ती है। बिरगवाँ में कैलाश मास्टर उस पर बलात्कार करता है और थाने का दीवान भी उसके साथ अश्लील आचरण करने की कोशिश करता है। स्त्री होना मंदाकिनी के अस्तित्व का आत्मसंघर्ष है।

उपन्यास के कथानक में प्रेम की एक निर्मल अन्तर्धारा है – सबसे अधिक कचोटने और उदास करने वाला प्रसंग। यह प्रेम उपन्यास का अंगी कथा–रस है। मकरन्द और मंदाकिनी के बीच प्रेम का अंकुरण कैशोर्य की निश्छलता में होता है और प्रगाढ़ होकर अन्तहीन प्रतीक्षा में रूपान्तरित होता है। इस प्रेम प्रसंग को लेखिका ने प्रकर्ष के करुण दृश्यांकन में पहुँचाकर मार्मिक और स्मरणीय बना दिया है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यास 'इदन्नमम' में विंध्य–अंचल में बसे लोगों की तीन पीढ़ियों को विस्तार से उकेरा है। जिस आत्मीय अनुराग और संवेदनात्मक गंभीरता से विंध्य पर्वतीय क्षेत्र का चित्र उकेरा गया है, उसमें विश्वसनीयता है और कथात्मक सादगी भी। उपन्यास का कथानक महेन्द्र की माँ (बऊ) और महेन्द्र की बेटी मंदाकिनी इन दो ध्रुवों के बीच सिमटा हुआ है। बीच में है महेन्द्र की पत्नी प्रेम मन्दाकिनी की माँ। बऊ, प्रेम और मंदाकिनी की पीढ़ियों की कथा है यह उपन्यास, जो विंध्य के दो कल्पित गाँवों सोनपुरा और श्यामली के बीच की है।

उपन्यास के केन्द्र में मंदाकिनी है। उसके पिता महेन्द्र सिंह की हत्या गाँव में अस्पताल भवन के उद्घाटन समारोह के समय हो जाती है। मंदाकिनी की माँ (प्रेम) पति के शोक में कुछ दिन व्यथित रहती है और फिर रिश्ते के अपने बहनोई रतन यादव

के साथ भाग जाती है। मंदाकिनी का निर्यात चक्र यहीं से प्रारम्भ होता है। धूर्त और लम्पट रतन यादव प्रेम के माध्यम से नाबालिग मंदाकिनी को हस्तगत करने की कोशिश करने लगता है। कारण है जायजाद का बड़ा हिस्सा, जो मंदाकिनी के नाम है। बऊ (दादी) अपनी पौत्री मंदाकिनी की संरक्षिका बनकर उभरती हैं और अपने गाँव सोनपुरा की सम्पूर्ण जायजाद छोड़कर दूरस्थ रिश्तेदार पंचम सिंह (दादा) के गाँव श्यामली आ जाती हैं।

वहाँ बऊ मंदाकिनी को अज्ञातवास में बनाये रखती हैं, क्योंकि रतन यादव के आदमी वहाँ भी पीछे पड़े हैं। अपने को छिपाये रखने के सिलसिले में मंदाकिनी और बऊ को ओरछा के जंगल में एक वीरान गढ़ी में शरण लेनी पड़ती है। जब वहाँ भी आशंका होने लगती है, तब बऊ मंदाकिनी को लेकर बिरगवाँ चली जाती है। फिर बिरगवाँ से श्यामली और इस प्रकार सात वर्ष बाद अपने गाँव सोनपुरा में पुनरागमन।

उपन्यास के कथानक के दो वैचारिक आधार बिन्दु हैं। एक "जब तक मनुष्य आत्मरत् रहता है, अपने दुःखों से नहीं उबर पाता। समष्टिगत प्रेम मानव को दुःखों से बाहर खींचता है।"[1] दूसरा "अपने हिस्से की लड़ाई जब तक हम दूसरों से लड़वाते रहेंगे, तब तक उसकी कीमत हमें चुकानी पड़ेगी।"[2] अपने गाँव सोनपुरा में इन्हीं दो संकल्पों के सहारे मंदाकिनी शोषित और वंचितों के साथ जुड़ जाती है। स्वयं शोषितों की पीड़ा झेलती है और स्त्री होने की यातना भी सहती है। इस दृष्टि से देखें तो मंदाकिनी के चरित्र में विकास गति की सहजता है।

क्रैशर मशीन आ जाने के कारण गाँव का पूरा ढाँचा चरमरा गया है। मजदूर निरूपाय और जीविका से वंचित हो गये हैं। मंदाकिनी पूंजीवाद के उच्छेद की लड़ाई का नेतृत्व नहीं करती, फिर भी उसकी लड़ाई अंत तक चलती रहती है। पारीछा थर्मल प्लान्ट के कारण विस्थापित बेरोजगारों की लड़ाई लड़कर जन पक्ष में विजय प्राप्त

---

1. हंस, अगस्त 1994, समीक्षक रामधारी सिंह दिवाकर, पृ0 87
2. उपरिवत्

करने वाले टीकम सिंह का संन्यास मार्ग आधुनिक युग में धर्म की नयी भूमिका का संकेत है।

उपन्यास में कुछ गौण पात्रों के प्रत्याशित शील का विपर्याय पाठक को चमत्कृत ही नहीं करता, मन में मानवीय आस्था भी जगाता है। लखना डाकू के रूप में कुख्यात रह चुके डबल बब्बा मंदाकिनी और बऊ को ओरछा के जंगल में छिपने की सुरक्षित जगह तक ले जाते हैं और परित्यक्ता कुसुमा भाभी के पिता बनकर उसके पति के द्वार तक पहुँचाते हैं। पति यशपाल के अस्वीकार करने पर उसकी जमकर पिटाई भी करते हैं। लीला का अभिलाख के लिए प्रेम और अहिल्या का जगेसर के लिए प्राणार्पण, तुलसिन का अपने अबैध बूढ़े पति का पेट भरने के लिए दिन–रात मेहनत करना, ऐसे कुछ छोटे–छोटे कथा खण्ड भी हैं, जो मर्म को छू जाते हैं।

'इदन्नमम' में वस्तुतः कथा के दो ही केन्द्रक हैं– औरत और सम्पत्ति। उपन्यास में अनेक स्थानों पर लेखिका ने मुखर होकर स्त्री पक्ष की वकालत की है। पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था के प्रति स्वाभाविक असंतोष और प्रत्याख्यान कहीं कथा के भीतर से उद्भूत हुआ है, तो कहीं–कहीं आरोपित भी है। उपन्यास में राजनीति के दाँव–पेंच और चुनावी आश्वासनों के झूठ का भी पर्दाफाश किया गया है।

उपन्यास में कुछ असंगतियाँ भी हैं और भ्रांतियाँ भी। कुसुमा भाभी की अवैध सन्तान को दादा द्वारा निर्द्वन्द्व भाव से स्वीकार करना और अपनी सम्पत्ति का तीसरा भाग उस संतान के नाम कर देना, कुसुमा भाभी का नारी विषयक नई नैतिकता का प्रवक्ता बनना उनके चरित्र से पूरी तरह मेल नहीं खाता।

उपन्यास में मूल चिन्ता जीवन–दृष्टि और मानवीय निर्यात को रूपायित करने की है और इसमें सन्देह नहीं कि मैत्रेयी पुष्पा ने 'इदन्नमम' में व्याप्त फलक और जीवन को उसकी जातीय स्मृतियों के परिप्रेक्ष्य में जिस गहरी संवेदना, तन्मयता और आत्मिक संलग्नता से चित्रित किया है, वह उल्लेखनीय है।

अल्मा कबूतरी –

मैत्रेयी पुष्पा का उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' मड़ोरा खुर्द की एक 'कबूतरा बस्ती' की अन्तर्कथा है। कबूतरा जाति का इतिहास बताने के लिए लेखिका ने उपन्यास की भूमिका में पं० जवाहर लाल नेहरू का एक कथन उद्‌घृत किया है– "अपराधी जनजाति अधिनियम के विनाशकारी प्रावधान को लेकर मैं चिन्तित हूँ। यह नागरिक स्वतंत्रता का निषेध करता है। इसकी कार्यप्रणाली पर व्यापक रूप में विचार किया जाना चाहिए और कोशिश की जानी चाहिए कि इसे संविधान से हटाया जाये। किसी भी जनजाति को 'अपराधी' करार नहीं दिया जा सकता। यह सिद्धान्त न्याय और अपराधियों से निपटने के लिए किसी भी सभ्य सिद्धान्त से मेल नहीं खाता।"[1]

यह बात गाँधी जी ने सन् 1936, अक्टूबर में कही थी। तब जो संविधान था, वह अंग्रेजों के हाथ का बनाया हुआ था। सन् 1950 में भारत ने अपना नया संविधान बनाया। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने यह दर्शाया है कि अंग्रेजों के जाने के बाद और संविधान बदल जाने के बावजूद जनजातियों, आदिवासियों के लिए परम्पराएं नहीं बदलीं। उनका पेशा नहीं बदला। स्वतंत्र भारत में देश धन–धान्य से परिपूर्ण हुआ, गोदामों में अनाज सड़ते रहे, सरकारें उनका उपयोग निर्धनों के हित में न कर सकीं। उलटे निर्धन, दलित और कमजोरों को सताया जाता रहा, उन्हें उपेक्षित किया जाता रहा। सरकार के नुमाइन्दे, हाकिम, हुक्काम, थाने, पुलिस उन्हीं से कुछ न कुछ लूटते–झींटते रहे।[2]

उपन्यास में मड़ोरा खुर्द की 'कबूतरा बस्ती' का इतिहास बताते हुए उन्हें झाँसी की रानी का सिपाही कहा गया है। "कहते हैं रानी झाँसी के संग लड़ने वालों को उनके शहीद होने के बाद जब अंग्रेजों ने खदेड़ना शुरू किया तो वे जहाँ–तहाँ ऐसे फैल गये, जैसे पानी फैल जाता है। जिनको बुन्देलखण्ड की मिट्‌टी ने अपना लिया, वे ऐसे लोग थे जिनकी बोली–बानी, रहन–सहन, तौर–तरीके अपने इलाके के थे।

1. अल्मा कबूतरी उपन्यास की भूमिका से
2. अकार, अंक–2, जुलाई 2001, समीक्षक डॉ0 प्रेमिला, पृ0 175

मगर वे, जो इस कसौटी पर खरे न उतरते थे, जिनका पहनावा और भाषा जुदा थी, अलग छट गये। वे अनाथ, असहाय कुछ तो फौजी बूटों तले कुचलकर मर खप गये, कुछ भटकते–भागते यहाँ चले आए।[1]

मैत्रेयी पुष्पा की जरायमपेशा जाति कबूतरा की इस रूपान्तरण गाथा में दो धाराएं समानान्तर चलती हैं। पहली बदलाव के लिए कबूतरा समाज की आन्तरिक तड़प और बाह्य प्रयास। दूसरी– औरत का आन्तरिक और बाहरी सशक्तीकरण। गहरी पड़ताल करें तो समाज और औरत दोनों का बदलाव एवं सशक्तीकरण परस्पर सहयोगी धाराओं के रूप में उपन्यास में उभरते हैं।

राणा उपन्यास का नायक है, जिसकी आयु लगभग नौ वर्ष है। कबूतरा बस्ती में अवान्तर कथा को जन्म देती है कदमबाई। यह बस्ती के एक लड़के जंगलिया की पत्नी है। बेहद सुन्दर। इससे विवाह हो जाने पर जंगलिया बहुत खुश है। एक दिन गाँव के कज्जा मंसाराम की निगाह जंगलिया की पत्नी कदमबाई पर पड़ी। मंसाराम की नियति खराब हो गई, कदमबाई को पाने के लिए। उसके पति को चोरी के अपराध में फंसवा दिया। फिर जंगलिया से कहा– "तू कुछ दिन के लिए भूमिगत हो जा कि भगवान के हाथ भी न लगे।"[2]

मंसाराम मौके की तलाश में थे। कदम की जिठानी भजनी के डेरे पर दारू पीने गये थे। डेरे पर दारू की बिक्री और पीना–पिलाना कब का खत्म हो गया था, मगर उनकी इच्छा भरी नहीं थी। माहौल कुछ ऐसा था कि भजनी ने अर्ज की "मालक आपकी मेहर हो जाए तो जंगलिया एक रात बस एक रात को। भजनी कह बैठी कि लाज की बात है माते, पर नींद, भूख, डर और पुरिख की इच्छया क्या लाज मानती है? असल में आज कदम की माहवारी का चौथा दिन है, मर्द पास होता तो .... । भजनी प्याज के कतरों पर चटनी डालने लगी और मंसाराम को औरत की परत–परत

---

1. अल्मा कबूतरी, पृ0 11–12
2. उपरिवत्, पृ0 19

आर–पार दिखने लगी।[1]

जंगलिया इस कबूतरा बस्ती का नायक हो सकता था तथा कदमबाई नायिका। दोनों मिलकर विद्रोह का मार्ग तलाश सकते थे। घायल होते, मारे जाते, लेकिन कोई दिशा तो खुलती। किन्तु उपन्यास की कहानी के अनुसार यहाँ कथा नायक जंगलिया नहीं मंसाराम है। अड़तालीस बीघे के काश्तकार मंसाराम के लिए पूरी कृति सहानुभूति के ताने–बाने बुनती है और दलित समस्या को हाशिए पर फेंक देती है। मंसाराम को एक ऊर्जावान, उदार, पौरुषवान प्रेमी भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कदमबाई को लेकर उन्हें कभी गर्व नहीं हुआ। यह स्थल ऐसा था जहाँ उपन्यास वर्गीय विश्लेषण का सहारा लेकर दलित जीवन के सच को उजागर कर सकता था, दलित महिला के स्वाभिमान और विवेक से उपन्यास में नारी सौन्दर्य चेतना का सृजन कर सकता था, किन्तु कदमबाई इस तरह सोचती है– "मन ही मन चाहा है उन्हें, कज्जा मर्द की इच्छा थी। ऐसा न होता तो मंसाराम उस रात अपने खेत में आसानी से मौज कर पाते? बाहों से बांह कसते ही अटपटा लगा था। वह जंगलिया कबूतरा का अक्कड़ भिंचाव नहीं था, मुलायम परस और अलग तरह से चूमना .... दबाना....... औरत पल भर नहीं लगाती पहचान में।"[2]

उधर मंसाराम की हालत देखिये– "लोगों की निगाहों से बचने की कोशिश करते हैं। भूले से कहीं थोड़ी सी इज्जत पा जाते हैं तो धन्य हो उठते हैं।"[3]

गोरामछिया इस कथा में दूसरा मोड़ है। यहाँ की कबूतरा बस्ती में एक स्त्री थी भूरी। भूरी के पति को पुलिस ने मार डाला था। उस समय उसके पास चार महीने का बेटा था– राम सिंह। भूरी ने दूसरा विवाह नहीं किया। अपने बच्चे को पढ़ाने के लिए श्रम का मार्ग नहीं अपनाया, बल्कि देह का व्यापार किया।

भूरी सम्भवतः इस उपन्यास की दार्शनिक प्रवक्ता है। उसने बेटे को पढ़ाने

---

1. अल्मा कबूतरी, पृ0 20–21
2. उपरिवत्, पृ0 37
3. उपरिवत्, पृ0 10

के लिए जो रास्ता चुना, वह भारतीय शिक्षा व्यवस्था के गाल पर करारा तमाचा है, क्योंकि भूरी ने अन्य दलित स्त्रियों की तरह अपनी इज्जत के प्रति सचेत हाड़तोड़ मेहनत तथा संघर्ष की राह छोड़ दी। यहाँ आकर कथा की हिम्मत टूट गयी है। उसके पास मध्यमवर्गीय जीवन दर्शन की तलछट को कबूतरा–आदर्श बनाने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा। अगर यहाँ पर सामाजिक परिवर्तनों की पहचान की गई होती, तो संघर्ष के रास्ते खुल सकते थे।

कथा में तीसरा और केन्द्रीय मोड़ है अल्मा। अल्मा रामसिंह की बेटी है। कदमबाई ने अपने बेटे राणा को किशोरावस्था में गोरामछिया भेज दिया। रामसिंह का घर मध्यवर्गीय सौन्दर्य बोध के अनुसार निर्मित था। अल्मा अंग्रेजी पढ़ी–लिखी तेज दिमाग की लड़की थी। राणा को प्रेम करने के लिए उकसाती है, देह सम्बन्ध बनाती है। चार साल बाद राणा को पता चलता है कि रामसिंह मुखबिर है। बेटा सिंह डाकू के नाम पर उसी की बस्ती के दूलन का एन्काउन्टर करवाना चाहता है।

इस उपन्यास में एक जड़ी भी वनस्पति जगत की एक मात्र स्वनाम धन्य नायिका है। इसके नाम का प्रयोग पूरे उपन्यास में लगभग सौ बार हुआ है। 'रूखरी' गर्भ न ठहरने देने की दवा है। दूलन वही लेने आने वाला है, राणा छिपकर सारी बातें सुन लेता है और बेहिसाब कांपने लगता है। घबराकर वह अपनी प्रेमिका अल्मा से प्रश्न करता है 'मेरे साथ चलोगी'। वह अचकचा गई और बोल बैठी 'नहीं'। इस पर राणा भागकर मड़ोरा खुर्द आ गया। उसने दूलन को बचा लिया, लेकिन रामसिंह को उसकी जगह मृत पाकर उसे कोई गर्व नहीं हुआ, वरन् दुःखी हुआ और सदा के लिए पागल हो गया।

अल्मा डाकू नेताओं के हाथ बिकती–बिकती अत्यन्त रूमानी ढंग से 'अल्मा शास्त्री' हो गई और बबीना विधान सभा सीट से विधायक प्रत्याशी और मुख्यमंत्री पद की दावेदार बनी। इस तरह इस उपन्यास की कई परतें हैं, जो अपने जटिल विन्यास में अनेक कथाओं को समेटे हुए हैं। 'अल्मा कबूतरी' में भी कम से कम दो कथा धाराएं

तो हैं ही– एक धारा है जरायमपेशा कबूतरा लोगों की, दूसरी– कज्जा (संभ्रान्त) लोगों की। लेखिका ने दोनों के यथार्थ को बारीकी से देखा है और उनकी तमाम जटिलताएँ खोलने की कोशिश की है।

"प्रारम्भ से अन्त तक उपन्यास बुन्देलखण्ड की पुट वाली हिन्दी तथा उसकी अपनी खनक को बाँधे रखता है। भाषा में इतनी जान है कि हम राग में डूब जाते हैं। प्रांजल गद्य के लिए भी इस उपन्यास को याद किया जाएगा। सुध–बुध को सुधि–बुधि और तड़पती को तड़पड़ाती पढ़ना अच्छा ही लगता है।"[1]

'अल्मा कबूतरी' खानाबदोश कबूतरा जनजाति के जनजीवन को लेकर लिखी गयी कथा है, जिसके विस्तार में आज का पूरा राजनैतिक परिदृश्य भी इस प्रकार उलझा है कि कहना मुश्किल है कि यह किनकी कथा है। इसलिए कहा जाना चाहिए कि केन्द्र में तो कबूतरा जनजाति के खानाबदोश हैं, लेकिन इसे लेकर जो परिधि बनती है, उसके भीतर आज के उत्तर भारतीय जन–जीवन और राजनीति के यथार्थ का एक बड़ा हिस्सा है।[2]

अगनपाखी –

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने 'अगनपाखी' उपन्यास में शीतलगढ़ी के निवासियों की सामान्य जीवनधारा को उसकी सम्पूर्ण विडम्बनाओं और मार्मिकता के साथ अत्यन्त सशक्त अभिव्यक्ति दी है। इसमें सामान्य जीवन के विवरण हैं तथा मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ भी हैं, जिनकी पृष्ठभूमि में जीवन का गम्भीर एवं व्यापक अनुभव तथा तीव्र संवेदना भी उपस्थित है। 'मैत्रेयी' ने अपने कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन की परिस्थितियों तथा बुन्देली खनक वाली बोली को अपना विषय बनाया है। इनके साहित्य में अभिजात और कुलीन चित्रण कम हैं।

अगनपाखी उपन्यास की कहानी, नायिका भुवन मोहिनी तथा उसके मौसेरे

---

1. हंस, सितम्बर 2000, समीक्षा– प्रेम कुमार मणि, पृ0 92
2. उपरिवत्, पृ0 90–91

भाई चन्दर के आसपास घूमती है। विराटा के ठाकुर अमान सिंह की किशोरी बेटी भुवन बचपन से ही अपनी बहिन के समवयस्क बेटे चन्दर के साथ खेलती–कूदती रहती है। पितृहीना इस लड़की का अनायास दैहिक आकर्षण भी चन्दर के प्रति हो जाता है, जिसकी भनक लगने पर दोनों को दूर–दूर रखा जाने लगता है। भुवन खुद को चुप्पी और कर्मठता के आवरण में बंद कर लेती है। उधर चन्दर अपने पिता के घर बरुआ सागर और झाँसी में उच्च शिक्षा प्राप्त करता है। चन्दर के पिता एक बड़े घर के छोटे कुँवर विजय सिंह से भुवन का रिश्ता तय करा देते हैं फिर विवाह भी हो जाता है।

जनश्रुतियों से ज्ञात होता है कि भुवन का पति अस्वस्थ और नपुंसक है, जिसका उपचार किसी तांत्रिक द्वारा किया जा रहा है। मायके लौटी भुवन ससुराल नहीं जाना चाहती, पर माँ जिद करके भेज देती है। वहाँ एक मंदिर का बुद्धिजीवी पुजारी उसे हवेली की रहस्यात्मक सच्चाइयों से परिचित कराता है। पुजारी का बेटा राजेश और भुवन परस्पर आकृष्ट होते हैं। चन्दर भुवन की ससुराल जाकर उसके जेठ से भिड़ जाता है और अनायास यह रहस्य पा लेता है कि भुवन के विवाह के बदले में चन्दर को नौकरी बड़े कुँवर ने दिलाई है। चन्दर ग्लानियुक्त तथा उन्मादग्रस्त होकर यहाँ–वहाँ भटकता रहता है। भुवन का पति आगरा के पागल खाने में भर्ती करा दिया जाता है। बड़े कुँवर के यहाँ यज्ञ में साधू महन्त चन्दर के छोटे भाई बृजेश को पीट देते हैं तथा बड़े कुँवर क्षमा याचना करते हैं।

अचानक छोटे कुँवर की अस्पताल में ही मृत्यु हो जाती है। उनके शव की प्रतीक्षा में मानसिक द्वन्द्व में उलझी भुवन स्तंभित सी बैठी है। जिठानी उसे अन्दर कमरे में ले जाती है। बाहर आकर भुवन के सती होने की घोषणा करती है। ग्रामवासी सुनकर सती के दर्शनार्थ उमड़ पड़ते हैं। भुवन सम्पूर्ण श्रृंगार कर पूजा–अर्चना के लिए देवी मंदिर प्रस्थान करती है। वहीं वृद्ध पुजारी के सहयोग से गुप्त द्वार से निकलकर बेतवा किनारे चन्दर से मिलती है। अपनी चप्पलें और कपड़े नदी किनारे छोड़कर, जल समाधि का भ्रम फैलाकर चन्दर के साथ भाग जाती है। बड़े कुँवर प्रचार कर देते हैं कि भुवन जल समाधि लेकर सती हो गयी, जबकि ग्रामीण उत्तेजित होकर मंदिर को

नष्ट–भ्रष्ट करके पुजारी की हत्या कर देते हैं।

अत्यन्त आकर्षक बुनावट में कसी यह कथा आद्योपान्त पाठक को बाँधे रखती है। सहज सम्बन्धों का चित्रण कर लेखिका मौसी तथा बहनौता के प्रणय सम्बन्धों की कहानी रोचक ढंग से उकेरने में सफल है।

'अगनपाखी' उपन्यास में बुन्देलखण्ड के 'मामुलिया' जैसे रोचक लोकगीत पाठक को जहाँ आनन्दित करते हैं, वहीं ज्ञानवर्द्धक लोकोक्तियों में बुन्देली की मिठास भी विद्यमान है। चारित्रिक वैविध्य से कथा में प्रांजलता का प्रादुर्भाव हुआ है।

"दृश्यों के विवरण और मनोद्वन्द्व के विश्लेषण में 'मैत्रेयी पुष्पा' का जवाब नहीं। कथा कहने की उनकी अनौखी शैली 'इदन्नमम्' से ही बदलती और निखरती आ रही है। इस कथा का प्रथम पुरुष चन्दर पूरी कथा को हर बार कोंण बदलकर आगे बढ़ाता है। मौसी–बहनौता के प्रेम–सम्बन्ध चित्रण करते वक्त लेखिका ने इतनी मेहरबानी जरूर की है कि अपने दूसरे उपन्यासों की तरह अभिसार और यौन समागम के दृश्य पाठकों के सामने नहीं खोले हैं, हिन्दी का आम आदमी शायद इन सम्बन्धों को इसी पतली दरार के आधार पर कुछ हद तक स्वीकार कर लेगा।"[1]

मैत्रेयी के लेखन में एक निरन्तरता है। वह भाषा और शिल्प प्रयोगों को अपने ढंग से इस्तेमाल करती हैं। इनके लेखन का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उससे हिन्दी उपन्यास लेखन की विशिष्टता का पता चलता है। "अगनपाखी में उन्होंने जिस प्रकार से भुवन का चरित्र चित्रण किया है, बेतवा नदी के आसपास के गाँवों तथा वहाँ के जमींदारों को अपने हितों के लिए धर्म का इस्तेमाल करते हुए दिखाया है, उसके आधार पर इस उपन्यास को सिर्फ स्त्री–विमर्श का उपन्यास न कहकर समाज–विमर्श का उपन्यास कहना ज्यादा उचित होगा।"[2]

---

1. अक्षरा, जनवरी–फरवरी, 2004, ग्रामीण सती की महागाथा, राजनारायण बोहरे, पृ०85
2. स्त्री अस्मिता में सती और सम्पत्ति संदर्भ : अगनपाखी, अनन्त विजय, हंस – अप्रैल, 2000, पृ० 88

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने इस उपन्यास में बुन्देलखण्ड में व्याप्त प्रतिशोध, संघर्ष, वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, घात–प्रतिघात तथा लोकविश्वासों का स्वरूप ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया है। जाने–पहचाने, जीवन–जगत को एक अनोखे ढंग से चित्रित किया है तथा ग्रामीण अंचल के जनमानस में व्यवहृत मूल भावनाओं के अनूठे चित्र उकेरे हैं।

झूलानट –

'झूलानट' मैत्रेयी पुष्पा का एक विशिष्ट लघु उपन्यास है, जिसमें गाँव की साधारण सी औरत 'शीलो' की कहानी को सहज विविधता से रेखांकित किया गया है। लेखिका ने 'शीलो' के चरित्र को उभारने के लिए बहुत सी स्थितियों, प्रसंगों एवं घटनाओं का संयोजन सफलतम् रूप से किया है। गम्भीर एवं चतुर, आधुनिक विचार सम्पन्न तथा स्वतंत्रता में विश्वास रखने वाली नायिका शीलो हिन्दी उपन्यास के कुछ न भूले जा सकने वाले चरित्रों में एक है। बेहद आत्मीय तथा पारिवारिक सहजता के साथ उसकी स्त्री शक्ति को उजागर किया गया है। "शीलो न बहुत सुन्दर और न बहुत सुघड़, लगभग अनपढ़, न उसने मनोविज्ञान पढ़ा है, न समाज शास्त्र जानती है। राजनीति और स्त्री विमर्श की भाषा भी उसे पता नहीं है। पति उसकी छाया से भागता है। मगर तिरस्कार, अपमान और उपेक्षा की यह मार न शीलो को कुएँ–बावड़ी की ओर धकेलती है और न आग लगाकर छुटकारा पाने की ओर।[1] तात्पर्य यह है कि मैत्रेयी के अन्य उपन्यासों की नायिकाओं की भांति शीलो भी न दीनता का प्रदर्शन करती है और न जीवन संघर्ष से पलायन करती है। वह जीवन के प्रति दृढ़ संकल्पित होकर श्रम की ताकत, अटूट जिजीविषा तथा अप्रतिम धैर्य का परिचय देती है।

बालकिशन परिवर्तित मानसिकता का शिकार, जीवन के विविध उतार–चढ़ावों को झेलता हुआ विकृत भावों की ओर अग्रसर होकर समाज के सम्मुख एक उदाहरण बन जाता है। एक ओर माँ की पूज्य पावन भक्ति–भावना उसे सदाचार की ओर प्रेरित करती है, तो दूसरी ओर शीलो के सौन्दर्य पर मुग्ध अतृप्त वासना के कारण कामुकता

---

1. प्राक्कथन, झूलानट, राजेन्द्र यादव, पृ0 5

का शिकार हो जाता है। बालकिशन और शीलो देवर–भाभी हैं। श्रवण कुमार और पूतना की तरह विपरीत प्रकृति के होते हुए भी आकर्षण में आबद्ध होकर एक हो जाते हैं। माँ की सांकेतिक स्वीकृति से उनकी भावनाओं को बल मिलता है। पास–पड़ोस की वृद्ध महिलाओं के गोपनीय विरोध के बावजूद वे अपने को अपराधी नहीं मानते।

लेखिका ने शीलो के चरित्र को मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति दी है। उसकी अन्तर्भावनाओं को जानना सहज नहीं है। वह बालकिशन से शारीरिक सम्बन्ध बनाती है, किन्तु पत्नी के रूप में सामाजिक मान्यता से दूर रहना चाहती है। वासनाओं की तृप्ति चाहती है लेकिन बंधन से परे रहना चाहती है। सुमेर के आने पर उसका दाम्पत्य भाव जाग्रत हो जाता है। बालकिशन को डर है कि कहीं शीलो का मन बदल न जाए। स्त्री के चरित्र और पुरुष के भाग्य को देवता भी नहीं जान पाते, मनुष्य की क्या विसात। बालकिशन अन्तर्मन मसोस कर रह जाता है। वह अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति यह कहकर 'शीलो के भीतर कई परते हैं[1] तथा तेरा पार पाना मुश्किल है शीलो'[2] करता है।

बालकिशन शीलो के शारीरिक सौन्दर्य पर तो मुग्ध है ही, साथ ही वह उसके ज्ञान का भी कायल है। मैत्रेयी पुष्पा ने शीलो के अनुभव, बड़प्पन तथा गम्भीरता को इस तरह व्यक्त किया है "ओ रेंगटा अम्मा के खीसा में रूपइया भर–भर कर कुछ न पाओगे। माँ की महिमा चोर–चकार नहीं मानते। छिन जायेगी सारी दौलत। ऊपर से मोह–ममता में गोते खाती बूढ़ी ..... पुलिसिया भइया ही निथार ले जायेगा रकम। अपनी मेहनत की कीमत जो नहीं जानता उसे लोग भी नहीं चीन्हते।"[3]

तात्पर्य यह है कि एक ओर बालकिशन शीलो के ज्ञान का दास है और दूसरी ओर प्यार में पागल होकर रिश्तों का बोध ही भूल जाता है। माँ के लिए 'दुरात्मा' तथा भाई के लिए 'बर्बर राक्षस' जैसे शब्दों का प्रयोग इसकी विकृत

---

1. झूलानट, पृ0 104
2. उपरिवत्, पृ0 104
3. उपरिवत्, पृ0 115

मानसिकता का ही नमूना है।

बालकिशन अपने भाई सुमेर के आने पर बुरी तरह भयभीत होता है क्योंकि उसने भइया से बहुत मार खाई है, फटकारें सुनी हैं। उनका चेहरा देखते ही उसका खून सूख जाता है, उसकी स्थिति शेर के सामने खरगोश जैसी हो जाती है, किन्तु शीलो का साहस उसे प्रोत्साहन देता है। शीलो की साहसिक अभिव्यक्ति "वे कौन होते हैं हमारी बावत् बात करने वाले"[1] उसकी निर्द्वन्द्व भावना को प्रकट करती है।

बालकिशन की माँ और शीलो की विचार भिन्नता नवीन तथा प्राचीन पीढ़ी के संघर्ष को स्पष्ट करती है। माँ में वर्चस्व रखने की लालसा विद्यमान है तो शीलो में स्वतंत्र रहने की प्रवृत्ति। मनचले युवक गलियों का चक्कर लगाकर कान्ता को प्रेम पत्र भी देते हैं। यहाँ तक कि बालकिशन भी नवयुवती के प्रति आकृष्ट होकर चुम्बन ले लेता है। शीलो देख लेती है। कान्ता की पिटाई की जाती है। रघु के पिता के साथ उसे कुछ कपड़े देकर विदा कर दिया जाता है, वही कपड़े कलह का कारण बन जाते हैं।

अम्मा महाभारत मचा देती हैं, प्रण की पूरी और मन की पक्की अम्मा मैली धोती पहनकर ढोर वाली बखरी में जा बैठती हैं। अम्मा किसी तरह बालकिशन के आग्रह पर या लोक लाज के भय से घर वापस आ जाती हैं। बालकिशन और अम्मा दोनों शीलो से नाराज हो जाते हैं। लेकिन शीलो पर इसका कोई प्रभाव नहीं। "शीलो सबका मिजाज जानती है। वह जानती है कि मतारी ढोर वाली बखरी में से उठ आई है, अपनी इज्जत की खातिर शीलो पर एहसान नहीं किया"[2] दोनों को मनाये उसका कुदका, एक थाली रोटी से ज्यादा कुछ नहीं। 'आँतें ऐंठेंगी तो अपढारे खाओगे'[3] तात्पर्य है कि अम्मा किसी भी प्रकार अपना प्रभुत्व कायम रखना चाहती हैं तथा शीलो किसी भी प्रकार उसकी अधीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं, नये–पुराने का वैचारिक संघर्ष मैत्रेयी ने बड़ी कुशलता से उकेरा है।

---

1. झूलानट, पृ0 100
2. उपरिवत्, पृ0 129
3. उपरिवत्, पृ0 129

माँ और शीलो के संघर्ष में बालकिशन की स्थिति झूला वाले नट की तरह दुविधापूर्ण है। एक ओर कुआँ तो दूसरी ओर बावड़ी। बालकिशन दोनों से तंग आकर साधु हो जाता है, किन्तु शीलो रूपी हंसिनी के लिए बालकिशन का पापी मन तड़पता है। अन्न की गठरी सिर पर धरकर पीछे–पीछे आती हुई शीलो उसके मन में समा गई है। जब वह सांय–सांय करते बीहड़ में स्त्री के लिए तरसते नशे में धुत साधुओं को अवर्जित, अप्राकृतिक कामवासना में संलग्न देखता है, उसका मन अस्थिर हो जाता है। सन्यासियों का मठ उसे भंगोड़ियों की शरणस्थली लगता है। कभी वह श्रद्धानन्द द्वारा टीकमगढ़ की कोमल, कच्ची उम्र कन्या के साथ बलात्कार की बात सोचता है, कभी वह ओरछा के रामलला के दर्शन की प्रशंसा करता है, तो कभी हरदौल जू के गुणगान करता है, कभी रामराजा के मंदिर की सीढ़ियां धोकर जीवन काटने की सोचता है, तो कभी मंदिर में जगतजननी सीता माँ के विग्रह में शीलो की छवि देखता है। उसका मन अनियंत्रित हो गया और वह सीता जी का आंचल खोलकर बदन सहलाने लगा। भक्तों ने पिटाई की घसीटकर बाहर डाल दिया गया। पीट–पीट कर शक्ल ही बिगाड़ दी। कौन पहचान सकता है कि यह बालकिशन है?

सारांशतः कहा जा सकता है कि 'झूलानट' उपन्यास में दो प्रवृत्तियों के बीच अस्थिर जीवन जीने वाला बालकिशन झूला पर झूलने वाले नट की भाँति चित्रित है। एक ओर नई पीढ़ी की प्रतीक शीलो है, स्वच्छंद जीवन की इच्छुक तो दूसरी ओर प्राचीन परम्परा एवं रुढ़िग्रस्त जीवन जीने वाली बालकिशन की माँ। बालकिशन नवीन एवं प्राचीन प्रवृत्तियों के बीच पेन्डुलम की भाँति अस्थिर है। उसके मन में वैचारिक दृढ़ता का सर्वथा अभाव है। मैत्रेयी पुष्पा का यह उपन्यास हिन्दी का विशिष्ट लघु उपन्यास है, जिसमें शीलो के माध्यम से लेखिका ने स्त्री शक्ति को पर्याप्त रूप से उभारने की पेशकश की है।

विजन –

मैत्रेयी पुष्पा का 'विजन' उपन्यास जीवन के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित

करता तथा प्रश्नोत्तर वाली चिर–परिचित जीवन्त शैली में लिखा गया है, जिसमें दैनिक जीवन की संभावित समस्याओं, घटनाओं तथा विडम्बनाओं में बिम्बों को सम्पूर्ण कुशलता से उकेरा गया है। निजी चिकित्सालयों में व्याप्त अमानवीयता, घूसखोरी, पक्षपातपूर्ण रवैया तथा शोषण को उजागर किया गया है और बताया गया है कि पैसे का लालच इंसान को मानवीयता के स्तर से कितना नीचे गिरा देता है। चिकित्सक रोगी के रोग से नहीं उसकी विवशता का नाजायज लाभ उठाने हेतु आर्थिक शोषण के विभिन्न तरीकों पर दृष्टि रखता है "यह कला किसी भी कला की तरह आज के बाजार की जरूरत है।"[1]

उपन्यास में डॉ0 आर0पी0 शरण विभिन्न हथकण्डों को अपनाकर यश एवं समृद्धि अर्जित करते हैं। अपने अयोग्य पुत्र को नेत्र चिकित्सक बनाने, उच्च चिकित्सकीय प्रमाण पत्र दिलाने के लिए भरपूर पैसा व्यय करने, मंहगी अंग्रेजी शराब पिलाने तथा रेमण्ड्स के थान वितरित करने जैसे किसी हथकण्डे से नहीं चूकते। योग्य बहू प्राप्त करने के लिए आर्थिक चकाचौंध से गरीबी को किसी भी मूल्य पर खरीदने, प्रतिद्वन्द्वी नेत्र चिकित्सकों को नीचा दिखाने, अपनी सफलता के लिए विरोधियों की असफलताओं का खुलासा करने तथा मीडिया को वशीभूत करके लाभकारी परिणाम प्राप्त करने के सभी अनैतिक विधान उनकी कार्यशैली में सम्मिलित हैं। अपने अस्पताल पर मरीजों की भीड़ जुटाने के लिए शासकीय चिकित्सकों को कमीशन देने, साधारण रोगियों को भी नर्सिंग होम में कुछ दिन के लिए भर्ती करके उनका शोषण करने, नई तकनीक वाली मशीनें जुटाकर मरीजों को प्रभावित करने और मनमाना पैसा कमाने में वे सिद्धहस्त हैं। सरकारी अस्पतालों की भी यही स्थिति है। पैसा नहीं तो कुछ नहीं।

मैत्रीय पुष्पा ने उपन्यास में समाज के बिगड़े हालात एवं पतनोन्मुख परिस्थितियों को अपूर्व साहसिकता एवं प्रभावशाली वर्णन क्षमता के साथ उजागर किया है। "नौकरी हड़पने के लिए ओछी तिकड़में, कुचलकर आगे बढ़ने का सिद्धान्त,

---

1. विजन, मैत्रेयी पुष्पा, पृ0 11

कांबिंग, गुटबंदी, ब्लेक मेलिंग, प्रतिभा का तिरस्कार–अपमान, बढ़ती कुंठायें–अवसाद, दम तोड़ती आस्थायें, विदेशों में भारतीय प्रतिभाओं का पलायन, सब कुछ इतना उलझा, जटिल और अन्तर्गुम्फित कि निश्चय पूर्वक किसी एक पर उंगली न उठाई जा सके। एक–दूसरे के कर्ता और शोषक, पूरक और भक्षक, चकरघिन्नी की तरह गोल–गोल घूमने को और एक–दूसरे को गरियाने को अभिशप्त, क्योंकि रूककर अपने भीतर और बाहर, दाएं और बाएं देखने का न अवकाश न रुचि, एक अनवरत् कवायद, निरर्थक लेकिन अनुशासित।[1]

'विजन' में मैत्रेयी पुष्पा ने औपन्यासिक कहानी को अपने वर्णन कौशल से बुनते हुए दो चरित्रों को उभारने का प्रयास किया है। आभा दी और डॉ0 नेहा शरण। आभा दी अकेले अपने बल पर सरोज रेप काण्ड का तथा डॉ0 चोपड़ा द्वारा चिकित्साकक्ष में मरीजों के सम्बन्धियों के आर्थिक शोषण का प्रखर विरोध करती हैं। आभा दी इस बात से अनभिज्ञ नहीं हैं कि संगठित प्रबल विरोध उन्हें परास्त कर देगा फिर भी साहस पूर्वक लड़ना उनका संस्कार बन गया है। जीवन को जड़ता प्रदान करने वाले सम्बन्ध उन्हें बाध्य नहीं कर पाते। कठोर साधना और निर्भीकता उनके सम्बल हैं। रूढ़ियों और सामाजिक व्यवस्था से टकराने का उनमें अपूर्व साहस है। वे लुधियाना जाकर कैरेटोप्रोंथैसिस सीखती हैं, आपरेशन द्वारा मरीज की आँख में धसा कील का टुकड़ा निकालती हैं। इस तरह आभा दी कर्मठता, जीवन शक्ति और अनन्यता की प्रतिमूर्ति बन जाती हैं, वह स्थिरता को मृत्यु का प्रतिरूप मानती हैं, जीवन का नहीं।

डॉ0 नेहा आज का सच है। उनकी दृष्टि में आदर्श की मायावी दुनिया से अपनी यही दुनिया अधिक जानी पहचानी एवं ठोस है, जो दुर्भावों और वैषम्यों के बीच जीना मुहाल कर देती है, क्योंकि आदर्श, मन को छूना नहीं है, वह अप्रवचनों की तरह खाली–खाली एवं सूखा–सूखा सा प्रतीत होता है। आभा दी भी इसी ठोस जानी पहचानी दुनिया की उपज हैं। अपने पति मुकुल के साथ जीवन के सुखद क्षणों का

---

1. हंस, अप्रैल 2002, समीक्षा– रोहिणी अग्रवाल, पृ0 85

आनन्द एक साधारण युवती की तरह वे भी लेना चाहती हैं। नेत्र चिकित्सक के रूप में अपनी प्रतिभा और कैरियर को दाँव पर लगाकर ससुराल में अपमान के घूँट भी पीने को तैयार हैं, ठीक डॉ0 नेहा शरण की तरह। किन्तु लेखिका ने आभा दी को अपने पैरों चलकर पाठक तक आने की आजादी नहीं दी, न ही अपनी आवाज में अपनी दास्तान कहने की इजाजत। वे नेहा की स्मृति में किस्से की तरह कौंधती हैं, लेकिन फिर भी नेहा और आभा को एक ही राह की राहगीर बनाकर मैत्रेयी पुष्पा जिस तरह उन्हें दो भिन्न परिणतियों की ओर ले जाती हैं, वह अन्ततः दो भिन्न दृष्टियों और जीवन मूल्यों का संकेत ही तो है।

नेहा एक प्रतिभाशाली नेत्र सर्जन के रूप में नाम कमाने के सपने में बँधी अपने को शरण खानदान की बहू "इस परिवार के लिए पदक जैसी है .... देखने–दिखाने भर की चीज।"[1] अनुभव करती है, वहीं आभा दी को ऐसी आत्महन्ता शहीदाना हरकतों से सख्त चिढ़ है। "हमें अपना ढुलमुलपन बूढ़ों के सिरे डालकर अपराध बोध से बचने का रास्ता मिल जाता है, माना लेकिन यह रास्ता क्या हमें आने वाले समय की जवाबदेही से भी बचा लेगा।"[2] "असल में सवालों से घिरकर नये सवाल उठाना और उनसे टकराने का जज्बा ही आभा दी को नेहा सरीखी उस सुविधा भोगी पीढ़ी से अलगाता है, जो गुपचुप उपयोगितावादी संस्कृति के तमाम सुख लूटकर बौद्धिक मुद्राओं के जरिये पतनशील व्यवस्था और व्यक्ति की बेचारगी पर प्रभावशाली तकरीरें देने में माहिर है।"[3]

उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा उस पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर सवाल उठाती हैं, जो स्त्री और पुरुष दोनों की स्वतंत्रता और अस्मिता को चौपट किये डाल रही है तथा पुरुष वर्चस्व की रक्षा के निमित्त परिवार एवं विवाह जैसी आधारभूत संस्थाओं को टूटने से नहीं बचा पा रही है। जो 'पुरुष को ऊँचाईयां देकर मार डालती है और स्त्री को

---

1. विजन, पृ0 48
2. उपरिवत्, पृ0 71
3. हंस, अप्रैल 2002, रोहिणी अग्रवाल, पृ0 86

अंधेरी अज्ञात निचाइयां।'[1] यह पराश्रित समाज व्यवस्था सिर्फ स्त्री को ही नहीं निगल रही है, पुरुष का भी आखेट कर रही है। नेहा की तरह हर साधारण युवती अपना दायित्व और प्राथमिकताओं को न जानने के कारण न स्वतंत्रता अर्जित कर पाती है, न आत्म परितोष। इसमें सफलता की संभावना तब तक नहीं हो सकती है, जब तक नेहा के साथ अजय और आभा दी के साथ मुकुल न उठ खड़े हों।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने विजन उपन्यास में गहरी अन्तर्दृष्टि का परिचय देकर समाज के वर्तमान सत्य को ज्यों का त्यों उजागर किया है। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं अनियमितताओं का खुलासा करके पुरुष प्रधान समाज पर करारा प्रहार किया है।

कस्तूरी कुण्डल बसै –

आत्म कथात्मक उपन्यास 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में अपनी सारी क्षमताओं के बावजूद स्वयं से छल करती हुई परम्पराबद्ध नारी कस्तूरी और इस छलपोषित परम्परा से मुक्त होने के लिए विद्रोह करती हुई नई पीढ़ी की सुरक्षित युवती मैत्रेयी की गाथा को आध्यात्मिक अर्थ देने वाले दोहे की मनोभौतिक व्याख्या से सम्बद्ध किया गया है। मैत्रेयी अपनी माँ कस्तूरी के कुण्डल से मुक्त होने के लिए निरन्तर सचेष्ट है पर माँ और बेटी कैंची के पल्लों के समान हैं, जिनका अस्तित्व और उपयोगिता एक–दूसरे को काट सकने में ही है। न कस्तूरी मैत्रेयी को छोड़ पाती और न ही मैत्रेयी कस्तूरी से मुक्ति पाने में सफल होती है। कस्तूरी अपने पुरुष विद्वेषी कुंडलक से जकड़ी हुई है, तो मैत्रेयी अपनी माँ की गुंजलक से।[2]

यहाँ मैत्रेयी कस्तूरी जैसी 'कठकरेज लुगाई' के माध्यम से अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त स्त्री अस्मिता की लड़ाई को पुष्ट और वैचारिक आधार देती है, जिसका हर कदम स्थिति का गहन विश्लेषण और भविष्य का ठोस प्रारूप बनने के बाद ही

1. विजन, पृ0 125
2. साक्षात्कार, अगस्त 2002, साहित्य अकादमी मध्य प्रदेश संस्कृति परिषद, कान्ति कुमार जैन के लेख से, पृ0 41

उठता है। बेरंग कपड़े, उजड़ा सूना चेहरा, नंगे बूचे हाथ, बेरौनक खुरदरे पाँव कस्तूरी का यह वेश मैत्रेयी की दृष्टि में व्यभिचारियों के खिलाफ एक मुहिम है, लेकिन स्वयं कस्तूरी के लिए 'योग' जिसके सामने आत्मरक्षा की अपेक्षा स्त्री जाति के आत्मसम्मान का वृहत्तर लक्ष्य है। "मैंने जोग की दीक्षा ली है। यह उन गृहणियों के खिलाफ हैं जो पत्नियाँ बनती हैं और समझौते करती हैं। उन ममतामयी माँओं के विरूद्ध है, जो मुँह सीकर दहेज का कोल्हू खींचते हुए बेटियों की भांवरें डालती रहती हैं। हम तुम अपने ही खिलाफ बाजार नहीं लगा देते? वर खरीदें या बेचें मर्दों की सहायता ही करते हैं।"[1]

कस्तूरी मात्र शक्ति, संकल्प तथा ऊर्जा का पुंजीभूत रूप नहीं है। मैत्रेयी की तीखी निरपेक्ष नजर माँ के उज्जवल धवल व्यक्तित्व के साथ दूर तक जाते मटमैले डोरों को भी बखूबी पहचानती है। मैत्रेयी की स्मृति को विषाक्त कर जाती है, अबोध बेटी लाली की समुचित देख–देख न करने वाली माँ जो बाद में नौकरी–जन्य मजबूरियों का जामा पहनकर न जाने क्यों अल्पायु से ही यौन शोषण का शिकार होती है, मैत्रेयी की शारीरिक–मानसिक यंत्रणा को अनदेखा करती रही है। बेटी को सरोजनी नायडू और सुचेता कृपलानी बनाने का सपना पालने वाली माँ के भीतर मौजूद हैं। विशुद्ध व्यवसायी स्त्री जो "अपूर्वदानी राजा मोरध्वज की छोटी बहिन बनकर बेटी के स्त्रीत्व को दाँव पर लगाने से नहीं हिचकती।"[2]

कस्तूरी में विधवाओं जैसी कातरता और आत्मदया को ओढ़ने–बिछाने की सस्ती भावुकता का मिला–जुला रूप है। जन्मपत्री की अपेक्षा लड़के की मार्कशीट देखकर विवाह सम्बन्ध ठहराने का हठ पालने वाली क्रान्तिकारी नायिका उसके भीतर छिपी है। असुरक्षित और कमजोर स्त्री जो पहली बार घर में पुरुष (दामाद) के आने के उत्साह में बावरी होकर नैतिकता और मर्यादा की सीमाएं तोड़ती हुई अनायास बेटी की सौत बन जाती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था की संरचना और ताकत जो चहरदीवारी

---

1. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ0 84
2. पहल, अंक 73, जनवरी–फरवरी 2003, समीक्षिका– रोहिणी अग्रवाल, पृ0 258

फलांगने वाली स्त्री की मर्दानगी की प्रशंसा करते हुए उसे धीरे–धीरे ऐसी मानसिक नैतिक कुठाओं में आबद्ध कर लेती है कि अनेक स्खलनों और अन्तर्विरोधों का शिकार हो वह स्वयं को छली गई ज्यादा महसूस करती है। लेखिका के पास ऐसे अनेक गुलाबी सपने हैं जिन्हें अबोध बालिका 'लाली' (मैत्रेयी) और अति अबोध वृद्धाएं कलावती काकी, खेरापतिन दादी आदि न समझ पाने के कारण गीतों–रिवाजों, व्रतों–कर्मकाण्डों में खोलती–फैलाती चलती हैं। विद्रोहिणी होते हुए भी कस्तूरी के खून से सिरजी मैत्रेयी की तासीर अलग है– सबके साथ जुड़कर आत्म साक्षरता की तलाश।

कस्तूरी और मैत्रेयी की देख–रेख में चलने वाले मौसम अवलोकन केन्द्रों में तालमेल बैठाने का काम डॉक्टर के जिम्मे है। कस्तूरी जैसी काठ स्त्री की बेटी मैत्रेयी जैसी मुँहफट, बिगड़ैल लड़की से खिल्ली, सिकुर्रा जैसे पिछड़े गाँवों की विन्नी से कौन शादी करेगा, डॉ0 करता है। वह हिम्मती है, समझदार है, विवेक सम्पन्न है। बेदाग और गौर कान्ति रूप, विद्या वैभव से जगमगाता।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी यह आत्मकथा प्रथम पुरुष की शैली में न लिखकर तृतीय पुरुष की शैली में अपने को 'मैं' के बजाय 'वह' के रूप में रखकर क्यों लिखी है? यह वस्तुतः आत्म में आत्मतत्व के निषेध की शैली है जो उन्हें 'आत्म' से निकालकर एक वृहत्तर 'लोक' से जोड़ती है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' मैत्रेयी पुष्पा की व्यवस्थित और क्रमबद्ध आत्मकथा के रूप में लिखित नहीं है, लेकिन वह उनके जीवन और परिवेश में हमे गहरे तक ले जाती है। वह हमें यह भी बताती है कि स्त्री–विमर्श कैसे अपने परिवेश में अपनी जड़ें रोपकर शक्ति और ऊर्जा प्राप्त करता है।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' में प्रसंगों के शीर्षक रे मन जाह, जहाँ तोहि भावे, उलट पवन कहाँ राखिए, हम घर साजन आए, दुल्हनियां गाओ री मंगलाचार, कैसे नीर भरे पनिहारी, जो घर जारै आपनौं आदि लोक संस्कृति और लोक संवेदना के उस अक्षय स्रोत का संकेत देते हैं, जिसमें मैत्रेयी पुष्पा का औपन्यासिक संसार आ बसा है।

चामुण्डा की मूर्ति में कमल लक्ष्मी का जो दर्शन उसने अपनी माँ कस्तूरी में किया है, वही उसकी स्त्री चेतना का सार बनकर उभरता है। यह चेतना अपनी मिट्टी में अपनी जड़ें कैसे और कितनी गहरी रोपती है, इसे इस आत्म–वृतांत में आये पात्रों– खेरापतिन दादी, लौंग श्री, कलावती चाची आदि की वास्तविकता में देखा जा सकता है। ये जीवन से उठकर ही उनकी रचना में चले आये हैं, इसी रास्ते इस विमर्श की मूल प्रवृत्ति को समझा जा सकता है।

खुली खिड़कियाँ –

'खुली खिड़कियाँ' मैत्रेयी पुष्पा के सदियों से अधिकार वंचिता नारी के उग्र तेवर तथा पुरुष–प्रधान व्यवस्था की प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले चेतावनी समन्वित क्रान्तिकारी लेखों का संकलन है, जो साहित्यिक अध्येताओं को ज्वलन्त समस्याओं के मानिन्द चिंतन हेतु जाग्रत करता है। इन लेखों की विषय–वस्तु हजारों सालों में व्याप्त धर्म, समाज, संस्कृति, साहित्य, राजनीति, फिल्म और टेलीविजन विषयक वर्जनाओं एवं अनियमितताओं का चाक्षुष कराती है। इस क्रान्तिकारी कदम के लिए मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा–साहित्य की नायिकाओं को अगुवा कर अपना प्रगतिशील लेखकीय दायित्व बखूबी निभाया है। इन प्रतिक्रियाओं का कारण लेखिका स्वयं व्यक्त करती है। "पहली है, पुरुष के खाते में शामिल शौर्य, वीरता, आक्रामक, नियंत्रण और दमन की अनिवार्यता तथा आकांक्षा, तो दूसरी बात है स्त्री से त्याग, क्षमा, सहनशीलता, उदारता और ममता की आग्रहपूर्ण जिद।"[1] इन कारणों में पुरुषवादी व्यवस्था का वर्चस्व ही झलकता है। यदि नारी जागरूक होकर अपने स्वायत्त की माँग करती है, तो उसे समाज, धर्म और सांस्कृतिक परम्परा विरोधी होने का फतवा दिया जाता है।

धर्म के परम्परागत स्वरूप की धज्जियां उड़ाकर स्त्री धर्म की वकालत करते हुए धर्म को 'श्रृंखला की कड़ियां' निरूपित किया है। जो धर्म स्वतंत्रता में बाधक हो, प्रगति एवं विकास में अवरोध डाले उसे कौन हिन्दू स्त्री अपना श्रेष्ठ धर्म कहेगी।

---

1. खुली खिड़कियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, अपनी बात, पृ0 6

लेखिका के उग्र विचार दृष्टव्य हैं ''स्वार्थी पंडितों, पुरुषवादी ऋषियों—मुनियों और कठमुल्लाओं की करतूत हमें गुलाम बनाने की साजिश रचती रही है, जिससे उनके राज्याधीश प्रसन्न होते रहे और उनकी गद्दी पर चवँर ढुलते रहे। जो अपने शारीरिक बल पर इतराकर फितूरी फतवे देते हैं, वे इतना नहीं समझते कि शारीरिक बल से आत्मबल भारी होता है। वे फिर कैसे धार्मिक हैं? अपनी दुष्टता को धर्म के नाम पर सिक्के की तरह क्यों चला रहे हैं? जबकि कहा तो यह जाता है कि धर्म का आचरण करने वाला व्यक्ति अपने शत्रु का भी बुरा नहीं चाहता। मगर देखिए कि इन तथाकथित धर्म के ठेकेदारों ने स्त्री की पराधीना का कुचक्र कैसे रचा।''[1]

लम्बे अरसे से चली आ रही रूढ़ परम्पराओं तथा स्त्री विरोधी षडयंत्रों एवं कुचक्रों को मैत्रेयी ने स्वयं झेला है, भोगा है। इसलिए एक जागरूक एवं विचारशील महिला लेखिका का क्रान्तिकारी विचार समय एवं परिस्थिति सापेक्ष है। जीवन में हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। 'परिवार' एवं 'विवाह' संस्थाओं के सख्त प्रतिबंधों ने दबे हुए नारी हृदय में जो प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति उत्पन्न की है, उसका कारण है 'मरता क्या न करता'। परिस्थितियां परिवर्तित हुई हैं, युग बदल गया है। 'परदा पलटता है, क्योंकि स्त्री के प्राणों पर बन आई है। स्वामी को ललकारना वाजिब है, क्योंकि उसने जल्लाद की भूमिका अख्तियार कर ली है। पत्नी रूपी स्त्री का दोष इतना है कि अपने प्रति सचेत होकर किसी दमन से इन्कार करती है। घुटन से मुक्ति चाहती है। पुरुष मानता है, यह औरत की अनधिकार चेष्टा है, वह आज भी पशुवत् ताड़ना की अधिकारी है।

सौन्दर्य की दृष्टि से नारी देह आकर्षण का केन्द्र रही है। स्वयं के रूप पर मुग्ध आज भी नारी सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में सम्मिलित होकर गौरवान्वित अनुभव करती है। कोमल तन में कोमल मन की परिकल्पना सदा से की जाती रही है, किन्तु पराधीनता, परवशता तथा गुलामी की श्रृंखलाओं में आबद्ध होने का कारण है— नारी की आकर्षक देहयष्टि। 'सच बात तो यही है कि सदियों से चली आ रही दैहिक

1. खुली खिड़कियाँ, स्त्री की धार्मिक यात्रा, पृ0 19

सौन्दर्य की परम्परा ने स्त्री की सारी आस्था, सारी निष्ठा उसके शरीर में केन्द्रित कर दी है और स्थापित कर दिया है कि उसकी सम्पत्ति या धरोहर (जो निजी नहीं है) देह ही है। अब वह जब भी मौका पाती है, अपनी देह का उपयोग तरह–तरह से करके जिन्दगी के वैयक्तिक और सामाजिक संकटों (उपेक्षा, अपमान, परित्याग) से संघर्ष करती रहती है।' विचारवान लेखिका मैत्रेयी पुष्पा 'हैलो तन्वंगी' लेख में विचार करती हैं ''आश्चर्य नहीं, कि उसका कटा–छटा–तराशा हुआ बदन बिक्री पर है ..... ब्यूटी पार्लरों की मशरूम खेतियों में तारिकाओं की फसलें हैं। पूरे देश में सौन्दर्य तंत्र बिछ गया है। महानगर, नगर से होती हुई यह सौन्दर्य दौड़ कस्बों तक जा पहुँची है। अब वहाँ लड़कियाँ पौष्टिक आहार की तमन्ना त्यागकर घी–दूध का मुँह तक देखना नहीं चाहतीं।''[1]

मैत्रेयी पुष्पा ने 'खुली खिड़कियां' में नारी–विमर्श को ही मूल मुद्दा माना है। सदियों से चली आ रही रूढ़ियों एवं परम्पराओं का सख्त विरोध, प्रबल खण्डन एवं जोरदार तर्कों में वकालत। समाज के जर्जर ढाँचे में जो असमानताएं एवं पक्षपात घर किये है, उसके कारण जिसे जो मिलना चाहिए, नहीं मिल पाता। इस तरह प्रगतिशील कहलाने वाले समाज का ढाँचा पतनोन्मुख होते हुए भी प्रगति का दम्भ पाले है। मैत्रेयी की पैनी दृष्टि से यह भी अछूता नहीं रहता। 'शर्म तो हमें इस बात पर आनी चाहिए कि एक ओर नवयुवा पेड़ों पर लटका–लटका कर मौत के घाट उतारे जाते हैं, दूसरी ओर बूढ़े लगभग घिसटते हुए और खुद को राष्ट्रनेता मानने वाले अपने आगे–पीछे, ऊपर–नीचे लगभग देश की पचहत्तर फीसदी सुरक्षा शक्ति लगाए हुए हैं। पूछा जाए कि भावी पीढ़ी का मांस खाकर, खून पीकर आखिर कितने जिन्दा रहना चाहते हैं।''[2] सामाजिक तथा राजनीतिक स्तर पर बड़े लोग ही बल्कि यों कहें– 'शासनतंत्र के मुखिया ही अशांति फैलाते हैं– ''आलाकमानों के लिए उथल–पुथल भरा माहौल तो बड़ा ही माफिक बैठता है, क्योंकि ऐसे समय में सत्ता पर किसी को उंगली उठाने की

---

1. खुली खिड़कियाँ, 'हैलो तन्वंगी', पृ0 88
2. उपरिवत्, पृ0 124

मोहलत नहीं मिलती।''[1]

मैत्रेयी पुष्पा ने स्त्री स्वातंत्र्य को लक्ष्य बनाकर क्रान्तिकारी कदम उठाते हुए ऐसे लाजवाब सवाल किए है, जो लेखकों को स्त्री से जुड़े दैहिक मुद्दों पर इन्सानी संवेदनशीलता और सहानुभूति के साथ गौर करने को मजबूर करते हैं। ''उत्तेजना से काम न लें, गम्भीरता से सोचें कि वे कौन सी मजबूरियां हैं या दोराहे हैं, जो बार–बार उसे भटकाकर खतरनाक दुनिया की ओर ले जाते हैं? यह चटखारों में उड़ा देने वाला मामला स्त्री के अस्तित्व से जुड़ा मूल प्रश्न है, आधी दुनियां के जीवन का सवाल .. तलवार भांजने से कुछ न होगा, कलम भांजकर सामने आइए।''[2]

'खुली खिड़कियां' में मैत्रेयी पुष्पा ने जीवन की विडम्बनाओं को मानसिक एवं वैचारिक खिड़कियों से झाँकने की पेशकश की है। स्वयं देखकर अनदेखा नहीं किया वरन् औरों को भी देखने तथा देखकर सोचने को मजबूर किया। समाज के साथ संस्कृति, साहित्य एवं राजनीति पर उनका दृष्टिकोंण सराहनीय है, तर्क अकाट्य हैं और यह कहना भी अत्युक्तिपूर्ण नहीं होगा कि उनकी कलम तलवार की तरह सदियों से व्याप्त अन्यायपूर्ण अत्याचारों, अनाचारों का वध करने के लिए सचेष्ट है। नायिकाओं के माध्यम से जो कटु सत्य उजागर हुए हैं, वे भले ही दकियानूसी ठेकेदारों को धारदार लगे किन्तु नारी जागरण के लिए पर्याप्त हैं। 'वे इक्का–दुक्का बौद्धिक लोग बेहूदा और व्यभिचारी मालूम होते हैं, जो स्त्रियों के पक्ष में अपना मत देते हैं।'

कही ईसुरी फाग –

मैत्रेयी पुष्पा का 'कही ईसुरी फाग' उपन्यास ईसुरी और रजऊ की अमर्यादित प्रेम गाथा का ज्वलंत दस्तावेज है। 'ईसुरी के काव्य में नारी संचेतना' ऋतु ने विषय को शोध के लिए चयन किया है। इस प्रेम गाथा का हिन्दी साहित्य में कोई लिखित पुष्ट प्रमाण उपलब्ध न होने के कारण ऋतु ने क्षेत्रीय विज्ञापनों के अनुभवों को आधार

---

1. खुली खिड़कियाँ, 'हैलो तन्वंगी', पृ0 125
2. खुली खिड़कियाँ, पृ0 169

बनाया है। सामग्री संकलन हेतु शोध छात्रा को जगह–जगह उसी प्रकार भटकना पड़ा, जैसे बीहड़ में कोई पथभ्रष्ट पथिक। 'ऋतु भी ईसुरी–रजऊ की प्रेम कथा के ऐसे ही बीहड़ों के सम्मोहन की शिकार है। बड़ा खतरनाक होता है जंगलों, पहाड़ों और समुद्र का आदिम सम्मोहन .... हम बार–बार उधर भागते हैं किसी अज्ञात के दर्शन के लिए। 'कही ईसुरी फाग' भी ऋतु के ऐसे ही भटकावों की दुस्साहसिक कहानी है।'[1]

मैत्रेयी पुष्पा ने ईसुरी तथा रजऊ और ऋतु तथा माधव की प्रेम गाथा को औपन्यासिक वर्णन कौशल के आधार पर समान्तर गति प्रदान की है। माधव ऋतु के शोध सहायक के रूप में अधिकतर साथ रहता है। सान्निध्य जनित प्रेम दैहिक आकर्षण उत्पन्न कर ऋतु और माधव को प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध कर देता है। विद्यालयीन फाग प्रतियोगिता में दोनों ईसुरी तथा रजऊ का अभिनय करते हैं। मैत्रेयी ने ईसुरी और रजऊ की दैहिक आकर्षण से समुत्पन्न प्रेम कहानी को कथा विस्तार का आधार बनाया है।

प्रारम्भ में सटई गाँव की सरस्वती देवी (नाटक की संयोजिका) रजऊ तथा ईसुरी की फागों के आधार पर नाटक का आयोजन करती है। थियेटर वाले इन कलाकारों को अधिक पारिश्रमिक देकर मण्डली भंग करने में सफल हो जाते हैं। सरस्वती देवी के पात्रों में ईसुरी, धीरे पंडा, प्रभू, रघू तथा प्रेमानन्द सूरे आदि हैं। फागों के आयोजन जगह–जगह चलते रहते हैं। माधौपुरा में प्रताप की बहू रज्जो के अप्रतिम सौन्दर्य की चर्चा जोरों पर है। ईसुरी रास्ता चलते अथवा कुएँ पर पानी भरते देखकर आकर्षित होते हैं और आशु कवि ईसुरी के मुँह से फाग निकल पड़ती है। अपने सहयोगी धीरे पंडा के आवाहन पर ईसुरी कहते हैं–

'चलती कर खाले खों मुइया
रजऊ बैस लरकइयाँ
हेरतजात उंगरियन में हो, तकती हो परछइयां।
धन्य भाग वे सइयाँ ईसुर, जिनकी आँय मुनइयां।'

---

1. फ्लेप पर अंकित टिप्पणी

उक्त फाग के बोल सुनकर रजऊ (रज्जो) की सास क्रोधावेश में आकर फगवारों को बुरी तरह लताड़ती है। क्योंकि फाग रजऊ के नाम से सम्बोधित है। 'ठठरी बँधे जू, हम रातई–रात काए आए हैं, सो भी समझ रए होगे। हमारी बहू की जिन्दगानी बरबाद करकें इतै तुम फगनौटा गा रए। अब हम तुमारी जीभ पै लूघरा धरे बिना नहीं जाएँगे, जरत लूघरा।'[1]

उक्त फाग में 'हेरतजात उंगरियन में हो तकती हो परछइयां' कहकर कवि ने भारतीय परदा प्रथा को उजागर किया है। लेकिन नारी स्वातंत्र्य की जोरदार वकालत करते हुए प्रेमानंद सूरे कहता है– 'यह कहो कि तमाम शर्म–लिहाज और सब तरह के पर्दा औरत के सिर हैं। अब वह किस रास्ते दुनिया देखे? हम कहते हैं कि हम अंधे से ज्यादा रज्जो परवश है, अपाहिज है। बहू की तकदीर तो उसी दिन खराब हो जाती है, जिस दिन उसका ब्याह होता है। बेचारी के कान–नाक, आँखों वाला चेहरा, कोल्हू के बैल के चेहरे की तरह बेकार कर दिया जाता है।'[2] लोक कवि ईसुरी की फागों में प्रेम का प्राकट्य है, तो रजऊ की लज्जाशील घुटन भी है। साथ ही लोक संगीत का पारम्परिक निर्वाह भी है।

रजऊ की सास ईसुरी से 'रजऊ' नाम लगाकर फागें न गाने का आग्रह करती हैं। सामाजिक अपयश एवं कलंक का भय उसे भयभीत करता है। किन्तु ईसुरी रज्जों का मादक स्पर्श पाकर शिवजी और सरस्वती की फागें कहना ही भूल गये। उनके सहयोगी कलाकार धीरे पंडा समझाते हुए कहते हैं– ''तुमने रजऊ की छवि भुवन मोहिनी बना दी है पर माधौपुरा के लोग उसे इस गाँव की रज्जो ही मान रहे हैं। रज्जो का पति प्रताप है तुम नहीं। अगर उसकी औरत को तुम इस तरह उघाड़ोगे तो उसकी आबरू उतारने के गुनहगार माने जाओगे।'[3] परन्तु ईसुरी प्रेम–प्राबल्य के कारण 'भरलओ कितनी बेरां पानी/रजऊ न आज दिखानी' कहकर अपनी उत्कट दर्शन

1. कही ईसुरी फाग, पृ0 21
2. उपरिवत्, पृ0 27–28
3. उपरिवत्, पृ0 71

लालसा अभिव्यक्त करते हैं।

ऋतु और माधव शोधकार्य की प्रगति में ईसुरी तथा रजऊ से सम्बन्धित सामग्री के लिए अनेक लोगों से मिलतें हैं। जानकार लोग अपने–अपने संज्ञान के आधार पर कहानी का वर्णन करते हैं। सर्वप्रथम बसारी वाली बऊ ने ईसुरी–रज्जो की प्रेमगाथा, रज्जो के पति प्रताप का बदनामी के भय से ईसुरी के प्रति कोप, प्रताप का पत्नी की चरित्रहीनता के कारण अपमानित, लज्जित होकर घर छोड़ जाना और अंग्रेजी फौज में भर्ती हो जाना तथा ईसुरी का रज्जो के बिना मिले माधौपुरा छोड़कर चले जाना आदि घटनाओं का वर्णन किया। जिससे शोधार्थिनी को रजऊ के चरित्र को विश्लेषित करने का अवसर मिला।

ऋतु अपने शोध निर्देशक डॉ0 पी0के0 पाण्डेय को डॉ0 रामविलास शर्मा का कथन उद्‌घृत करते हुए फोन पर बतलाती है– 'ईसुरी की रचनाएँ दोहरी नैतिकता के प्रति विद्रोह हैं। ईसुरी को जीवन से, जीवन के आनन्द से, यौवन, उल्लास और इन्द्रिय बोध के संसार से इतना प्रेम है कि वे बार–बार सामाजिक विवेचना की दीवार से टकराते हैं।'[1] कथन का तात्पर्य है कि ईसुरी नायिका के बाह्‌य आंगिक सौन्दर्य के प्रति आकर्षित होकर अपनी फागें कहते हैं। आन्तरिक सौन्दर्य उन्हें आकर्षित नहीं करता। वे जैसा सोचते हैं वैसा ही कहते हैं।

आगे चलकर ऋतु और माधव तुलसीराम बरेदिया के सम्पर्क में आते हैं। अठारह साल की उम्र वाला तुलसीराम तथा उसकी सहयोगिनी प्रेमिका मादुरी दोनों ईसुरी और रजऊ के प्रतिरूप बनकर फागों के माध्यम से प्रश्नोत्तर करते हैं। तुलसीराम ने बताया कि प्रताप नौकरी से छुट्‌टी पर आता है और रज्जो पर नियंत्रण करता है। स्थिति देखकर प्रताप कहता है कि – 'आखिर उसके सुन्दर और शान्तिपूर्ण घर में कलह का काँटा किसने रखा है? रामदास ने या ईसुरी ने। ये दोनों आदमी उसे खत्म करने पर आमादा हैं, बहाना रज्जो का है। एक का जमीन पर दाँव है, दूसरे का जोरू

---

1. कही ईसुरी फाग, पृ0 92

पर।'[1] प्रताप का मानसिक उद्वेलन उक्त कथन से प्रकट होता है। प्रताप छुट्टी काटकर पुनः नौकरी पर चला जाता है। प्रताप की माँ प्रताप के हाथ में तथा रज्जो के हाथ में महामाई से उनके मिलन की प्रार्थना करते हुए ताबीज बाँध देती है। शेष कहानी पूर्ववत् ही है।

ऋतु और माधव एक–दूसरे के प्रति आकर्षित हैं। उनमें शनैः शनैः आन्तरिक सम्बन्ध भी स्थापित हो जाते हैं। आगे दोनों ही शोध निर्देशक डॉ० पी०के० पाण्डेय के आदेशानुसार ओरछा पहुँचकर शालिग्राम कटारे से मिलते हैं। शालिग्राम उन्हें हरदौल की भाभी, कंचना नर्तकी, रायप्रवीण तथा रजऊ की कहानी सुनाता है। शालिग्राम कटारे चन्द्रपुर में सुनी फागों के आधार पर रजऊ की गाथा कहता है। चन्द्रपुर का कार्यक्रम आदिवासी लोकरंजन परिषद के तत्वाधान में सम्पन्न हुआ था। यहीं से मुसाहिब जू के आमंत्रण पर मंडली धौर्रा चली जाती है किन्तु वहाँ केवल ईसुरी को ही जाने दिया जाता है। शेष को उनके कारिन्दे लौटा देते हैं।

धौर्रा में चम्पाकली, रुक्मिणी तथा रज्जोराजा ईसुरी के प्रति आकर्षित हुई। रज्जोराजा मुसाहिब जू की लड़की है। इसके साथ अनैतिक सम्पर्क के कारण ईसुरी को सुरतिया तथा विरतिया के संकेत पर नीम के पेड़ से टांगकर बुरी तरह प्रताड़ित किया गया। अन्त में रुक्मिणी रसोईदारिन के सहयोग से ईसुरी रज्जोराजा को लेकर वहाँ से अपने मित्र बघौरा के चतुर्भुज के यहाँ चले जाते हैं। रज्जो का कोई पता नहीं चलता।

'शालिग्राम की कही हुई कथा इतिहास की प्रामाणिकता, भूगोल की सीमा और लोक व्यवहार की गहराईयों से लैस है। जीवन का मर्म खोलती हुई उसे विश्वसनीय बनाती है।'[2]

तत्पश्चात् सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० आनन्द मोहन जैन अपनी 'ईसुरी' पत्रिका में प्रकाशनार्थ आये तीन आर्टिकिल्स ऋतु के पास भेजते हैं।

---

1. कही ईसुरी फाग, पृ0 105
2. उपरिवत्, पृ0 173

शोधालेख सागर से शियाशरण, दमोह से रंगलाल तथा महोबा से पं0 शिव नारायण मिश्र के हैं। इनसे ईसुरी तथा रजऊ के बारे में आगे की जानकारी मिलती है। मुख्य रूप से रजऊ की अपयश भरी गाथा, प्रताप की आत्म ग्लानि तथा रामदास का अभिमान इनमें व्यंजित है तथा प्रताप की माँ की आन्तरिक वेदना भी मुखरित हुई है। रज्जो और उसकी सास दोनों प्रताप के विरह में दुखी हैं। बदनामी के डर से रामदास और प्रताप की माँ चाहते हैं कि रज्जो रामदास से बछिया (पुनर्विवाह) कर ले किन्तु यह प्रस्ताव रज्जो को स्वीकार नहीं है। रज्जो अपने भाई लछमन की बात को भी अमान्य कर देती है। तीनों आलेख लेखकों की अपनी विश्वसनीय जानकारी के अनुसार लिखे गये थे। इनसे रजऊ की कथा को और विस्तार मिला है। पं0 शिवनारायण मिश्र ईसुरी की एक फाग उद्धृत करते हैं – "बेटा अब तौ नांव बता दै, कीसें आँखें जोरीं" किन्तु सियाशरण इससे असहमत है। उनका तर्क है कि सभी जानते थे कि रजऊ का ईसुरी से प्रेम है, फिर पूछने का कोई औचित्य नहीं है। तीनों आलेखों में काफी कुछ साम्य है। सभी ने स्वीकारा है कि रज्जो घर से भाग गई थी।

ऋतु और माधव के प्रेम में माधव के मामा बाधक होते हैं किन्तु ऋतु साहस नहीं छोड़ती। वह सोचती है – 'प्रेम हुआ है तो रहेगा ही। यह रजऊ मुझे निरन्तर बता रही है। जैसे जिन्दगी मिली है तो जिएँगे भी। जिएँगे तो उसका भी कोई मकसद होगा। मेरा मकसद सिवा प्यार के और क्या है?[1] आगे ऋतु कहती है– 'प्यार का रिश्ता ब्याह से नहीं मन से बँधा रहता है।'[2]

शोधकार्य के लिए आगे की जानकारी करिश्मा बेड़नी अपनी परदादी गंगिया का संदर्भ देकर प्रस्तुत करती है। गंगिया प्रभू के साथ माधौपुरा जाकर प्रेमानंद सूरे की कोठरी में रजऊ से मिलती है। रजऊ "तुम बिन तलफ रहे दृग दोई" फाग गाकर अपनी वेदना व्यक्त करती है। करिश्मा द्वारा कहानी सुनकर ऋतु, माधव की स्मृति में खो जाती है। रजऊ गंगिया के साथ घूमती हुई देशपत दीवान के यहाँ पहुँच

1. कही ईसुरी फाग, पृ0 219
2. उपरिवत्, पृ0 219

जाती है। रजऊ समझती थी कि गंगिया फगवारे से मिलायेगी किन्तु वह वहाँ और अधिक संकट अनुभव करती है। करिश्मा बतलाती है कि ईसुरी आबादी बेगम के पास बघौरा पहुँच गये हैं। रजऊ और गंगिया जोगिन बनकर बागियों का सहयोग करती हैं। उसके बाद कुँवर आदित्य सिंह के साथ रजऊ वहाँ से भी चली जाती है। रजऊ को पता चल जाता है कि प्रताप की मृत्यु हो गई है, वह आंतरिक वेदना से व्यथित रहती है।

बीच–बीच में ऋतु, माधव के मामा के यहाँ रहने पर क्षोभ प्रकट करती है। तत्पश्चात् ऋतु को अगला कथा सूत्र अनवरी बेगम से मिलता है। अपने मित्र चतुर्भुज के यहाँ रहकर ईसुरी काकी की मृत्यु के बाद माधौपुरा नहीं जा पाये। रजऊ किसी तरह रानी लक्ष्मीबाई की फौज में पहुँच कर मृत्यु को प्राप्त होती है। ऋतु अनवरी बेगम के साथ आगे की जानकारी के लिए तालबेहट जाती है। रास्ते में प्राप्त माधव के विदेश जाने की सूचना ने ऋतु को दुश्चिन्ताओं में डाल दिया। अनवरी को एक एन0सी0सी0 शिक्षक ने जो कहानी सुनायी, वह उसे दो ठाकुरों ने सुनाई थी, जो रानी लक्ष्मीबाई के साथ रहे थे। अन्त में ईसुरी बघौरा में अपने मित्र चतुर्भुज तथा आबादी बेगम के सान्निध्य में रहे और वहीं उनका दुखद अन्त हो गया है।

ऋतु को विभिन्न सूत्रों से जो जानकारियाँ मिली, उनमें लगभग समानता है। किन्तु कुछ घटनाओं को छोड़कर ऋतु का शोधग्रन्थ, विद्वानों द्वारा लिखे गये ग्रन्थों के उद्धरणों के अभाव में तथा इतिहास ग्रन्थों एवं पत्र–पत्रिकाओं के पुष्ट प्रमाणों के अभाव में अस्वीकृत कर दिया गया।

'कही ईसुरी फाग' उपन्यास की भाषा बुन्देली मिश्रित खड़ी बोली है। यत्र–तत्र मुहावरों का भी सटीक प्रयोग उपलब्ध है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा का 'कही ईसुरी फाग' उपन्यास अतीत के गर्त में विलुप्त रजऊ तथा ईसुरी की प्रेम गाथा को अनावृत करता है तथा तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं को भी उकेरता है।

चिह्नार –

वर्तमान विषम स्थितियों में कहानीकार का दायित्व सामाजिक स्थितियों का मात्र मूक साक्षी बनकर रहना नहीं है वरन् अपने रचनात्मक सुझाव देने के साथ आवश्यकता पड़ने पर प्रतिक्रिया व्यक्त करना भी है। चिह्नार कहानी संग्रह में मैत्रेयी पुष्पा की कहानियाँ अनेकानेक पीड़ाओं, वेदनाओं तथा दुःख दर्दों को समेटे हुए इक्कीसवीं सदी के भारत की ज्वलन्त तस्वीर हैं। इन कहानियों में लेखिका ने यदि समाज की आर्थिक प्रगति का चित्र खींचा है तो शोषण की चरमस्थिति को भी रेखांकित किया है।

ऋणग्रस्त बुढ़ापा, दमित इच्छायें व्याकुल एवं बैचेन सपने, चिन्ताग्रस्त एवं निराश युवावस्था तथा अंधकारपूर्ण भविष्य के विविध दृश्य कहानियों के माध्यम से उकेरे गये हैं। 'अपना–अपना आकाश' कहानी वृद्धावस्था की मर्मान्त वेदना के विविध आयाम उपस्थित करने के साथ आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित पुत्रों का माँ के प्रति अमानवीय व्यवहार उजागर करती हैं। वृद्धा माँ की आशाओं पर तुषारापात होता है, जब उसे वृद्धाश्रम में भेजने का प्रोग्राम बन जाता है। इस कहानी में प्राचीन भारतीय आर्य संस्कृति के पतन की पराकाष्ठा परिलक्षित होती है। कहानी का कथ्य भोगे हुए यथार्थ की तस्वीर प्रतीत होता है।

उक्त कहानी से साम्य रखता हुआ कथ्य है 'बेटी' का। लेखिका ने वर्तमान समाज का यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत किया है। एक माँ अपने पांच लड़कों का पालन–पोषण विधिवत् कर सकती है किन्तु पांच लड़कों की माँ भरपेट भोजन के लिए भी तरसती है। 'चाची' का नैराश्यपूर्ण कथन देखिये– ''मुन्नी कैसे आबे बिटिया ..... भाभी, भौजाइयों का घर ..... यहाँ हम ही निभ जायँ, यही बहुत है। अरे क्या बताएँ बेटी, हमारे बनाये घर में से हमें ही निकालने को फिरती हैं ये बहुएँ। खेती–पानी सब बँटा ली, घर भी ले लेंगे, तो हम रहेंगे कहाँ? तुम न्याय की कहना वसुधा।'[1] मैत्रेयी ने यहाँ पुत्रों एवं

---

1. चिह्नार – बेटी, पृ0 23

पुत्रबधुओं की अमानुषिकता एवं स्वार्थपरायण दुर्व्यवहार का सटीक चित्रांकन प्रस्तुत किया है।

'सहचर' कहानी शैल्पिक दृष्टि से नवीनता लिये हुए है, पारम्परिक ढाँचे से कुछ अलग। लेखिका ने प्राचीन व नवीन परम्पराओं का समवेत चित्रण प्रस्तुत किया है। छबीली का सौन्दर्य पूर्ण आकर्षक यौवन, वंशी का अर्द्धविक्षिप्त होकर भी अतिशय सरल और गम्भीर स्वभाव का छबीली के प्रति कटु कर्कश व्यवहार, पति–पत्नी के मध्य पुरातन मर्यादा का बांध तथा दद्दा की निरंकुश एवं निर्दयतापूर्ण व्यवहारिकता का मिश्रित स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है। कहानी पाठक के लिए चिन्तन के विविध आयाम उपस्थित करती है।

'बहेलिये' कहानी तीन नारियों गिरजा, भोली और सावित्री के शोषण और उत्पीड़न की कहानी है। लेखिका ने इसमें बेमेल विवाह, बलात्कार, पुलिस उत्पीड़न तथा दलितों के साथ अन्याय आदि समस्याओं को उभारा है। सरकारी तंत्र अर्थात् पुलिस की दूषित एवं घृणित कार्य पद्धति को रेखांकित करते हुए मैत्रेयी ने गिरजा के मन में सामाजिक चेतना एवं दलितों के प्रति सहानुभूति को व्यक्त किया है। 'मन नाहिं दस बीस' मैत्रेयी पुष्पा की ऐसी मनोवैज्ञानिक कहानी है जिसमें 'स्वराज' और 'चन्दना' की मानसिक अन्तर्वेदना अभिव्यक्त हुई है। चन्दना की अभिशापित सी प्रतीत होती जीवन कथा को लेखिका ने अत्यन्त आकर्षक ढंग से संजोकर प्रस्तुत किया है। छुआछूत की समस्या, सवर्णों और हरिजनों के सम्बन्धों पर सामाजिक वर्जनाएँ, जानलेवा रूढ़ियों के विषैले विषधरों के क्रूरदंश आदि को लेखिका ने कुशलता से व्याख्यायित किया है। शुद्ध प्रेम की व्यंजना के साथ जातीय बंधन के विरूद्ध संघर्ष–चेतना को साकार करते हुए मैत्रेयी ने प्रगतिवादी वक्तव्य प्रस्तुत किया है– ''समझ में नहीं आता था– बचपन का साथ रहना जवानी में आकर गुनाह क्यों हो गया? जाति की दीवार पहले क्यों नहीं थी? केवल उम्र बदलने से पाप–पुण्य की परिभाषायें बदल गईं। जाति के ऊँच–नीच होने से प्यार का औचित्य खंडित हो गया? ऐसा क्या करने जा

रहे थे हम।'[1] कहानी का अंत कारुणिक है। चन्दना की करुण कथा अर्थात् निर्दोष नारी की व्यथा सुनकर तथा क्रूर समाज की कुत्सित विडम्बनायें अनुभव कर पाठक का हृदय द्रवित हो जाना ही लेखिका की सफलता है।

'हवा बदल चुकी है' कहानी में राजनीतिक दावपेंच तथा बदलते हुए आधुनिक परिवेश का प्रत्यक्षीकरण है। नये ग्राम प्रधान के शासन में जुआँ, चोरी, नशा, भ्रष्टाचार और बलात्कार का बोलबाला है। 'सुजान सिंह ठाकुर' में लेखिका ने गाँधीवाद का प्रभाव दिखाया तो है किन्तु जमींदार होने का अहम् उनके हृदय में पनपता रहता है। 'आक्षेप' कहानी का कथ्य विचारोत्तेजक तथा चिन्तन प्रधान है। इसमें मैत्रेयी पुष्पा ने 'रमिया' जैसे चरित्र की सृष्टि करके पाठक के समक्ष ऐसी स्थिति उत्पन्न की है कि पाठक सहज में यह निर्णय नहीं कर पाता कि 'रमिया' चरित्रहीन है या परहित भाव सम्पन्न युवती।

'कृतज्ञ' कहानी में शीर्षक की सार्थकता पर प्रश्न चिन्ह अंकित है। अनुपम का मुरली के प्रति दुर्व्यवहार उसकी अकृतज्ञता प्रकट करता है। जबकि अनुपम का सद्व्यवहार आशातीत है। वसुधा का मानसिक उद्वेलन सम्पूर्ण कहानी को पठनीय बनाता है। एक ओर अनुपम और वसुधा के व्यवहार में अन्तर दिखाया गया है तो दूसरी ओर अनुपम और मुरली की व्यावहारिकता में धरती–आसमान का अन्तर है। दोनों परिवारों के पूर्व और पश्चात् के सम्बन्धों में पर्याप्त अन्तर है और उसका मुख्य कारण है अनुपम का सहृदयतापूर्ण बर्ताव। हृदय की कठोरता तथा स्वार्थपरता कहानी का अन्त कारुणिक होने के कारण पाठक के अन्तर को द्रवित कर देती है।

मैत्रेयी पुष्पा की 'भँवर' कहानी पारिवारिक कहानी है जिसमें 'विरमा' तथा उसकी सपत्नी 'सुमन' के विद्वेष और स्नेह को क्रमशः टूटते–जुड़ते दिखाया गया है। पति केशव की स्थिति भँवर में पड़े किसी जीव की तरह है जो सुमन और विरमा के मध्य तटस्थ रहना तो चाहता है किन्तु रह नहीं पाता है। 'सफर के बीच' कहानी

---

1. चिह्नार, मन नहिं दस–बीस, पृ0 56

वर्तमान युग की स्वार्थमय प्रवंचना का सफल निदर्शन है। गिरराज के आई0ए0एस0 बनने से पूर्व एवं पश्चात् उनके परिजनों का बदलता व्यवहार घोर स्वार्थी होने का संकेत देता है। उच्च अधिकारियों का कोपभाजन बनकर गिरराज जैसे कर्त्तव्यपरायण अधिकारी को स्थानान्तरण का क्लेश झेलना पड़ा, हेमन्ती के प्रति हार्दिक स्नेह अधूरा ही रहा और हेमन्ती को प्राणान्तक वेदना सहना पड़ी आदि घटनायें मार्मिक बन पड़ी हैं। अन्त में रघु भइया एवं उनके मझले बेटे की स्वार्थ कामना सुनकर गिरराज को तिरस्कार भाव से कहना पड़ा "दरबान ! बाहर निकालो इन बेईमानों को। निकालो अभी ऽ ऽ .... आयन्दा कभी द्वार के भीतर नहीं ......[1]

'केतकी' कहानी में विद्यावती, रेशमिया तथा केतकी नारी पात्रों के माध्यम से लेखिका ने नारी विमर्श तथा नारी संचेतना को मुखरित किया है। 'रेशमिया' के प्रकरण में 'केतकी' ने गंधर्व सिंह जैसे छद्मवेषी प्रधान की चरित्रहीनता प्रकट कर उसकी सतयुगी छवि को नंगा कर दिया। इससे नारी जागृति को बल मिला। वर्षों से चली आ रही अन्याय एवं शोषण की परम्परा को समूल उन्मूलित करने की विराट चेष्टा है केतकी कहानी।

संग्रह की अन्तिम कहानी 'चिह्नार' एक बेवश, लाचार माँ की वेदनाओं की चरम सीमा को उजागर करती है। माँ की वात्सल्य वेदना हृदय में छिपाकर अनुचरी की भाँति सरजू का जीवनयापन करना एक दर्दनाक चित्रण है। माँ अपनी दुल्हन बनी पुत्री को प्यार से देख नहीं सकती, कितनी विषम भावना को चित्रित किया गया है इस कहानी में। अन्त में कहा जा सकता है कि – मैत्रेयी पुष्पा के कथा–संग्रह 'चिह्नार' की कहानियों में जीवन का संचित अनुभव अभिव्यक्त हुआ है। इन कहानियों में करुणा के साथ दया, संवेदना के साथ तरस और अभिव्यक्ति को तरल भावुकता में सानकर आकर्षक शिल्प के साथ अभिव्यक्त किया गया है।

ललमनियाँ –

अपनी प्रत्येक कहानी के साथ विषय–वैविध्य और परिपक्वता का परिचय

---

1. चिह्नार, सफर के बीच, पृ0 122

देता 'ललमनियाँ' मैत्रेयी पुष्पा का दूसरा कहानी संग्रह है। इस संग्रह में कुल दस कहानियाँ– फैसला, सिस्टर, सेंध, अब फूल नहीं खिलते, रिजक, बोझ, पगला गयी है भगवती, छाँह, तुम किसकी हो विन्नी तथा ललमनियाँ संकलित हैं। अन्तिम कहानी पर ही संग्रह का नामकरण हुआ है।

मैत्रेयी पुष्पा बहुपठित कथाकार हैं जो नारी मुक्ति आन्दोलन को अपने कथा–साहित्य में प्रमुखता प्रदान कर रही हैं, उनका विषय चयन तथा उसका निर्वाह उन्हें वरिष्ठ कथाकारों में पांक्तेय बनाता है। उनकी कहानियों में नारी उत्पीड़न का मुखरित स्वर है, तो नारी स्वतंत्रता की समर्थ वकालत भी है। नारी मुक्ति की सकारात्मक अभिव्यक्ति है, तो जीवन मूल्यों के प्रति गहन आसक्ति भी है। नारी–विमर्श के अतिरिक्त सामाजिक अनियमितताओं, पारम्परिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों को भी उनकी कहानियों में सजीवता के साथ उकेरा गया है। उनकी ललमनियाँ संवेद्य है तथा संप्रेषणीय भी।

संग्रह की पहली कहानी 'फैसला' है, जिसमें राजनेताओं का अहम् तथा नारी उत्पीड़न की प्रतिक्रिया को सफलतम् अभिव्यक्ति मिली है। यह कहानी पत्रात्मक शैली में अंकित है। सामान्य भेड़–बकरियों वाली 'ईसुरिया' कहानी की नायिका 'बसुमति' को अपने अधिकारों के प्रति सावधान करती हुई कहती है ''रनवीर एक दिन चाखी पीसेगा, रोटी थापेगा और हमारी बसुमती कागद लिखेगी, हुकुम चलायेगी, राज करेगी।''[1] मैत्रेयी ने नारी की सगर्व उक्ति द्वारा उत्पीड़न की प्रतिक्रिया को अभिव्यक्ति प्रदान की है। स्वाभिमान की साक्षात् प्रतिमूर्ति के रूप में 'ईसुरिया' की सृष्टि हुई है। तभी बसुमति अन्त में प्रायश्चित करती हुई कहती है 'लेकिन मैं क्या करती, अपने भीतर की ईसुरिया को नहीं मार सकी।'[2]

संग्रह की दूसरी कहानी सिस्टर है। यह एक ऐसी आजन्म कुँवारी नर्स की कहानी है, जिसकी माँ के बचपन में गुजरने से उसके जीवन की कथा ही बदल जाती

1. ललमनियाँ, फैसला, पृ0 9
2. उपरिवत्, पृ0 20

है। सुरेश चन्द्र के पारिवारिक सदस्यों के व्यवहार ने उसका मन इतना मोह लिया कि पैसा लेने में उसका मन धिक्कारने लगा। व्यवहारिक सहृदयता से मुग्ध तथा सामाजिक संस्कारों से अनुरक्त 'डोरोथी डिसूजा' का हृदय परिवर्तन हो गया। सुरेन्द्र को भाई दूज का टीका लगाकर भाई–बहिन का सम्बन्ध बना लेना उसके हृदय में उमड़ते हुए प्रेम सागर का प्रतीक है।

'सेंध' कहानी राजनीति में अविश्वास, धोखाधड़ी और छल का स्वरूप प्रस्तुत करती है। अधिकारियों में व्याप्त भ्रष्टाचार, निर्धन किसानों का शोषण तथा अपनी इज्जत आबरू बचाने के लिए गाँव छोड़कर शहर में मजदूरी करने की विवशता का जीता जागता उदाहरण है मैत्रेयी की सेंध कहानी। 'अब फूल नहीं खिलते' कहानी में संस्मरणात्मक कहानी का रूप प्रतिबिम्बित होता है। इंसपेक्टर वरूण अपने विद्यार्थी जीवन की मधुर स्मृतियों के आकाश में स्वपनिल उड़ान भरते दिखाई देते हैं। गुप्ता सर तथा प्राचार्य की अभद्रता का चित्र उपस्थित करके मैत्रेयी ने पुरुषवादी व्यवस्था पर करारा तमाचा मारा है।

'रिजक' कहानी में दलित उत्थान एवं जातीय संगठन को उभारते हुए लेखिका ने आशाराम के आत्म गौरव को प्रस्तुत किंया है। अपने व्यवसाय के प्रति ईमानदारी की शिक्षा तथा जनसेवा के पूर्व मानसिक संस्कार मार्मिक बन पड़े हैं। लल्लन मोदी की बहू की कराहट सुनकर लड़खड़ाते हुए पहुँचती है तथा ट्रेनिंग की हुई दाई का सारा स्वाभिमान भुलाकर वह उसकी परिचर्या में तन–मन से जुट जाती है। लल्लन प्रायश्चित करती हुई कहती है कि "बिरादरी की लकीरें वही बनी हैं हथेलियों में? इनमें तो अपने काम का ही अभ्यास भरा है।"[1]

'बोझ' कहानी में बालमनोविज्ञान तथा कुसंगति के प्रति सावधानी का संकेत दिया गया है। 'पगला गई है भगवती' में प्राचीन भारतीय संस्कृति का स्वरूप व्यक्त हुआ है तथा 'भागो' का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत कर लेखिका ने एक अजीब मोड़

---

1. ललमनियाँ, रिजक, पृ0 78

पर कहानी का आश्चर्यजनक पटाक्षेप कर दिया है। 'छाँह' में नीति–अनीति की दुविधापूर्ण स्थिति को व्याख्यायित करते हुए मन के भीतर मचे महाभारत को उजागर किया गया है तथा समाज की रूढ़ियों से संघर्षरत ददुआ की चारित्रिक दृढ़ता को आकर्षक ढंग से व्यक्त किया गया है। 'तुम किसकी हो बिन्नी' में पुत्री जन्म को अभिशाप मानकर कन्या के पालन–पोषण में उत्साह हीनता दर्शाई गई है तथा टोना–टोटकों पर अंधविश्वास अभिव्यक्त हुआ है।

'ललमनियाँ' संग्रह की अन्तिम कहानी है। ब्रजभूमि के प्रसिद्ध लोकनृत्य 'ललमनियाँ' के माध्यम से लोक संस्कृति का सजीव चित्रण किया गया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य संस्कृति के द्वन्द्व को बड़े ही आकर्षक ढंग से उभारा गया है "जब कोई भी उसकी निगाह में खरी न बैठी तो वे गाली देतीं। सिलेमा को कोसतीं। फैशन को गरियातीं। कहती हरजाई रंडियाँ बनी डोलती हैं। त्यौहारों और सगुन के मंगलगीतों की जगह वे सियासी गाने, गाने लगती हैं छिनार। बताओ जादूगर सैंया छोड़ो मेरी बहियां गा रही थी, कुंदना की छोरी। कुलच्छिनी बाप–ककाओं की आँखें के आगे बहियाँ छुड़ा रही है सैंया से। कलजुगनी।"[1] 'ललमनियाँ' संग्रह में श्रेष्ठ कहानी बन पड़ी है इसीलिए शायद संग्रह का नामकरण भी इसी से हुआ।

सारांशतः कहा जा सकता है कि कुल मिलाकर इस संग्रह में संकलित मैत्रेयी की कहानियाँ नारी जागरण के इर्द–गिर्द घूमती हैं। स्त्री की पीड़ा, परम्पराओं एवं रूढ़ियों का खण्डन भी लेखिका की विशेषता है। मौलिकता एवं आकर्षक कथा शिल्प की दृष्टि से 'ललमनियाँ' की कहानियाँ सफल एवं प्रभावपूर्ण लेखन का उल्लेखनीय उदाहरण हैं।

गोमा हँसती है –

मैत्रेयी पुष्पा ने 'गोमा हँसती है' कहानी संग्रह में नारी चेतना का सकारात्मक चित्र उकेरा है। अपनी कहानियों के माध्यम से लेखिका ने पितृसत्तात्मक समाज के इस

---

1. ललमनियाँ, कहानी– ललमनियाँ, पृ0 144

मर्दवादी छद्‌म को पारम्परिक समाज के बीच से ही रचनात्मक चुनौती दी है। 'गोमा हँसती है' संग्रह की कहानियाँ एक साथ नारी दासता और मुक्ति की चाह की कथा कहती हैं। शहरी मध्य वर्ग के सीमित कथा संसार में मैत्रेयी पुष्पा की कहानियाँ उन लोगों को लेकर आयी हैं जिन्हें आज समाजशास्त्री 'हाशिए के लोग' कहते हैं।

'गोमा हँसती है' की कहानियों के केन्द्र में है नारी और वह अपने सुख–दुःखों, यंत्रणाओं और यातनाओं में तप कर अपनी स्वतंत्र पहचान मांग रही है। नारी चेतना की यह पहचान या उसके सिर उठाकर खड़े होने से समाज की पुरुषवादी मर्यादाएं चटकने–टूटने लगती हैं। 'गोमा हँसती है' की कहानियों की नारी अनैतिक नहीं, नई नैतिकता को रेखांकित करती है।

मैत्रेयी की कहानियों में लोकतत्व सम्पूर्ण सामाजिक परिप्रेक्ष्य के साथ उजागर होता है। कई बार तो कहानी में लोकतत्व ही निर्णायक भूमिका निभाता है। 'रास' इस संग्रह की ऐसी ही एक यादगार कहानी है। प्रारम्भ से अंत तक लोक मुहावरे में लिखित यह कहानी लोक कथा की ही तर्ज पर स्वयं लोककथा में रूपान्तरित होती सी लगती है। 'मैत्रेयी पुष्पा' के लोक की जड़ें सामंती ग्राम्य समाज की कुरूप सच्चाईयों व ठोस सामाजिक स्थितियों में हैं।

मैत्रेयी पुष्पा कई बार अपनी कहानियों में प्रचलित स्वरूप से अलग नया कथा मुहावरा गढ़ती हैं। 'राय प्रवीण' इस संग्रह की एक ऐसी महत्वपूर्ण कहानी है, जिस में इतिहास, किस्सागोई, प्रेमकथा और समसामयिक संदर्भ एक साथ गुम्फित होते दीखते हैं। एक साथ कई स्तरों पर चलने वाली यह कहानी नारी दासता व प्रतिरोध का जटिल व मार्मिक आख्यान है। शील, सतीत्व, पतिव्रता तथा स्त्री धर्म सरीखे सनातन मूल्यों के छद्‌म को उधेड़ती यह कहानी युगों–युगों से नारी शोषण की दास्तान को अद्यतन संदर्भों के साथ उद्‌घाटित करती है। लेखिका जहां तक इस कहानी में नारी की दलित नियति को रेखांकित करती है, वही दलित नारी की दुहरी यातना का खुलासा भी करती है। 'राय प्रवीण' का कथा–कौशल संश्लिष्ट है तथा यह

कहानी नई अर्थ सम्भावनाओं से युक्त है।'[1]

'मैत्रेयी पुष्पा' की कहानियों की नायिकाएं भावुकता में डूबकर दम नहीं तोड़तीं वरन् समाज के पारम्परिक बंधनों को तोड़कर अपना पृथक रास्ता बनाती हैं। 'रास' की जैमंती, राय प्रवीण की सावित्री तथा 'गोमा हँसती है' की गोमा समाज के स्वीकृत नैतिक मानदण्डों का अतिक्रमण करती हैं तथा अपना नया रास्ता तलाशती हैं। गोमा अपने अनमेल विवाह का विरोध प्रदर्शन 'बली सिंह' के प्रेम सम्बन्ध बनाकर करती है। इस प्रकार वह 'परिवार' और विवाह दोनों ही संस्थाओं के छद्म को उनके भीतर ही रहकर तोड़ती है।

मैत्रेयी पुष्पा अपनी कहानियों में प्रेम सम्बन्धों को नारी व्यक्तित्व–अन्तरण के सकारात्मक मूल्य के रूप में प्रस्तुत करती हैं। 'राय प्रवीण' की सावित्री और 'गोमा हँसती है' की गोमा प्रेम सम्बन्धों के माध्यम से विवाह संस्था की नारी विरोधी परिणतियों को रेखांकित करती हैं, जो युवावस्था में अपनी प्रेमिका को घर से भगा ले जाने का हौसला रखता है, लेकिन अपनी बेटी को घर की इज्जत आबरू और माता–पिता की नाक समझकर ताले में बंद रखकर प्रेम से वंचित करता है।

'ताला खुला है पापा' कहानी की बिन्दो की तरह यथास्थिति को स्वीकारती 'बिछड़े हुए' की चंदा स्त्री–यंत्रणा का दूसरा छोर थोड़े भिन्न संदर्भों में प्रस्तुत करती है। यह कहानी उस ठहरे हुए नारी समय की कहानी है, जो पति–प्रतीक्षा में बीतता हुआ इतने छलावों से गुजरता है कि पति के सामने होने पर भी पति को पहचानने में असमर्थ रहता है।

'गोमा हँसती है' संग्रह की कहानियों की नारियाँ वैयक्तिक न होकर सामाजिक हैं, संभवतः इसीलिए कभी वे पितृसत्तात्मक मूल्यों को चुनौती देती हैं, कभी उसका शिकार होती हैं तो कभी स्वयं नारी के ही विरूद्ध पितृसत्तात्मक हथियारों की वाहक होती हैं।[2] 'बारहवीं रात' शीर्षक नारी के मन मस्तिष्क में पितृसत्तात्मक मूल्यों

---

1. हंस, सितम्बर 1998, समीक्षा – वीरेन्द्र यादव, पृ0 97
2. उपरिवत्, पृ0 97

के अनुकूलन की सशक्त अभिव्यक्ति है। कहानी में लेखिका जहां पुरुष प्रधान समाज में नारी अनुकूलन को रेखांकित करती है, वहीं लड़के से लड़की का शादी से इंकार करना नारी की प्रतिरोधी चेतना की अभिव्यक्ति भी करती है।

मैत्रेयी जीवन की अनगढ़ता की कथाकार हैं। जीवन की यह अनगढ़ता कभी–कभी उनकी कहानियों की अनगढ़ता के रूप में भी अभिव्यक्त होती है। 'साँप और सीढ़ी' कहानी में उपस्थित है उसका राजनीतिक विस्तार, किंचित सरलीकृत ढंग से 'प्रेम भाई एण्ड पार्टी' कहानी में होता है। भारतीय ग्राम्य समाज के ठहरे हुए नारी समाज में कितना कठिन है, पुरुष आधिपत्य से मुक्ति पाना। इसका खुलासा पंचायत चुनाव में महिला आरक्षण की निरर्थकता को रेखांकित करती 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में बखूबी हुआ है। इस संग्रह की अधिकांश कहानियों की ही तरह प्रतिरोध की नारी चेतना दलित जाति में जन्मी 'दुरगी' सरीखी मुखर नारी पात्र के रूप में यहाँ भी उपस्थित है।

मैत्रेयी पुष्पा अपनी कहानियों में प्रतिरोधी चेतना की मुखर अभिव्यक्ति द्वारा स्वतंत्र अस्मिता की जमीन तैयार करती हैं। वैधव्य के कष्टों को सहती 'उज्रदारी' कहानी की 'शान्ति' द्वारा लाज–लिहाज और मर्जाद को त्याग कर स्वतंत्र रास्ते की तलाश नारी की प्रतिरोधी चेतना की स्वाभाविक परिणति है। शान्ति की इस विद्रोही चेतना के मूल में मर्दों का बनाया हुआ वह सामन्ती ढाँचा है, जो हिन्दू परिवार की बिधवा को बेगार का दर्जा देकर सारे अधिकारों से वंचित कर देता है। मैत्रेयी पुष्पा की कथा नारियां अपनी इस दुर्दशा के विरूद्ध मुखर ही नहीं होतीं, बल्कि वे पुरुष सत्ता को चुनौती देते हुए इससे मुक्ति की नई युक्तियां भी तलाशती हैं। कभी इसकी अभिव्यक्ति विवाहेतर सम्बन्धों में 'गोमा हँसती है' में होती है, तो कभी स्वतंत्र, आर्थिक, सामाजिक भूमिका में (रास) कभी प्रेमी के साथ पलायन (राय प्रवीण) तो कभी सीधे–सीधे विद्रोही मुद्रा अपनाकर (बारहवीं रात)।

अंत में कहा जा सकता है कि मैत्रेयी जी ने अपनी कहानियों में पुरुष प्रधान व्यवस्था को चुनौती दी है। नारी देह के शोषण के खिलाफ जोरदार आवाज उठाई है,

नारी स्वतंत्रता में बाधक प्राचीन परम्पराओं का उच्छेदन किया है तथा सामाजिक सरोकारों से जुड़े पारिवारिक नियमों का उल्लंघन भी।

(च) सम्मान एवं पुरस्कार :

मैत्रेयी पुष्पा नई पीढ़ी की बहुचर्चित तथा बहुपठित लेखिका हैं। आपने अपने कथा साहित्य में बुन्देलखण्ड के पिछड़े अंचलों की परिस्थितियों, घटनाओं, रीति–रिवाजों एवं संस्कारों का विधिवत् विवरण दिया है। अपनी कहानियों के माध्यम से शहरी मध्य वर्ग को उस क्षेत्र विशेष का स्मरण दिलाया, जो विस्मृति के कगार पर पहुँच चुका था। मैत्रेयी जी के विशिष्ट लेखन से अभिभूत होकर विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं ने उन्हें जिन पुरस्कारों से सम्मानित किया है, वे निम्नलिखित हैं–

1. हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा – साहित्य कृति सम्मान
2. कथा पुरस्कार (फैसला कहानी पर)
3. बेतवा बहती रही (उपन्यास) को प्रेमचन्द्र सम्मान, 1995 (उ0प्र0 साहित्य संस्थान)
4. उपन्यास इदन्नमम् (1996) को नंगनागुडु तिरुमालम्बा पुरस्कार (शाश्वती संस्था, बैंगलोर)
5. वीर सिंह देव पुरस्कार (मध्य प्रदेश साहित्य परिषद)
6. सार्क लिट्रेरी अवार्ड
7. 'द हंगर प्रोजेक्ट' (पंचायती राज) का सरोजिनी नायडू पुरस्कार एवं अन्य कई पुरस्कारों से सम्मानित।

मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य पर जिन पुरस्कारों से उन्हें सम्मानित किया गया है, उन्हें देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि लेखिका साहित्य क्षेत्र में अग्रणी तो हैं ही, समाज के लिए प्रेरणा का स्रोत भी हैं। विशेषतः नारी समाज उनकी गहरी अन्तर्वेदनात्मक दृष्टि का आभारी है तथा नारी जगत उनका चिर–ऋणी रहेगा।

द्वितीय अध्याय

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में सामाजिक चेतना

(क) सामाजिक चेतना का तात्पर्य :

'सामाजिक चेतना का सम्बन्ध मानव–चेतना के सामाजिक रूप से है। जब मनुष्य में किसी सामाजिक कार्य के प्रति ज्ञान या जागरूकता का उदय होता है, तो वह जाग्रत भाव सामाजिक चेतना कहलाता है।'[1] सामाजिक चेतना समाज के सत्यासत्य, शुभाशुभ और तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक और वैज्ञानिक–अवैज्ञानिक प्रवृत्तियों को पहचानने की शक्ति है, जो तुरन्त बतला देती है कि व्यक्ति और समष्टि के लिए वांछनीय और उचित क्या है? और क्या नहीं?[2] डॉ0 चमनलाल गुप्ता का अभिमत है कि 'सामाजिक चेतना ही मानव मस्तिष्क को विचारों की क्षमता प्रदान करती है। भाषा, धारणाएं एवं तर्कशास्त्र जिसमें मनुष्य चिन्तन करता है, सामाजिक चेतना के अंग हैं। मानव मस्तिष्क सामाजिक चेतना से प्रभावित होकर समाज के विषय में सोचता है। सामाजिक चेतना से ही मानव को ज्ञान, संस्कृति एवं विचारधारा आदि प्राप्त होते हैं, जिनसे उसकी चेतना विकसित होती है।'[3]

सामाजिक चेतना से सम्बद्ध उक्त अभिमतों से यह निष्कर्ष निकलता है कि जब मानव अज्ञानतावश अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य को विस्मृत कर सामाजिक उन्नयन से प्रतिमुख हो जाता है, समाज के प्रति अपने दायित्वों, विश्वासों, मान्यताओं तथा रीतियों–नीतियों के प्रति सजग नहीं रहता और परिणामस्वरूप समाज पतन की ओर उन्मुख होने लगता है, उस स्थिति में जब किसी अन्तःप्रेरणा से अथवा किसी युगपुरुष द्वारा मानवीय चेतना को जागृति का संकेत मिलता है, वही सामाजिक चेतना कहलाती है।

जिन विचारों, सिद्धान्तों तथा नियमों से पतनोन्मुख समाज में विकासोन्मुखी प्रवृत्ति जाग्रत की जाती है, उसे सामाजिक चेतना कहा जा सकता है। समाज में व्याप्त

---

1. छायावादी काव्य में सामाजिक चेतना – डॉ0 डी0पी0 बरनवाल, पृ0 7
2. उपरिवत्, पृ0 8
3. यशपाल के उपन्यास : सामाजिक कथ्य, डॉ0 चमनलाल गुप्ता, पृ0 16

अनियमितताओं एवं कुप्रवृत्तियों को परिलक्षित करके प्रगति के उज्ज्वल पक्ष का निदर्शन करना साहित्यकार का दायित्व होता है। साहित्यकार अपने इस सामाजिक दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता। जहाँ तक मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य में सामाजिक चेतना का प्रश्न है, उन्होंने अपने दायित्व का भलीभाँति निर्वहन किया है।

(ख) सामाजिक चेतना के विविध आयाम :

सामाजिक चेतना परिवर्तनशील होती है। युगदृष्टा साहित्यकार बदलते सामाजिक परिवेश के अनुकूल समाज में चेतना जाग्रत करता है। मानव के विकास की विशेषता है कि वह निरपेक्ष और स्वतंत्र रूप में सम्भव नहीं हो पाता, हमेशा समाज और परिस्थितियों की सापेक्षता में ही मानव विकास सम्भव होता है। परिस्थितियां और समाज वस्तुतः मिला–जुला वह तत्व है जो मनुष्य के आचार–विचार को प्रभावित करता है और मनुष्य के प्रयत्नों के कारण परिवर्तित भी होता रहता है। डॉ0 डी0पी0 बरनवाल के अनुसार "सामाजिक चेतना के आयाम बदलते मूल्यों के अनुसार परिवर्तनशील होते हैं। इन आयामों की नई सृष्टि युग की माँगों के अनुसार हो सकती है। इसके कुछ आयाम बदल सकते हैं, कुछ नये हो सकते हैं।"[1]

तात्पर्य यह है कि राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियाँ हों या साहित्यिक गतिविधियाँ हों, साहित्यकार की पैनी दृष्टि उन पर अवस्थित रहती है और तद्नुकूल ही वह सामाजिक परिवेश को बदलने का प्रयास करता है। समाज को जैसा अपेक्षित होता है, सामाजिक चेतना के आयाम भी वैसे ही हो जाते हैं। डॉ0 सन्तोष कुमार तिवारी ने संस्कृति को ही सामाजिक चेतना स्वीकार करते हुए बदलते मूल्यों के अनुरूप इसमें परिवर्तन या सर्जन को माना है। उनका अभिमत है– 'संस्कृति सामाजिक चेतना है। अतः बदलते हुए मूल्यों के अनुरूप उसका भी सर्जन होता है। आशय यह है कि समाज के बदलते जीवन मूल्यों के अनुसार ही सामाजिक चेतना के आयाम बदलते रहते हैं।

---

1. छायावादी काव्य में सामाजिक चेतना, पृ0 12

युगीन साहित्य में समाज के सुख–दुःख, हर्ष–विषाद का चित्रांकन होता है। साहित्य यदि समाज की गतिविधियों से प्रभावित होता है, तो वह समाज में नई चेतना, नये विचार तथा नवीन आदर्श भी प्रस्तुत करता है। साहित्य और समाज का अटूट सम्बन्ध प्रारम्भ से ही रहा है। डॉ0 डी0पी0 बरनवाल 'सामाजिक चेतना के विविध आयाम' को इस तरह परिभाषित करते हैं "चेतना के विविध आयाम का अर्थ समाज की विविध प्रवृत्तियों, उनके विभिन्न रूपों जैसे– समाज के सुख–दुःख, उत्थान–पतन, अमीरी–गरीबी, जीवन–संघर्ष आदि से है।[1] जबकि डॉ0 चमनलाल गुप्ता[2] 'सामाजिक चेतना के विविध आयामों को वर्ग पूर्व सामाजिक संरचना तथा वर्गीय समाज संरचना के आधार पर विश्लेषित करते हुए उत्पादन के साधनों के सीमित तथा पर्याप्त होने से आयामों के बदलने की बात स्वीकार करते हैं। तात्पर्य है कि अविकसित समाज में उत्पादन के साधन सीमित होने के कारण श्रम विभाजन बड़े पैमाने पर नहीं होता और समाज में वर्गों की रूपरेखा अस्पष्ट होती है। जबकि वर्गीय समाज में सामाजिक चेतना का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है तथा वर्ग संघर्ष तीव्रतर होता जाता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सामाजिक चेतना के आयाम परिस्थितिजन्य होकर परिवर्तित होते रहते हैं।

(ग) सामाजिक चेतना के संघटक :

सामाजिक चेतना के संघटक वे तत्व हैं, जिनसे प्रभावित होकर साहित्यकार अपने सृजन में सामाजिक–चेतना की सृष्टि करता है। कभी वह प्राकृतिक आपदाओं से, राजनीतिक उथल–पुथल से, आर्थिक विषमताओं से, भारतीय संस्कृति के पतनोन्मुख होने से, धार्मिक कुरीतियों तथा अंधविश्वासों से, राष्ट्रीय अवमानना से तथा गिरते हुए शैक्षिक स्तर से प्रभावित होता है, तो कभी ह्रासोन्मुखी औद्योगिक व्यवस्था, शहरीकरण की समस्या, वैज्ञानिक प्रगति एवं उसके अभिशाप, उसके हृदय को स्थायी रूप से प्रभावित करते हैं। समाज की बदलती परिस्थितियाँ साहित्यकार को सामाजिक चेतना

1. छायावादी काव्य में सामाजिक चेतना, पृ0 13
2. यशपाल के उपन्यास : सामाजिक कथ्य, पृ0 17

सृजन के लिए विवश कर देती हैं। समाज के सम्पूर्ण अन्तर्विरोधों को निर्मूल करने में तथा विकसित समाज की अवधारणा में सामाजिक चेतना की अहम् भूमिका रहती है।

डॉ० डी०पी० बरनवाल ने सामाजिक चेतना के तीन प्रमुख संघटक तत्वों का उल्लेख किया है–

01. परिस्थितिगत तत्व

02. संस्कारगत तत्व

03. प्रभावजनित तत्व[1]

परिस्थितिगत तत्वों में राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक, औद्योगिक, शहरीकरण तथा वैज्ञानिक परिस्थितियों का विवेचन किया गया है। संस्कारगत तत्वों में पारिवारिक, लोकाचार एवं लोक व्यावहारिक, पौराणिक मान्यताएं तथा लोक विश्वासों का निरूपण है तथा प्रभावजनित तत्वों में विभिन्न घटनाओं, दार्शनिकों, समाज सुधारकों तथा विभिन्न के प्रभावों को चित्रित किया गया है।

डॉ० चमनलाल गुप्ता[2] ने सामाजिक चेतना के घटकों को स्त्री–पुरुष सम्बन्ध, राजनीतिक चेतना, विधि चेतना, नैतिक चेतना, धर्म एवं सामाजिक चेतना, विज्ञान और सामाजिक चेतना, साहित्य एवं कला चेतना तथा दर्शन शास्त्र एवं दार्शनिक चेतना के रूप में वर्गीकृत करते हुए उनका विवेचन भी प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मनुष्य समाज का अभिन्न अंग है। समाज में रहते हुए उसका सामाजिक क्रियाकलापों से प्रभावित होना स्वाभाविक है। साहित्यकार समाज की परिस्थितियों के प्रभावों को आत्मसात् कर अपने सृजन में उसकी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। वही प्रतिक्रिया सामाजिक चेतना के रूप में समाज को प्रभावित करती है तथा सद्मार्ग का उन्मेष करती है। परिणामतः कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से साहित्यकार के मानसिक पटल पर पड़ने वाले प्रभाव

---

1. छायावादी काव्य में सामाजिक चेतना, पृ० 15
2. यशपाल के उपन्यास : सामाजिक कथ्य, पृ० 18, 19, 20

ही सामाजिक चेतना के संघटक तत्व होते हैं।

(घ) सामाजिक चेतना का प्रभाव :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक सम्बन्धों के माध्यम से उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। व्यक्तियों द्वारा समाज निर्मित होता है। सम्पूर्ण समाज में व्यक्ति ही सर्वाधिक चेतन्य माना जाता है तथा वैयक्तिक चेतना के अभाव में सामाजिक चेतना अस्तित्वहीन रहती है। सामाजिक सम्बन्धों से मनुष्य विविध प्रभावों और अनुभूतियों को आत्मसात् करता है। उनमें से कुछ उसकी चेतना का अभिन्न अंग बन जाती हैं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि व्यक्तिगत चेतना से ही सामाजिक चेतना का विकास होता है। यहाँ कतिपय बिन्दुओं के माध्यम से सामाजिक चेतना के प्रभावों का रेखांकन प्रस्तुत है।

1. व्यक्ति स्वातंत्रय की भावना –

सामाजिक चेतना से मनुष्य का वैचारिक स्तर बढ़ जाता है। बौद्धिक रूप से चिंतन की क्षमता में अभिवृद्धि हो जाती है। वह अपने संचित अनुभवों का सदुपयोग करने में समर्थ होता है। उसमें व्यक्ति–स्वातंत्रय की भावना का प्रादुर्भाव हो जाता है। सामाजिक सम्बन्धों के कारण अनगिनत प्रभावों से मानव मस्तिष्क प्रभावित होता है सामाजिक अनुभूतियाँ उसकी चेतना का केन्द्र बन जाती है।

सामाजिक चेतना के उद्‌भव से व्यक्ति शिक्षा, संस्कृति, परिवार, आचार–विचार तथा मानवीय सम्बन्धों के प्रति सचेत एवं सक्रिय रहता है। वह सामाजिक कटुता का निवारण करके समस्त अन्तर्विरोधों को निर्मूल करने में समर्थ होता है।

वैयक्तिक चेतना तथा सामाजिक चेतना अन्योन्याश्रित हैं। व्यक्ति उसी स्थिति में स्वयं को स्वतंत्र अनुभव कर सकता है जब उसके व्यक्तित्व का विकास हो तथा व्यक्तित्व का विकास सामाजिक चेतना के अभाव में सम्भव नहीं है।

2. नवजागरण –

सामाजिक चेतना से समाज का बौद्धिक व्यापार प्रभावित होता है। व्यक्तिगत जागरूकता एवं सामूहिक जागरण उसी के परिणाम हैं। जब मानवीय चिन्तन क्षमता बढ़ जाती है, तो मनुष्य धर्म, अर्थ, नीति, साहित्य, कला, विज्ञान तथा राजनीति के सम्बन्ध में जागरूक होकर सोचने लगता है। डॉ0 डी0पी0 बरनवाल का मत है 'वस्तुतः सामाजिक चेतना का अर्थ मानवीय ज्ञानात्मक मनोवृत्ति की स्पष्ट जागृति का उदय होने से है, जो काफी व्यापक और महत्वपूर्ण है। इसी सामाजिक चेतना की शक्ति से समाज साहित्य, साहित्यकार आदि प्रभावित, प्रेरित एवं संचालित होते रहते हैं।'[1] तात्पर्य है कि सामाजिक चेतना साहित्य तथा साहित्यकार को प्रभावित एवं संचालित करने की क्षमता रखती है।

सामाजिक चेतना में निरन्तर परिवर्तनशील एवं विकासशील अवधारणा समाहित रहती है। प्राचीन मान्यताओं एवं परम्पराओं का परित्याग तथा नवीन जागृति सूचक क्रिया व्यापारों का ग्रहण सामाजिक चेतना के फलस्वरूप ही होता है। धर्म, विज्ञान, नीति तथा दार्शनिक परिक्षेत्र में नवीनताओं का समायोजन एवं प्राचीनताओं का परिष्कार सामाजिक चेतना की विशिष्टता है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों एवं कहानियों में नारी विमर्श एवं नारी जागरण को प्रमुखता दी गई है। उनके महत्वपूर्ण कथा साहित्य में सामाजिक चेतना सर्वत्र प्रतिबिम्बित है।

3. राष्ट्रीयता –

देश भक्ति एवं राष्ट्रीय भावना सामाजिक चेतना का अनिवार्य अंग है। जब मनुष्य जागरूक एवं सचेत होकर अपने क्रिया व्यापारों को सुचारू रूप प्रदान करता है तो उसके चिन्तन का स्तर सीमित से असीमित हो जाता है। व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर होने लगता है। वह देश और राष्ट्र के सम्बन्ध में सोचना प्रारम्भ कर देता है। राष्ट्र ही उसके लिए सर्वोपरि होता है। वह वैयक्तिक चिन्तन से ऊपर उठ जाता है।

---

1. छायावादी काव्य में सामाजिक चेतना, पृ0 20

यह विचार करने लगता है कि राज्यों तथा राष्ट्रों के सम्बन्ध में क्या उचित है तथा क्या अनुचित है ? क्या न्याय संगत है तथा देश के कल्याण का पथ किस प्रकार प्रशस्त किया जा सकता है ?

यद्यपि मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य का सूत्रपात मुख्यतः बुन्देलखण्ड की धरती की मानवीय संवेदनाओं से हुआ है किन्तु प्रच्छन्न रूप से यत्र–तत्र लेखिका की राष्ट्रीय भावना भी उजागर हुई है।

4. शोषण –

मैत्रेयी पुष्पा के सम्पूर्ण कथा–साहित्य में सामाजिक चेतना के परिष्कार का उद्‌देश्य पूर्णतः प्रतिफलित हुआ है। नारी समाज के अधिकारों की सुरक्षा के प्रति लेखिका की प्रतिबद्धता उनके सभी उपन्यासों एवं कहानियों में झलकती है। नारी विमर्श एवं नारी जागरण का मुख्य उद्‌देश्य है नारी जाति को शोषण मुक्त करके पुरुष समाज के साथ कदम से कदम मिलाकर अग्रसर होने को प्रोत्साहित करना।

सामाजिक चेतना के परिष्कार से व्यक्ति–स्वातंत्र्य की भावना का उदय तो होता ही है, साथ ही शोषण के विरूद्ध प्रतिकार करने का साहस भी समुत्पन्न होता है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने लेखन में नारी जाति को उसके विलुप्त अधिकार उपलब्ध कराने का उपक्रम किया है। नारी वर्ग तथा अन्य शोषित वर्गों को सचेत करके अपने अधिकारों के प्रति संघर्षोन्मुख करने का सराहनीय प्रयास किया है लेखिका ने अपने उपन्यासों तथा कहानियों में।

(ङ) उपन्यासों में सामाजिक चेतना :

<u>बेतवा बहती रही</u> –

'बेतवा बहती रही' उपन्यास में लेखिका ने बेतवा नदी के किनारे बसी उन जातियों में गहराई से व्याप्त प्राचीन रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों को उजागर किया है, जो सदियों से शोषक वर्ग की अमानवीय यंत्रणायें झेल रही हैं तथा जिनमें अशिक्षा के कारण पिछड़ापन अपनी जड़ें जमाये है। वहाँ के दीन–हीन किसान भाग्य के भरोसे

अपना जीवन–यापन करने के लिए विवश हैं। पूरे अंचल की हृदय–द्रावक व्यथा–कथा को मैत्रेयी ने कल्पना के सहारे सुनियोजित ढंग से व्यक्त किया है। जनमानस में परिव्याप्त प्राचीन परम्पराओं का समूल उन्मूलन करने के लिए लेखिका ने चेतना का शंख–निनाद किया है और ऐसे प्रसंगों में सामाजिक चेतना की गूँज निखार के साथ मुखरित हुई है।

उर्वशी के विवाह की चिंता में उसके पिता मोहन सिंह का जब आत्मविश्वास डगमगाने लगा, तो उनके स्वगत कथन में चेतना का संचार लेखिका ने किस तरह प्रस्फुटित किया है। देखिये– "बेटी की बात। कछू ऊँच–नीच हो जाये तो पूरी जिन्दगानी खराब। सादी–ब्याह कौ मामलौ ठहरौ।"[1] इतना ही नहीं मोहन सिंह आगे अपने कर्त्तव्यों के प्रति और अधिक सचेत दिखाई देते हैं। 'फिर बिटिया दो आखर पढ़ी–लिखी है। कोई पढ़ौ–लिखौ लरका मिल जाये, तौ मन की इच्छया तिरपित हो जाये।'[2] यहाँ मोहन सिंह की अन्तर्चेतना पूर्व परम्पराओं में नवीन सुधारों की ओर इंगित करती है।

'बेतवा बहती रही' का समाज यद्यपि प्राचीन परम्पराओं एवं रूढ़ियों से ग्रसित है, फिर भी शहरों की अपेक्षा वहाँ के क्षेत्रीय गाँवों में ग्रामीण चेतना, अब भी जीवित है, अच्छे–बुरे की पूरी पहचान है। एक पूँजी और है उनके पास, वह है उनकी साख। वे जानते हैं, आस–पास के इलाके में 'विसम्भर सिंह यादव' यह नाम आदर से, सद्भाव से लिया जाता है। शहर में चाहे यह चलन भले ही न हो, पर गाँव की धरती पर अच्छे–बुरे की पहचान अभी जीवित है। आन–बान वाले व्यक्ति की वकत है। बात के धनी मनुष्य की इज्जत है। वह इज्जत किसी धन से कम तो नहीं, अशर्फी भरे खजाने से भारी है।[3] मैत्रेयी पुष्पा ने सभ्यता और संस्कृति के नाम पर ग्रामीण परिवेश की चेतना को पुनः स्थापित करने का भरसक प्रयास किया है।

---

1. बेतवा बहती रही, पृ0 25
2. उपरिवत्, पृ0 25
3. उपरिवत्, पृ0 94

इतनी बड़ी बात को अकेले झेलते–झेलते वह थक चुकी थी, पर दादी भी क्या कर लेती– हाँ, इतना ही होता कि कलह होती, कसकर। दादी चुप नहीं रहतीं। वे स्वयं अन्याय सह सकती थीं, पर अपने ही घर में किसी और पर अन्याय हो, यह देख पाना उनके वश का नहीं था, वे अवश्य जूझतीं। उनमें अलग तरह का साहस था।[1] लेखिका ने उक्त पंक्तियों में अन्याय विरोधी चेतना को समावेशित किया है। नारी के उत्पीड़न के विपरीत उसमें ऐसे अप्रतिम साहस का संचार किया है, जिससे नारी सदियों से चले आ रहे शोषण और दबावों का प्रबल प्रतिरोध कर सके।

चाक –

मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' उपन्यास में ब्रज प्रदेश के जाट किसानों की स्थिति परिवर्तन के समय टूटते हुए सामाजिक मूल्यों एवं विश्वासों तथा बदलती हुई पारम्परिक मान्यताओं को सहृदयता से उकेरा गया है। 'अतरपुर' गाँव के जाट किसानों के सामाजिक रीति–रिवाजों, जातीय संघर्षों, गीतों–उत्सवों, प्यार–ईर्ष्याओं तथा कर्मकांडी अंधविश्वासों के साथ सारंग और रंजीत के पारस्परिक सम्बन्धों के उतार–चढ़ाव को लेखिका ने सफलतापूर्वक चित्रित किया है। ब्रज प्रदेश के पिछड़े इलाके में स्थित है अतरपुर गाँव। वहाँ के निवासी यथास्थिति में बने रहने के पक्षधर तथा परम्परावादी दृष्टिकोण के समर्थक हैं। लेखिका ने सारंग और रंजीत के प्रेम सम्बन्धों को औपन्यासिक घटनाक्रम में इस तरह समाविष्ट किया है कि यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि यह उपन्यास राजनैतिक है या समाजशास्त्रीय। सूक्ष्म अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि 'चाक' की कहानी यदि एक ओर राजनीतिक घटनाक्रम से संपृक्त है तो दूसरी ओर सामाजिक उतार–चढ़ाव से प्रभावित भी है।

फत्ते सिंह प्रधान के पंचायती निर्णय पर भँवर और रंजीत की बातचीत में सामाजिक चेतना का नमूना दृष्टव्य है। 'भँवर कब पेट भरेगा हमारा? जितने लोग वर्दी पहनते हैं, उनसे भगवान बचाये। मैं कोर्ट–कचेहरी, थाने–चौकी से आजिज आ गया

---

1. बेतवा बहती रही, पृ0 96

हूँ। प्रधान झूठ नहीं कहता कि हर मामला थाने–कचेहरी सुलझा देते हैं क्या? फत्ते भइया सोच–समझकर काम करने वाले इनसान हैं। कहते हैं– अपने गाँव के सज्जन और गुण्डों को हमसे ज्यादा नहीं जानते थाने–चौकी, कोर्ट–कचेहरी। उनके कागज तो झूठे–सच्चे गवाहों की तिकड़म और तुक्केबाजी पर चलते हैं।'[1] यहाँ पुलिस के हथकंडों तथा नकली कार्यवाहियों के विरोध में ग्रामीणों में चेतना का संचार उपलब्ध है।

फत्ते सिंह रंजीत को भूमि संरक्षण निरीक्षक की चालाकियों के प्रति सचेत करते हुए कहते हैं– 'सोचते होंगे गाँव के आदमी को बाबरा बनाने में उन्हें महारत हासिल है। पर हम बैठे हैं उनके बाप। साले ने सौ फुट नापा और बनवाया पचास फुट। सरियों की बीम देख लो, पहली बार का पानी भी नहीं सह पायेगी। सीमेंट चटनी की तरह लगाया है।'[2] मैत्रेयी पुष्पा ने उपन्यास में घटनाक्रम का संयोजन कुछ इस तरह किया है कि स्थान–स्थान पर सामाजिक चेतना के विविध प्रसंग घटित हुए हैं।

फत्ते सिंह, भूमि संरक्षण निरीक्षक को क्रोध की मुद्रा में डाँट रहे हैं। सरकारी अधिकारियों एवं जनप्रतिनिधियों की चालबाजियों का भंडाफोड़ कर रहे हैं। उनके कथन में समाज के सीधे–सादे ग्रामीणों को सचेत करने का भाव अन्तर्निहित है। ''हम मामूली किसान भी नहीं, किसान प्रधान हैं। तुझसे पाई–पाई हगवा लेंगे। पचासियों हजार हजम कर गये। अफसरों को तर कर रहे हो। हम क्या रांड के जमाई थे, कि हमारा हिस्सा पी गये? पच्चीस हजार यहाँ धर जाओ, नहीं तो जाते हैं हम विधायक के पास। विधायक की धमकी पर काबू में आ गया।''[3] उक्त पंक्तियों में सरकारी पदाधिकारियों, विधायकों, तथा प्रधान – सभी के कूटनीतिक सहयोग का खुलासा किया गया है। सभी मिलकर ग्रामीणों का शोषण करने में संलग्न हैं। लेखिका ने यत्र–तत्र ऐसे कथनों द्वारा शोषित ग्रामीणों में चेतना का संचार करते हुए स्थिति को उजागर किया है।

---

1. चाक, पृ0 144
2. उपरिवत्, पृ0 283
3. उपरिवत्, पृ0 283

मैत्रेयी ने 'चाक' उपन्यास में 'समय-चक्र' के अनवरत् घूमने तथा विविध सामाजिक परिवर्तन होने की बात को बड़े सलीके से सजाया-सवांरा है। इसके अनेक प्रसंगों में सामाजिक चेतना मुखरित हुई है।

इदन्नमम -

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का समाज अंचल विशेष का समाज है, बुन्देलखण्ड का समाज है तथा हींस, करोंदी, पलाश, बेर और महुआ को जीवनसाथी की भाँति निहारने वाला समाज है। इस समाज की अपनी आत्मा है, अपने संघर्ष हैं, अपने रीति-रिवाज हैं और जीवंत धड़कने हैं। इन समस्त बिन्दुओं में बुन्देली समाज की चेतना 'इदन्नमम' में स्थान-स्थान पर झलकती है। लेखिका ने अपने सामाजिक अनुभवों को 'इदन्नमम' में अत्यन्त सहजता से समावेशित किया है।

'इदन्नमम' की नायिका मंदाकिनी – श्रमशीला नारी किसी की दया पर जीवित रहने वाली नहीं है। साहस, धैर्य उसके जीवन में निर्भय होकर समाविष्ट हैं। अपने मन्तव्य को तर्कों से सिद्ध करना सामाजिक चेतना का शुभ लक्षण है। ग्रामीण बुजुर्गों का विरोध करने पर 'बऊ' उसे दोषी करार देती हुई कहती है कि 'सब चुप बैठे थे। सान्त! वो तो तुमने ही पत्थर मारा है ठहरे हुए जल में।' प्रत्युत्तर में मंदाकिनी की चेतना झलक रही है। वह कहती है- 'ठीक है बऊ, हमने ही मारा सही। लेकिन यह तो मानोगी कि हर एक गाँव में दस-पाँच आदमी पढ़े-लिखे होते हैं, बुद्धिमान कहलाते हैं, जो जानते हैं चालाक-चतुरों के दाव-पेंच, मिठ बोलाओं के कपट-झूठ। उन बुद्धिमानों का अनुसरण ही करता है पूरा गाँव। जो वे आँखों पर परदा डाले रहें, लोगों को भ्रमित करे रहें तो यह उनका ठग रूप है।'[1]

मंदाकिनी के साथ कैलाश मास्टर बलात्कार करता है। परिपक्व पुरुष का कामातुर संसर्ग कच्ची उम्र वाली मंदाकिनी नहीं सहन कर सकी। घबड़ा गई। उसके कराहने से व्यथित होकर कुसुमा उसके मन में चेतना और साहस का संचार करती हुई

1. इदन्नमम, पृ0 202

कहती है– 'बिन्नू, तनिक देर पहले और आ जाते हम, तो खसिया बना देते नासमिटे को।'[1] कुसुमा स्वयं अपने जेठ अमर सिंह दाऊ के प्रेम जाल में फँस जाती है तथा समाज की रूढ़ियों को दरकिनार करती हुई साहसपूर्वक जीवन जीती है।

मंदाकिनी चेतना की प्रतिमूर्ति बनकर जनसेवा एवं समाज के उत्थान में दिन–रात लगी रहती है। उसे प्राचीन परम्परायें रास नहीं आतीं। वह सामाजिक पुनरुत्थान एवं नवजागरण की प्रतीक है। गरीबों, मजदूरों के हित–साधन के लिए वह अभिलाख सिंह और जगेसर जैसे पूँजीपतियों और शक्ति सम्पन्न लोगों से सार्थक संघर्ष करती है। उसके त्याग, बलिदान एवं सतत् उत्थान की बलवती भावना एवं लगन को देखकर कायले के मंदिर के संत महाराज का कथन दृष्टव्य है– 'हमें तो लगता है, मन्दा इस गाँव की नहीं, इस क्षेत्र की भूमिसुता है, जो इस धरती की रग–रग को पहचानती है। जैसे यहाँ के आदमी की धड़कन से चलती हो उसकी साँसें।'[2]

सोनपुरा गाँव के अस्पताल में डॉ0 इन्द्रनील व कम्पाउण्डर रासबिहारी की नियुक्ति उसके सत्प्रयास का ही परिणाम है। ग्रामीण हित की भावना से सम्पृक्त मंदाकिनी मरीजों की सेवा में जुटी रहती है। यह उसकी जन–कल्याण की भावना का परिणाम है। क्रेसर प्लान्ट लग जाने पर ठेकेदार अभिलाख सिंह की प्रतिद्वन्द्वी बनकर सामूहिक सहयोग से ट्रैक्टर खरीदने की योजना को साकार करती है तथा स्वयं ही उसकी आय–व्यय का हिसाब भी रखती है।

चुनाव के अवसर पर राजा साहब के विरोध में जाग्रत चेतना का उदाहरण देखने योग्य है– "हमें भी गैल चलना आ गया है थोड़ा बहुत। अब ससुर जू तुम हेरो हमारे मुख की ओर। वोटरों की तरफन चकवा की तरह चितैओ हा–हा, बिनती खाओ जात–कुजात की। तुम्हारा तो दीन न ईमान।"[3] मंदाकिनी ने गाँव–गाँव घूम–घूमकर ऐसा वातावरण निर्मित किया कि कोई वोट डालने ही नहीं गया। राजा साहब का प्रबल

---

1. इदन्नमम, पृ0 94
2. उपरिवत्, पृ0 305
3. उपरिवत्, पृ0 354

विरोध, अन्याय के विपरीत न्याय की पक्षधर होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

अन्त में कहा जा सकता है कि इदन्नमम उपन्यास में स्थान–स्थान पर सामाजिक चेतना के विविध उदाहरण दृष्टव्य हैं। बुन्देली समाज को प्राचीन रूढ़ियों एवं परम्पराओं से मुक्ति दिलाने का लेखिका का प्रयास सराहनीय है। मैत्रेयी ने बुन्देलखण्ड में व्याप्त कुप्रथाओं, कुरीतियों एवं कुसंस्कारों का प्रतिरोध ही नहीं किया, वरन् अपने कथा–साहित्य में उनका सटीक उल्लेख कर भावी पीढ़ी को भी सचेत किया है।

अल्मा कबूतरी –

मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास कबूतरा जाति की वास्तविक यथार्थ की जटिल नाटकीय कहानी को अपने अन्तर में समाविष्ट किये हुए है। बुन्देलखण्ड के पिछड़े इलाकों में कंजर, मदारी, सपेरे, बनजारे, बावरिया तथा कबूतरा आदि बहुत सी जनजातियाँ हैं, जो छापामार गुरिल्लों की तरह लूट–खसोट करके सदियों से अपना जीवन व्यतीत करती हैं। लेखिका ने अपनी कृति में कबूतरा समाज के अपराधी कबीलों से पात्रों का चयन किया है– ऐसे कबीले जो सामाजिक विकास की मुख्य धारा से जुड़ नहीं सके हैं। इस समाज के जीवन का कठोर यथार्थ मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में संजोया है। कबूतरा जाति के अपराध में संलग्न पात्रों को सम्मुख रखकर डॉ0 राजेन्द्र यादव ने स्वीकार किया है कि इस समुदाय के पुरुष या तो जंगल में रहते हैं अथवा जेल में, इस समुदाय की स्त्रियां या तो शराब की भट्टियों पर रहती हैं या फिर हमारे बिस्तरों पर। यह यथार्थ आजादी के लगभग पचास वर्ष से अधिक बीत जाने पर भी हमारे समक्ष प्रश्न चिन्ह बनकर खड़ा हुआ है। मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में कबूतरा समाज के ऐसे ही अनसुलझे प्रश्नों को उठाया है और सदियों से उपेक्षित उस समाज में चेतना की जाग्रति को रेखांकित भी किया है।

सभ्य कहलाने वाले कज्जा लोगों के अन्याय का सक्षम विरोध करने की चेतना को दर्शाया गया है – इन पंक्तियों में– ''रामसिंह लोगों का दुःख दूर करने वाला आदमी किसी को तकलीफ क्यों देगा? बेईमानी पर भड़कने वाला आदमी

गैर–इंसाफी करेगा? कदमबाई भी नाइंसाफी को पीकर घर में नहीं बैठेगी। रौंदने–खदेड़ने वालों को दिखा देगी कि रास्ते और भी हैं। हहराता पानी किसी से रुका है।[1] कबूतरा जाति की कदमबाई तथा उसका लड़का राणा और रामसिंह के चरित्र को लेखिका ने प्रगतिशील भावना का प्रतीक निरूपित किया है।

प्राचीन परम्पराओं को पीछे छोड़कर कुछ नया करने की लगन अथवा आगे बढ़ने का साहसिक कदम सामाजिक चेतना को मुखरित करता है। ''मैं भीखम और गोमता की जाति का लड़का, पर मेरी समस्या भीखम, गोमता जैसी भी नहीं। मैं करन का दोस्त, बचपन में उसकी संगत पाया हुआ, मगर मेरी समस्या करन जैसी भी नहीं। आखिर उनके अलग सा क्या करना चाहता हूँ? पाँवों में भटकन बँधी है कि मन में कोई बेसुरी लय गूँजती है, चल–चल–चल लगी रहती है।''[2] यहाँ राणा की विलक्षणता अभिव्यक्त है। वह कुछ नया करने की धुन में आगे बढ़ने की बात कहता है।

राणा और करन की बातचीत से रामसिंह का प्रगतिशील रवैया दृष्टिगोचर हो रहा है। 'वहाँ रामसिंह जरूर आएगा। दरोगा का दायां हाथ। उसे छिपने की नहीं, दिखने की हिम्मत हो गई होगी'।[3] जो कबूतरा पुलिस के नाम से ही भयभीत होकर छिप जाते थे, वही अधिकारियों का सामना करने को तत्पर हैं।

अपना पैतृक व्यवसाय छोड़कर सरकारी नौकरी की लालसा धीरज के मन को कितना बल प्रदान करती है– 'धीरज ने मन ही मन कितनी प्रार्थना की थी, काश कोई जंग छिड़ जाय और उसे फौज की नौकरी मिल जाय।'[4]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने कबीलों के रूप में रहने वाली कबूतरा जाति के लोगों की मानसिकता को सामाजिक चेतना से अभिभूत वर्णित

---

1. अल्मा कबूतरी, पृ0 99
2. उपरिवत्, पृ0 228
3. उपरिवत्, पृ0 236
4. उपरिवत्, पृ0 291

करते हुए उन्हें प्रगति के रास्ते पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया है।

अगनपाखी –

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने इस उपन्यास में समाज में गहराई से व्याप्त पारस्परिक ईर्ष्या–द्वेष, पारिवारिक कलह, बदले की भावना, स्वार्थपरता तथा जायदाद को हथियाने की प्रवृत्ति को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है। सम्पत्ति के लिए भाइयों में विवाद, जायदाद के कारण अस्वस्थ एवं नपुंसक व्यक्ति के साथ स्वस्थ युवती का विवाह, पारिवारिक अन्तर्कलह तथा युवती का अपने निकटतम रिश्तेदार मौसेरे भाई के प्रति प्रेमाकर्षण आदि घटनाओं का संयोजन औपन्यासिक कथा को गति प्रदान करता है और इस उपन्यास को सामाजिक विमर्श का उपन्यास कहने को विवश करता है। लेखिका ने सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए तथा प्राचीन रूढ़ियों को उन्मूलित करने के लिए स्थान–स्थान पर सामाजिक चेतना जाग्रत करने की पेशकश की है।

पिता–पुत्र का परम्परागत व्यवहार सभ्यता, संस्कृति एवं सदाचार से सम्पृक्त रहता है किन्तु 'चन्दर' अपने पिता के प्रति जो भाव या विचार अभिव्यक्त करता है, उनमें नये युग की चेतना ही परिलक्षित होती है। 'मगर मेरा अनुभव यह है कि सबसे पहले बाप बेटे को ही पछाड़ता है। बेटे की जी हुजूरी उसका सुख है। उसकी अभ्यर्थना को गाकर वह यश कमाता है। बेटे की जिन्दगी के लिए सर्वस्व हार जाने की मुनादी करने वाला पिता पुत्र से जीवन भर चाकरी कराने के बाद अपनी मौत पर पिंड दान और मौत के बाद श्राद्ध के अर्पण–तर्पण का रुक्का लिखाना चाहता है।'[1] कथन से सिद्ध है कि लेखिका के विचार नई वैज्ञानिक सभ्यता से पूर्णतः प्रभावित हैं। पिता–पुत्र के सम्बन्धों को नवीन ढंग से प्रस्तुत करने में सामाजिक चेतना का निखरा हुआ रूप दृष्टिगोचर होता है।

पुत्रवधुओं की वैचारिक संचेतना का एक उदाहरण प्रस्तुत है। "मैं बहू का

---

1. अगनपाखी, पृ0 41–42

व्रत पूरी तरह निभा रही हूँ, कोताही करूँ तो सास की साँस रुकने लगती है। जेठ को बेचैनी होने लगती है, नौकरों में भगदड़ पड़ जाती है। वे समझते हैं बहुओं की पीठ पर लदा परिवार बहुओं के कसमसाते ही औंधे मुँह गिरेगा।"[1]

पुत्रों के समान ही पुत्रवधुओं में जो वैचारिक परिवर्तन परिलक्षित है, वह नवीन युग चेतना का स्पष्ट प्रभाव है। लेखिका ने इसका निर्वाह सफलतापूर्वक किया है। युग बदलने के साथ युग धर्म बदलता है तथा उसके उपरान्त युग चेतना भी अपरिवर्तनीय नहीं रह सकती।

चन्दर के अन्तर्मन में प्राचीन सद्विचारों के लिए कोई स्थान नहीं रहा। वह युवक होने के साथ अपने को पूर्ण स्वतंत्र एवं स्वावलम्बी मानता है तथा किसी भी तरह के नियंत्रण को उखाड़ फेंकने के लिए उद्यत दिखाई देता है। "मैं बच्चा नहीं रहा, पूरा आदमी हूँ। क्या करना है, क्या नहीं करना है, यह निर्णय मेरा होगा। पहले अम्मा ने भेजा, मैं चला गया। अब नानी के जरिए पिताजी मना रहे हैं, मैं रुक जाना अपना कर्त्तव्य समझ रहा हूँ। जवानी में किया हर काम गलत ही होता है क्या?"[2] उक्त कथन में नवीन प्रगतिशील विचारों की झलक विद्यमान है। लेखिका ने युगीन प्रभावों को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत कर सामाजिक चेतना का रूप उजागर किया है।

सामाजिक चेतना का एक और उदाहरण प्रस्तुत है– "देवी होना सुन्दरी होना होता है या सुन्दरी होना देवी होना? कहीं ऐसा तो नहीं कि पिता ने अपनी अति सुन्दर कन्या का भविष्य असुरक्षित समझा हो, सो फैला दिया कि उसके घर देवी ने अवतार लिया है। उसे धर्म की गोद में डालकर निर्द्वन्द्व हो गया हो।"[3] इस कथन से स्पष्ट है कि किसी भी सिद्धान्त को ज्यों का त्यों मानना प्राचीन परम्पराओं को आँख बंद कर स्वीकार करना। हर नई बात में गहराई से अन्वेषण करना चेतना–जागृति का लक्षण होता है। उक्त कथन में मंदिर के पुजारी के गवेषणात्मक विचार सामाजिक

---

1. अगनपाखी, पृ0 72
2. उपरिवत्, पृ0 117
3. उपरिवत्, पृ0 121

संचेतना से सम्पुष्ट दिखाई देते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा ने 'अगनपाखी' उपन्यास में विभिन्न सामाजिक घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में चेतना को निखारने का भरसक प्रयास किया है। प्राचीन विचारों एवं संकल्पनाओं को नवीन परिवेश में प्रस्तुत करने में लेखिका को अभूतपूर्व सफलता उपलब्ध है।

झूलानट –

मैत्रेयी पुष्पा ने 'झूलानट' में पारिवारिक कहानी को सहजता से अभिव्यक्त किया है। पारिवारिक सम्बन्धों में युगीन प्रभावों को रेखांकित करते हुए अनेक विवादों एवं उतार–चढ़ावों को अपनी सूझबूझ से चित्रित किया है। शीलो उपन्यास की नायिका है, बालकिशन उसका देवर है। शीलो बालकिशन के प्रति आकर्षित होकर यौन सम्बन्ध स्थापित तो कर लेती है किन्तु पत्नी बनकर रहने का साहस नहीं जुटा पाती। बालकिशन बारहवीं कक्षा में फेल हो गया तथा उसका बड़ा भाई सुमेर अम्मा से बदजुबानी कर नौकरी पर चला गया। इन दो घटनाओं ने अम्मा को चिन्तित तो किया ही, मुहल्ले की स्त्रियों की मुखियागीरी से भी उन्हें पीछे हटना पड़ा। घर की पौर में बैठना छोड़ दिया। किन्तु अम्मा अपनी तर्कशक्ति से पड़ोसिनों को खरा जवाब देने में नहीं चूकतीं। अपनी बात सदैव साहस के साथ प्रस्तुत करना उनके वाक्–चातुर्य का प्रमाण है।

लेखिका ने अम्मा से सम्बन्धित जो विवरण दिये हैं, उसमें कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में चेतना झलकती सी प्रतीत होती है। जैसे– फिर न जाने क्या–क्या बुदबुदाती रही– कौन सा पुरखा सराप गया कि घर की बंस–बेल में कल्ला फूटते देहरी .... तेरे पिता को न सुरग मिले न नरक। निरबंस आदमी अधबीच लटका रहता है।'[1] लेखिका का आशय स्पष्ट है कि स्त्री का पुत्रवती होना सामाजिक

---

1. झूलानट, पृ0 46

दृष्टि से तथा धार्मिक दृष्टि से भी अत्यन्त आवश्यक है। कथन में अन्तर्निहित चेतना से प्रकट होता है कि निपुत्री को न स्वर्ग मिलता है न नर्क। वह त्रिशंकु की भाँति बीच में ही लटका रहता है।

'शीलो की सेवा में कमी नहीं। तेल भरी कटोरी लेकर बूढ़ियों की मजलिस में जा पहुँची। महीन और रसपगी बोली 'अब तो उठो, अम्मा जी। रात भर कल्हारोगी फिर। मालिस करा लो पहले।'[1] इस कथन में लेखिका ने समाज के परम्परागत धार्मिक नियमों को समाविष्ट कर यह चेतना प्रदान की है कि वृद्धों की सेवा करना संतान का अनिवार्य धर्म होता है।

लेखिका ने प्रसंगानुसार कहीं–कहीं सामाजिक कठोरताओं एवं अनियमितताओं का खुलकर विरोध करने की चेतना प्रदान की है। देखिए ''फिर भी ठोड़ी उठाकर बोली अम्मा, पंचों की फूट गई हैं, आड़–परदा वाली बहू बेटी हलफ बयान करेगी? अरे, जो पूछना है, हमसे पूछें, बछिया की पाँत का खर्च तो हमें उठाना है। इसमें शीलो का क्या दखल।'[2]

शीलो की बहिन कांता का प्रेम सम्बन्ध बालकिशन से जुड़ जाता है। कांता जीजा के कपड़े रिन साबुन से धोती है, कपड़ों पर इस्तिरी कर देती है। कांता आग्रह करके अपने हाथ से जीजा के मुँह में कौर खिलाती है। यहाँ तक तो सामान्य था किन्तु बालकिशन प्रेम में मस्त कांता का चुम्बन लेते शीलो द्वारा देख लिया जाता है। इस अनैतिक कृत्य के विरोध में लेखिका ने जो भाव व्यक्त किये हैं, उसमें चेतना का स्वरूप परिलक्षित होता है। 'उस दिन शीलो न रोई, न चिल्लाई, बर्तन–भांड़े भी उठाकर नहीं पटके और न कैकेयी की तरह कोपभवन में गई। हाँ, कांता की चुटिया पकड़कर आंगन में घसीट लाई।'[3]

मैत्रेयी ने कांता पर चरित्र सम्बन्धी अभियोग दिखाकर दण्डात्मक चेतना का

---

1. झूलानट, पृ0 79
2. उपरिवत्, पृ0 83
3. उपरिवत्, पृ0 123

स्वरूप व्यक्त करने के लिए शारीरिक दण्ड का विधान किया है। उक्त कथन में यह बात निश्चित तौर पर निहित है कि अनैतिक कार्यों पर दण्ड की व्यवस्था होना अनिवार्य है।

विजन –

मैत्रेयी पुष्पा ने इस उपन्यास में पतनोन्मुख समाज की स्थितियों को साहसपूर्वक अनावृत किया है तथा समाज में चरम सीमा पर पहुँची प्रतिद्वंद्विता, ईर्ष्या–द्वेष एवं वैमनस्य को बड़ी कुशलता से निरूपित किया है। चिकित्सा क्षेत्र में व्याप्त अनैतिक व्यवहारों, दूषित आचरणों एवं अशोभनीय दुष्कृत्यों को डॉ0 आर0पी0 शरण जैसे चिकित्सकों का संदर्भ देकर उजागर किया गया है तथा आभा दी और डॉ0 नेहा शरण के चरित्रों को उभारने का सफल प्रयास किया गया है। लेखिका ने समाज में उत्पन्न विभिन्न समस्याओं के निराकरण को मुद्दा बनाकर पथ विचलित समाज में चेतना भरने का उपक्रम किया है।

लेखिका ने मुकुल के कथन से झलकती हुई सामाजिक चेतना को जिस सलीके से उकेरा है, देखते ही बनता है। आभा के हॉस्टल में रहने से मना करने पर मुकुल का चेतनापूर्ण कथन दर्शनीय है। 'जालों में मुझे मत उलझाओ, तुम क्या चीज हो, राजा जनक की बेटी थी सीता, राम के साथ जंगल में गयी, मैं तो हॉस्टल की बात कर रहा, जहाँ जंगल नहीं, लोग रहते हैं, अच्छे से अच्छे घर के डॉक्टर।'[1]

रेलवे स्टेशन की बेंच पर आभा और मुकुल बैठे हैं। आभा मुकुल के निर्णय से सहमत नहीं है। मुकुल के असंतोष एवं नाराजगी पर आभा मन ही मन सोचती है– "मुकुल को क्या हो गया है? बे–सिर पैर की बातें, व्यर्थ का अहंकार। यह मेरे–तेरे का भेदभाव। रूढ़ियों पुरानी मान्यताओं के लिए शूल–बबूल, अपने मन से निकालते नहीं। कैसे समझाया जाये कि हम एक ही संसार की मनुष्य जाति के दो रूप हैं।"[2] इस कथन

---

1. विजन, पृ0 110
2. उपरिवत्, पृ0 111

में जीर्ण–शीर्ण किन्तु असरदार प्राचीन रूढ़ियों एवं मान्यताओं का सांकेतिक विरोध स्पष्ट है। ऐसे कथनों के माध्यम से लेखिका ने चेतना जाग्रत करने का सफल प्रयास किया है।

साहस को अमीरी का प्रतीक बताकर लेखिका ने ऐतिहासिक उदाहरणों से प्रेरणा देने की पेशकश की है। 'यह तो सदियों से चला आ रहा मामला है, हिस्ट्री उठाकर देख लो। जब मुगल आये होंगे कि जब अंग्रेज आये होंगे, तब यहाँ के राजे–महाराजे अपने खजानों और सेनाओं के मालिक होंगे ही, मगर गुलाम होते गये। ताकत के मालिक बिकते गये। दूसरी ओर फक्कड़ों का दीवानापन देख लो, अपने चन्द्रशेखर, भगत सिंह और सुभाष बाबू के पास कौन से खजाने थे? ...... वे अमीर थे क्योंकि साहसी थे।[1] यहाँ मैत्रेयी पुष्पा ने उदाहरणों के माध्यम से चेतना को सम्पुष्ट तो किया ही है, साथ ही डॉ० आभा के साहस को व्याख्यायित करते हुए सम्पत्ति के मतवालों के मानस पर करारा प्रहार भी किया है।

कही ईसुरी फाग –

'सामाजिक जीवन का हर पहलू सामाजिक चेतना से प्रभावित रहता है। सामाजिक चेतना, विचारधारा का रूप ले लेती है जिसके माध्यम से सामाजिक सम्बन्धों को बदला जा सकता है तथा सामाजिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन संभव होते हैं। सामाजिक जीवन के सभी अन्तर्विरोधों को समाप्त करने में सामाजिक चेतना की सक्रिय भूमिका रहती है।'[2] मैत्रेयी पुष्पा का 'कही ईसुरी फाग' उपन्यास सामाजिक चेतना की उपर्युक्त निकष पर खरा सिद्ध होता है। लोक कवि ईसुरी रजऊ के शारीरिक सौन्दर्य पर मुग्ध थे। समय अनुकूल पाकर प्यार परवान चढ़ रहा था। रजऊ को सम्बोधित करके ईसुरी सरेआम फागें गाया करते थे। ईसुरी पर मदहोशी सवार थी। पराई औरत की आशिकी और फागों की प्रसिद्धि चारों ओर फैलकर ईसुरी को

---

1. विजन, पृ0 183
2. यशपाल के उपन्यास : सामाजिक कथ्य, डॉ0 चमनलाल गुप्ता, पृ0 16–17

कलंकित कर रही थी। इसी समय उनके परममित्र सहयोगी कलाकार धीरे पंडा सामाजिक अपयश का संकेत करके ईसुरी में चेतना का संचार करते हैं– "तुमने रजऊ की छवि भुवन मोहिनी बना दी है, पर माधौपुरा के लोग उसे इस गाँव की रज्जो ही मान रहे हैं। रज्जो का पति प्रताप है, तुम नहीं। अगर उसकी औरत को तुम इस तरह उघाड़ोगे तो उसकी आबरू उतारने के गुनहगार माने जाओगे।"[1] धीरे पंडा के इस वक्तव्य में सामाजिक चेतना का स्पष्ट स्वरूप प्रतिबिम्बित होता है।

उपन्यास की नायिका रज्जो है, जिसे ईसुरी प्यार से रजऊ कहते हैं। रज्जो का पति प्रताप उसके चारित्रिक पतन से घृणा करके, घर छोड़कर अंग्रेजी फौज में भरती हो जाता है। प्रताप के चचेरे भाई रामदास, बूढ़ी काकी से प्रताप की शिकायत करते हैं। कथन में अन्तर्निहित सामाजिक चेतना की स्फुरण दृष्टव्य है– "अपना प्रताप निराट सिर्री निकला। जीतने वालों का संग छोड़कर हारने वालों की जमात की ओर बढ़ रहा है। काकी, हारने वालों से तो मौका देखकर अपने निजी लोग भी पल्ला छुड़ा लेते हैं। हम तो इतना ही जानते हैं कि हुकूमत से दुश्मनी का मतलब क्या होता है? हम गाँव में रहते हैं, गंवार माने जाते हैं, तब क्या मूरख सिर्री और बेबकूफ भी हो गये"?[2] रामदास की इस शिकायत में यद्यपि चेतना मुखरित है किन्तु ईर्ष्या और द्वेष से परिवेष्ठित है।

मैत्रेयी पुष्पा का सम्पूर्ण कथा साहित्य यदि एक ओर नारी सशक्तीकरण का पक्षधर है, तो दूसरी ओर पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था के विपरीत भी है। रामदास कृत्रिम सहानुभूति का प्रदर्शन कर प्रताप की माँ तथा पत्नी पर अपना वर्चस्व बनाये रखता है। वास्तविकता यह है कि रामदास की नियति रज्जो तथा प्रताप की जायदाद को हस्तगत करने की है। उसके आन्तरिक भावों को अनावृत करके सामाजिक चेतना को रेखांकित करता हुआ कथन दृष्टव्य है। 'रज्जो की रीढ़ में टीस सी उठती है। झूठी–सच्ची

---

1. कही ईसुरी फाग, पृ0 71
2. उपरिवत्, पृ0 186

सांत्वना देकर रामदास इस घर को कब्जे में रखे हुए है। छूछी बातों का जादूगर .... इस घर की बहू को डर दिखाकर घर में बंद रखना चाहते हैं और सास को बेटे का शोक बताकर दलदली जमीन की ओर हाँक रहे हैं। भेड़िया कह रहा है कि भेड़िए आ रहे हैं।'[1] इस कथन में चालाक और भ्रष्ट व्यक्तियों के दुष्कृत्यों से सावधान रहने की चेतना व्यंजित है। रामदास की दोहरी सहानुभूति में समाहित स्वार्थपरता से बचने की प्रेरणा उजागर हुई है।

ऋतु के शोधकार्य में करिश्मा बेड़नी से प्राप्त अज्ञात तथ्यों को माधव अपर्याप्त मानकर असंतुष्ट है। शोध की गरिमा को दृष्टि में रखकर वह ऋतु को वास्तविकता से अनभिज्ञ न रहने के लिए सचेत करता है। 'कल के ईसुरी और आज के वलीदकनी में क्या फर्क है ऋतु? उनकी मजार को उखाड़ फेंका। बुलडोजर चला है हमारी आँखों के सामने और हम कुछ न कर सके। आज ईसुरी पर लिख रहे हैं, कल वलीदकनी के अपमान की गाथा लिखें, यही होगा। यही होता रहेगा, तो हम अपने शोध ग्रन्थों में नई पीढ़ी के लिए नया क्या देंगे?'[2] इस कथन में निहित प्रेरणा सामाजिक चेतना को उद्बुद्ध करती है तथा शोध क्षेत्र में गम्भीर अध्ययन–विश्लेषण के साथ ज्ञात को नई दृष्टि के आलोक में विश्लेषित करने की अनिवार्यता पर बल देती है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में गम्भीर अध्ययन एवं व्यापक अनुभवों के आधार पर स्थान–स्थान पर नई पीढ़ी को सत्प्रेरणा प्रदान की है और स्वाभिमान पूर्वक राष्ट्र के हित–चिन्तन की बात कही है। देशपत दीवान अंग्रेजों के विरूद्ध क्रान्तिकारी दल का गठन करते हैं तथा छापामार युद्ध की परम्परा को श्रेयस्कर मानते हैं। इनके दल में जासूसी के लिए गंगिया बेड़नी और रज्जो दो महिलायें भी हैं। रज्जो अपने पति की मृत्यु से शोक–संतप्त सास को सांत्वना देने जाना चाहती है।

---

1. कही ईसुरी फाग, पृ0 193
2. उपरिवत्, पृ0 259

किन्तु दल के मुखिया देशपत दीवान इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए प्रश्न चिन्ह लगा देते हैं। 'रज्जो से कहो, यहाँ गृहस्थों के नियम नहीं चलते कि शादी ब्याहों में जाकर खुशियां मनाई जाएं और मौत पर तेरह दिन की सोगवारी में रोते रहें। नाते–रिश्तेदारों की दिलासा से बहलें। ये सब सुविधा और सहूलियतों के चोंचले हैं।'[1] देशपत दीवान कुँवर आदित्य सिंह को सावधान करते हुए आगे कहते हैं– "आदित्य को भी समझा दो, उसका कोई भी कदम दल के मकसद के आड़े नहीं आना चाहिए। यहाँ राजघरानों और रजवाड़ों जैसे साधन नहीं है, जहाँ लम्बी–चौड़ी फौजें होती हैं। हथियारों का जखीरा रहता है। समझे कि यह निहत्थों की लड़ाई है, जिसमें बुद्धि, विवेक, कुशलता और हर समय हाजिर रहने की योग्यता ही हथियार की तरह इस्तेमाल होती है।"[2]

उक्त दोनों कथनों में देशपत दीवान रज्जो और आदित्य सिंह को विचलित न होने की संचेतना प्रदान करते हैं, जिससे उनके क्रान्तिकारी दल के सुनिश्चित सिद्धान्तों के अनुपालन में व्याघात उपस्थित न हो।

अन्त में कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा के 'कही ईसुरी फाग' उपन्यास में सामाजिक एवं व्यक्तिगत चेतना के विविध उदाहरण उपलब्ध हैं। लेखिका का कथा संयोजन पाठक के अन्तर्मन को झकझोरता है तथा नवीन प्रेरणाओं से साक्षात्कार कराता है। मैत्रेयी ने अपने इस उपन्यास में शोध–प्रक्रिया का मौलिक स्वरूप उद्‌घाटित करने के साथ विभिन्न समस्यायें उकेरने का सफल प्रयास किया है तथा समस्याओं के निदान के लिए चेतना को भी साकार स्वरूप प्रदान किया है।

---

1. कही ईसुरी फाग, पृ0 286
2. उपरिवत्, पृ0 286

तृतीय अध्याय

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में सामाजिक चेतना

(क) सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति के विविध रूप :

सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति सामाजिक विकास में बाधक तत्वों के खण्डन से स्पष्ट होती है। सामाजिक उत्थान, समाज विरोधी परम्पराओं की निन्दा तथा सामाजिक उत्कर्ष में सहायक नियमों को समर्थन दिया जाना ही सामाजिक चेतना का शुभ लक्षण माना जाता है। जो प्राचीन रूढ़ियाँ समाज को पतनोन्मुख करें, उनका विरोध व खण्डन साहित्यकार का दायित्व होता है। समाज के सर्वतोमुखी विकास में साहित्यकार की अहम् भूमिका होती है। इसलिए सच्चा साहित्यकार समाज पर पैनी दृष्टि रखता है और आवश्यक होने पर खण्डन–मण्डन से भी नहीं चूकता। जिन तत्वों के माध्यम से सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति होती है, वे निम्नलिखित हैं–

अस्पृश्यता –

अस्पृश्यता एक ऐसी सामाजिक बुराई है जो उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग में गहरी खाई निर्मित करती है। छुआछूत का जहर जिस समाज में व्याप्त हो जाता है, उस समाज में पारस्परिक स्नेह, सौहार्द्र, सहयोग एवं सामरस्य का सर्वथा अभाव हो जाता है। इस स्थिति में सम्पूर्ण विकास अवरूद्ध होकर समाज पतनोन्मुख हो जाता है। साहित्यकार अपने सृजन से समाज में चेतना फूँकता है, अस्पृश्यता के दोषों और उसके दुष्परिणामों को अनावृत करता है तथा समाज को विकास की ओर अभिमुख करने का दायित्व निर्वाह करता है।

नारी उत्पीड़न –

नारी उत्पीड़न समाज के लिए कलंक है। जिस समाज में नारी को अपहरण, बलात्कार, पक्षपात, शोषण, अशिक्षा, कुपोषण तथा परतंत्रता का सामना करना पड़ता है, वह समाज कभी विकासोन्मुख नहीं हो सकता। कथाकार अपनी कहानियों में इन बुराईयों को उजागर करके नारी जागरण का अभियान छेड़ता है, अपने सृजन के माध्यम से नारी–वर्ग को प्रतिरोध करने के लिए प्रोत्साहित करता है तथा नारी समाज के कल्याण

के लिए उसमें चेतना का संचार करता है।

प्राचीन रूढ़ियाँ एवं अंधविश्वास –

प्राचीन रूढ़ियाँ एवं अंधविश्वास प्राणियों में इस तरह घर कर चुके हैं कि इनका परिहार सामान्य लोगों के वश की बात नहीं। पूर्वज जो करते आये हैं, उनकी संतानें आँखें बंद कर वही करने में उद्यत रहती हैं। साहित्यकार का दायित्व होता है कि जन–मानस को उन अंधविश्वासों एवं पारम्परिक रूढ़ियों से मुक्ति दिलाये और मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा–साहित्य में इस उत्तरदायित्व का पूरी तरह निर्वाह किया है।

अशिक्षा –

साहित्य की प्रमुख प्रेरणा ही समाज है। जब तक समाज शिक्षित नहीं होगा, विकास–पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में नारी शिक्षा पर बल ही नहीं दिया, वरन् पिछड़े असभ्य कहे जाने वाले समाज को प्रेरित भी किया है, ताकि वह पुरुषों के समकक्ष नारी शिक्षा को भी प्रमुखता प्रदान करे। लेखिका ने अपने पात्रों के माध्यम से समाज में अशिक्षा निवारण की चेतना जाग्रत की है।

अनैतिक आचरण –

आचरण की पवित्रता का अपने आप में सामाजिक महत्व है। अनैतिक आचरण से परिष्कृत एवं सद्विचारों का उदय नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप सामाजिक पतन सुनिश्चित हो जाता है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने साहित्य में अनैतिक आचरणों का प्रबल प्रतिरोध घटना–संयोजन के माध्यम से दर्शाया है तथा पात्रों में सशक्त सामाजिक चेतना को उत्प्रेरित किया है।

अन्याय का विरोध –

अन्याय करने वाला जितना दोषी है, अन्याय सहन करने वाला भी उतना ही दोषी है। लेखिका ने अपनी कहानियों में विशेष रूप से नारी वर्ग को अन्याय न सहन करने की चेतना प्रदान की है। मैत्रेयी ने रमिया, विरमा, शीलो, मन्दा, रेशम तथा

कुसुमा जैसे विविध नारी पात्रों का सृजन कर अन्याय का डटकर विरोध किया है तथा सामाजिक विकास में नारी जागरण अभियान को महत्व प्रदान किया है। इतना ही नहीं 'सफर के बीच' कहानी का नायक 'गिरराज' अपने पिता के कहने पर भी दहेज लेने का विरोध करता है।

अन्त में कहा जा सकता है कि सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति के अनेक रूप हैं। जैसे अनुदारता, ऊँच–नीच, जाति–पाँत, ईर्ष्या–द्वेष, बैर–विरोध, बाह्य आडम्बर–स्वावलम्बन तथा पारस्परिक प्रेम एवं विश्वास आदि। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में सामाजिक चेतना के अधिकांश रूपों को सक्षम अभिव्यक्ति देकर सामाजिक विकास में अतुलनीय योगदान दिया है।

(ख) कहानियों में सामाजिक चेतना :

चिह्नार –

'चिह्नार' कहानी संग्रह में मैत्रेयी पुष्पा ने सामाजिक समृद्धि के साथ सदियों से चले आ रहे अनवरत् शोषण को वर्णन का विषय बनाया है। युवकों की अतृप्त कामनाओं, भौतिक पीड़ाओं, अन्तर को कुदेरती कुंठाओं तथा अनिश्चित भविष्य की चिंताओं को भोगे हुए यथार्थ की तरह प्रामाणिक बनाकर लेखिका ने इस तरह उजागर किया है कि पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। अन्याय एवं शोषण के दुर्दमनीय चक्र के प्रतिकार में विभिन्न स्थानों पर विरोध करने की चेतना भी जाग्रत की गई है। मैत्रेयी के पात्र अन्याय को असमर्थ होकर चुपचाप सहन नहीं करते, वरन् सचेत होकर सक्षम प्रतिरोध भी करते हैं।

'मन नाहिं दस–बीस' कहानी में मर्यादायुक्त सामाजिक चेतना का एक उदाहरण देखने योग्य है– ''वह मुड़कर जाने लगी तो अनजाने ही उसे रोकने को मेरा हाथ हवा में लहरा गया, पर जल्दी ही स्थिति का भान मुझे हो गया। चेतना में लौट आया, हाथ पीछे खींच लिया – स्वराज, क्या कर रहे हो? इस समय तुम स्वराज नहीं, इस जिले के नियोजन अधिकारी स्वराज वर्मा – पी0सी0एस0 हो।''[1] स्वराज के माध्यम

---

1. चिह्नार, मन नाहिं दस–बीस, पृ0 50

से लेखिका ने सामाजिक चेतना को बड़े सलीके से अभिव्यक्त किया है। समाज में अपयश से बचने एवं अशोभनीय कृत्यों से छुटकारे के लिए यहाँ सामाजिक चेतना का सफल आयोजन किया गया है।

'भँवर' कहानी की 'विरमा' अपने पति की मार–पीट सहकर अपने सास–ससुर से कहती है– "लो देख लो, अपने पूत की करतूत। कोई जगह छोड़ी है देह पर नील ही नील। इसीलिए ब्याह कर लाये थे हमें? ढोल तासे बजाकर मूँछ ऊँची करके हाड़–गोड़ तुड़वाने ले आये?"[1] विरमा अन्याय का प्रतिरोध करती है और सास–ससुर से बुरा–भला भी कह देती है। उक्त कथन में सास–ससुर के प्रति अभिव्यक्त विरोधी विचार सामाजिक चेतना का परिणाम ही है।

'आक्षेप' कहानी की नायिका 'रमिया' बदनामी से निर्भय होकर नम्बरदार के यहाँ रात भर रहकर बीमारी में उनकी सेवा करती है। उसकी अन्तश्चेतना उसे विवश कर देती है– "कित्ते बीमार हैं वे। बिचारे अकेले हैं, कोऊ पानी दैवे बारो नईंया। भट्टिन बुखार में तपरयेते। का करते बाबू जी हम।"[2] यहाँ पर रमिया की सेवा भावना सामाजिक चेतना का ही परिणाम है।

'सफर के बीच' कहानी में गिरराज पिता के आग्रह को ठुकराकर दहेज लेने से असहमति व्यक्त करता है। लेखिका ने समाज की प्राचीन परम्पराओं के प्रति अवहेलना को पिता–पुत्र के वार्तालाप द्वारा अभिव्यक्त किया है। "भरी थाली में कोई लात मारता है। पिता ने कई बार समझाने की कोशिश की। पिता की बात उन्होंने सुनी कि न सुनी पर गिरराज बिक नहीं सके।"[3]

इसी तरह 'केतकी कहानी में' 'रेशमिया' के गर्भ में पलता शिशु उसके दुराचार की घोषणा करने लगता है तो उसका देवर गिरधर सिंह कुल की मर्यादा के लिए सारा दोष अपने ऊपर ले लेता है– "रेशमिया का देवर गिरधर सिंह उसका हाथ

---

1. चिह्नार, भँवर, पृ0 98
2. उपरिवत्, आक्षेप, पृ0 77
3. उपरिवत्, सफर के बीच, पृ0 116

पकड़ने को राजी हो गया था। क्या करता, विधवा भाभी की कोख में न जाने किसका अंश था, लेकिन पिता का नाम उस शिशु को उसके सिवा देता भी कौन? सो सारा दोष अपने सिर लेने में ही भला था, कुल की मर्यादा भी तो बचानी थी।''[1]

अन्त में कहा जा सकता है कि 'चिह्नार' कहानी संग्रह की कहानियों में मैत्रेयी पुष्पा ने सामाजिक चेतना के अनगिनत चित्र उकेरे हैं, जिनमें प्राचीन रूढ़ियों एवं परम्पराओं का खण्डन है तथा नवीन विचारधाराओं का अन्वेषण है।

ललमनियाँ –

प्रस्तुत कहानी संग्रह में मैत्रेयी पुष्पा ने समाज की ज्वलंत समस्याओं को अपनी अद्‌भुत वर्णन क्षमता के साथ प्रस्तुत किया है। समस्याग्रस्त पात्रों के माध्यम से समाज में चेतना की लहर उत्पन्न करने में लेखिका पूर्ण सफल है, क्योंकि इनके पात्र परिस्थितियों से समझौता नहीं करते, वरन् पूरे साहस के साथ उनका डटकर मुकाबला करते हैं। फैसला कहानी की 'वसुमती' रिजक कहानी की 'लल्लन', पगला गई है भगवती की 'भागो', सिस्टर कहानी की 'डोरोथी' तथा ललमनियाँ कहानी की 'मौहरो' आदि पात्रों का सृजन कर लेखिका को शोषण और उत्पीड़न जैसी सामाजिक बुराईयों को उजागर करने में अद्‌भुत सफलता मिली है।

'पगला गई है भगवती' में प्रेम विवाह का चित्रण कर समाज को दकियानूसी परम्पराओं से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया गया है। समय परिवर्तन के अनुसार मनुष्य को भी अपने को बदल लेना चाहिए – ऐसी चेतना का स्फुरण निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है– ''जिज्जी ने बहुत रार मचाई तो जीजा ने फटकार डाली, मूरख हो तुम, बखत के संग बदलबौ सीखो। नहीं तो कल्ल के दिना लड़का बुढ़ापे पै ठोकर मार जै है। अकेली बैठी बिसूरत रहियो।''[2]

'सिस्टर' कहानी की डोरोथी अपने चरित्र के बल पर पाठकों को दूसरों की

---

1. चिह्नार, केतकी, पृ0 130
2. ललमनियाँ, पगला गई है भगवती, पृ0 28

मदद निःशुल्क करने की प्रेरणा देती है– 'सिस्टर डिसूजा ने अपने दोनों कन्धों और छाती को उंगलियों से छुआ, मदद के बदले पइसा लेगा हम? ईशु हमारे सिन को मुआफ नहीं करेगा। ओ आलमाइटी गॉड।'[1]

'रिजक' की लल्लन जातीय कठोरताओं के फलस्वरूप हुए शोषण के विपरीत समाज को सचेत करती हुई कहती है– ''बिरादरी वालों की मेहरबानी हुई है अम्मा और सबसे ज्यादा तुम्हारे पूत की, सिकंदरा वाले पलटू दाऊ जू की। भूखे–प्यासे बेबस आदमी से डॉड माँगते हैं, भले अपनी खाल छीलकर दें। नहीं तो बिरादरी के नामीगिरामी लोगों के जूता–पनइया डलिया में धरकर पूरे गाँव की परिकम्मा करें।''[2]

'बेटी' कहानी नारी–शोषण का जीता–जागता प्रमाण है। समाज में बेटियों के प्रति मानवीय धारणा कितनी लज्जाजनक है, कितनी घृणास्पद है तथा कितनी अपमानजनक है, इसे लेखिका ने परिस्थितिगत गहरे करुणा भाव से पाठक के मन में उतारने का प्रयास किया है। देखिये– ''तू लड़कों की बराबरी करती है। बेटे तो बुढ़ापे की लाठी हैं, हमारी, हमें सहारा देंगे। तू पराये घर का दलिद्दर। तेरी कमाई नहीं खाने हमें।'' यहाँ लड़कों की तुलना में लड़कियों को हेय समझने वाले समाज की प्राचीन परम्पराओं पर करारा प्रहार किया है लेखिका ने। लड़कों को पढ़ाना तथा लड़कियों को अशिक्षित ही रखना नारी वर्ग का अपमान, शोषण एवं असमानता का स्पष्ट प्रमाण है। लेखिका ने अपने कथा संयोजन से समाज को चेतना प्रदान करने का सफल प्रयास किया है।

गोमा हँसती है –

'गोमा हँसती है' कहानी संग्रह में लेखिका ने सदियों से चले आ रहे पुरुषवादी वर्चस्व पर करारा आघात किया है तथा सुषुप्त और कुंठित नारी शक्ति जाग्रत कर शोषण और अन्याय का सशक्त विरोध किया है। जिन रूढ़ियों एवं परम्पराओं ने नारी स्वातंत्र्य का हनन कर उसे चहारदीवारी के अन्दर बन्द रहने पर विवश कर दिया

---

1. ललमनियाँ, रिजक, पृ0 14
2. उपरिवत्, बेटी, पृ0 94

था, उनका समूल उन्मूलन कर नारी को पुरुष के समान दर्जा दिलाने की अभूतपूर्व पेशकश की है। डॉ0 राजेन्द्र यादव इस बात को स्वीकार करते हैं– 'गोमा हँसती है' की कहानियों के केन्द्र में है नारी, और वह अपने सुख–दुःखों और यातनाओं में तपकर अपनी स्वतंत्र पहचान माँग रही है।'[1] कथन से यह संकेत मिलता है कि नारी हर क्षेत्र में स्वाधीनता की दावेदार है। अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए वह अनगिनत असहनीय पीड़ाओं को सहन करने को उद्यत है। लेखिका ने इस संग्रह में ऐसे नारी पात्रों के चरित्र को उभारने का प्रयास किया है, जो घुट–घुट कर जीने के बावजूद भी अपने को स्वाधीन रखने के पक्ष में हैं।

'ताला खुला है पापा' कहानी में विन्दो, अरविन्द से प्रेम करने के कारण बहुत से अनपेक्षित आरोप झेलकर आखिर मुँह खोल ही देती है– ''मुझे बहुत गुस्सा आया, तुम पाप में डूबी बैठी हो। मुझे मार रही हो। तुम्हें रोने का शौक है। लोगों के मुँह देखने की आदत है। तुम ऐसे ही दुखी रहोगी।'[2]

'उज्रदारी' कहानी की नायिका शान्ती विधवा होने का अभिशाप झेलकर जेठ–जिठानी के प्रति ही नहीं वरन् सम्पूर्ण समाज की परम्पराओं के प्रति आक्रोश व्यक्त करती है– ''तेरे बाप के मरते ही घर की औरत के कामकाज छीनकर घर से हक मिटाने का सिलसिला चला दिया था जेठ–जिठानी ने। चूड़ी, बिछिया और रंग–बिरंगे कपड़ों को पाप बताकर विधवा औरत की जिन्दगी पर होने वाले खर्च और चढ़ने वाले रूप को खारिज करने लगे थे घर के लोग। रंगीन सपने मत देखो, दिल मोहने वाली बातें मत सुनो, पति के दुख की कटारी से सारे सुखों के तार काट डालो।''[3] यहाँ लेखिका ने एक विधवा पर होने वाले अमानुषिक अत्याचारों के प्रतिरोध में जाग्रत चेतना को दर्शाया है।

'गोमा हँसती है' कहानी में दहेज की तीव्र भर्त्सना में अन्तर्निहित सामाजिक

---

1. गोमा हँसती है – फ्लेप पर अंकित, डॉ0 राजेन्द्र यादव
2. उपरिवत्, ताला खुला है पापा, पृ0 77
3. उपरिवत्, उज्रदारी, पृ0 98

चेतना का एक रूप देखने योग्य है। 'बापू ने फिर अपना ठस्स बयान जड़ दिया, भाई, छोरी–छापरी न हो गई, बछिया–पड़िया हो गई। बिना दिये–लिए माँ–बाप बात नहीं करते। पैठ–हाट लगी है क्या?'[1]

उक्त उदाहरण में लेखिका ने दहेज प्रथा को समाज का एक कलंक मानते हुए उसका विरोध व्यक्त किया है।

इस प्रकार 'गोमा हँसती है' कहानी संग्रह में मैत्रेयी पुष्पा ने सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों, अन्यायों एवं अत्याचारों के समूल उन्मूलन को अपना लक्ष्य बनाया है और उसका घटना–संयोजन के माध्यम से प्रबल प्रतिरोध भी अभिव्यक्त किया है।

'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में लेखिका ने सामाजिक विडम्बनाओं का खुलासा कर जाति–पांत एवं ऊँच–नीच भावना को प्रकट किया है। 'ओ साले चमार के जाये, क्या कह रहा था तू? हमारी प्रधानी को ललकारता है। दस साल से प्रधानी क्या तेरी माँ का खसम कर रहा है?' 'क्या कहा? होश संभालकर बात करना। यह हुक्का–फरसी धरी है न, गाँव के बसौर पियेंगे। चमारों से तुम्हारी चमड़ी नहीं, मूँछें नुचवाऊँगा, हाँ।'[2]

पीतम सिंह भूतपूर्व प्रधान तथा धनपाल, हरिजन युवक के बीच उक्त कथोपकथन जाति–पांत तथा उच्च वर्ग और निम्नवर्ग की गहरी खाई को उजागर करता है। धनपाल के कथन में विरोधात्मक सामाजिक चेतना अभिव्यक्त हुई है।

अन्त में कहा जा सकता है कि 'गोमा हँसती है' कहानी संग्रह सामाजिक चेतना का जीता–जागता दस्तावेज है, जिसमें मैत्रेयी पुष्पा ने समाज में गहराई से व्याप्त कुप्रथाओं की भर्त्सना ही नहीं की, वरन् उन्हें जड़ से उखाड़ फेंकने का सफल प्रयास भी किया है। लेखिका अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल है।

---

1. गोमा हँसती है, पृ0 153
2. उपरिवत्, शतरंज के खिलाड़ी, पृ0 28

चतुर्थ अध्याय

मैत्रेयी पुष्पा के कथा-साहित्य में पारिवारिक स्वरूप

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों एवं कहानियों में बुन्देलखण्ड के समाज का सजीव चित्रांकन हुआ है। परिवार समाज की मुख्य इकाई है। विभिन्न पारिवारिक इकाइयों का समवेत स्वरूप ही समाज कहलाता है। परिवार का सुगठित स्वरूप सम्बन्धों की मधुरता पर अवलम्बित होता है। जिन परिवारों में द्वेषपूर्ण अथवा कलहपूर्ण सम्बन्ध होते हैं, उनका विघटन अवश्यम्भावी होता है, परिवार के मुखिया तथा उसके आश्रित सदस्यों में स्नेह एवं सद्भाव स्वाभाविक होता है, किन्तु कतिपय कारणों से उनके मधुर सम्बन्धों में दरार पड़ जाने से मधुरता नष्ट–प्राय हो जाती है। आपके कथा–साहित्य में कहीं द्वेष एवं कलह के चित्र हैं, तो कहीं माधुर्य पूर्ण सम्बन्ध भी हैं। मैत्रेयी के कथा–साहित्य में पारिवारिक स्वरूप को उद्घाटित करने हेतु जिन सम्बन्धों की विवेचना आवश्यक है, वे निम्नलिखित हैं।

(क) माता - पिता :

नारी का महत्वपूर्ण रूप माँ का है। परिवार के समस्त दायित्वों का निर्वहन करते हुए सन्तति के प्रति असीम स्नेह लुटाने वाली माँ का सम्माननीय स्थान बुन्देलखण्ड के समाज में सर्वोपरि है। बच्चों के जन्म से लेकर विवाह पर्यन्त समस्त जिम्मेदारी माँ अपने ऊपर लेती है तथा सभी को संतुष्ट करने का प्रयास करती है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी कृतियों में इन सम्बन्धों का सुन्दर चित्रण किया है। माता–पिता कहीं अपने पुत्र–पुत्रियों के कार्य से बहुत प्रसन्न होते हैं तो कहीं उनके समाज विरोधी आचरणों से अत्यन्त दुःखी भी।

'बेतवा बहती रही' उपन्यास में उर्वशी का लालची, आर्थिक लिप्सालीन तथा स्वार्थपरायण भाई अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु कुछ भी करने को तत्पर रहता है। उसके कृत्यों से किसी का कितना ही अहित क्यों न हो जाय, उसे कोई चिन्ता नहीं। वह अपनी इस मानसिकता के कारण अपने माता–पिता के प्रतिकूल कार्य करता है। पिता के साथ भी लालच के कारण तू–तड़ाक पर आ जाता है। माता–पिता को ऐसे पुत्र से

कोई स्नेह नहीं रहता। जब अजीत अपनी विधवा बहन का रूपयों के लालच में आकर मीरा के पिता से जबर्दस्ती विवाह करा देता है, तो उसके पिता को बहुत कष्ट होता है, वह ऐसे पुत्र से पुत्र रहित होने की बात करते हैं। माता पुत्र के क्लेश से परेशान होकर कहती है "ठठरी बंधे अजीत तुम कौन कुघरी में जन्मे हते। होतन ही काहे नहीं मर गये।'[1] तथा पिता के शब्द भी पीड़ा की पराकाष्ठा प्रतीत होते हैं– 'दाऊ छिमा करियो। ऐसो अतिचाल लरका जनमे तौ का करे इन्शान। पिछले जनम के पाप भुगत रहे हैं हम।'[2]

इसी उपन्यास में कहीं माता–पिता, पुत्र–पुत्रियों से परेशान हैं, तो कहीं पुत्र–पुत्रियां माता–पिता के व्यवहारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति उदासीनता के कारण विवादग्रस्त हैं। बरजोर सिंह मीरा, विजय और उदय के पिता हैं। बरजोर सिंह की पत्नी का निधन अल्पायु में ही हो गया था। बरजोर सिंह के अन्दर पलने वाली विषय वासना ने जब अजीत की विधवा बहन, जो बरजोर की पुत्री मीरा की सखी भी है, के साथ अभद्रता का व्यवहार किया, तो उर्वशी ने समाज व लोक–लाज के कारण मीरा को भी उस प्रकरण से दूर रखा, किन्तु भाई की अर्थ–लोलुपता उर्वशी को बरजोर की पत्नी बनने पर विवश कर देती है।

बरजोर के पुत्र उदय को जब पता चलता है तो वह अपने पिता के इस घृणित कार्य पर तहकीकात करते हुए वाद–विवाद करता है–

'हमारे जाते ही तुम्हें शरम नहीं, बेटी बराबर .... क्या मिल गया तुम्हें?'

'का कैरये, तुम?'

'क्या कह रहे? तुम समझ नहीं रहे, क्या कह सकते हैं हम?'

'कल का छोकरा, हमसे सवाल–जवाब करवे वारौ तैं कौन है? हमसे उत्तर माँगवे वारो पैदा नहीं भओ धरती पै। हम तुम्हारे बाप हैं। अबै तुम्हें खबा रहे हैं, समझे।'

---

1. बेतवा बहती रही, पृ0 119
2. उपरिवत्, पृ0 114

'इस घर में रहेंगे तो हम सवाल भी करेंगे और उत्तर भी माँगेंगे। बाप हौ तो अंधेर मचाऔगे मनमानी करोगे? बाहर कड़वे लायक मुँह नहीं रह गया हमारा–तुम्हारे करमों के कारण।'[1]

'इदन्नमम्' उपन्यास में माता–पिता और सन्तान का सम्बन्ध कहीं–कहीं अत्यन्त मार्मिक हो गया है, तो कहीं सामान्य है। इस उपन्यास में बऊ का पुत्र महेन्द्र, सगुना के माता–पिता, मकरंद के माता–पिता तथा मंदाकिनी और उसकी माँ के सम्बन्धों का मैत्रेयी ने तथ्यात्मक चित्रण किया है। जहाँ एक ओर मंदाकिनी की सखी सगुना अपने पिता की चरित्रहीनता के कारण पिता के मित्र अभिलाख से बलात्कार का शिकार होकर गर्भवती हो जाती है। सगुना अभिलाख की हत्या कर स्वयं आत्मदाह कर लेती है। पिता की बच्चों के प्रति लापरवाही बच्चों को गलत दिशा की ओर प्रेरित करती है। यही सगुना के साथ होता है। उसे अपने पिता के कारण ही प्राणों का त्याग करना पड़ता है। इज्जत की भूख ने सगुना को यह सब करने पर विवश कर दिया। पिता के कुकर्मों के कारण ही सगुना का दुःखद अंत होता है।

उपन्यास की नायिका मंदाकिनी और उसकी माँ 'प्रेम' का मैत्रेयी ने अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है। मंदाकिनी की माँ मंदाकिनी के पिता महेन्दर की मृत्यु के बाद अपने जीजा रतन सिंह के साथ घर छोड़कर चली जाती है। मंदाकिनी के नाम घर की जमीन है, जिसे हड़पने के लिए लालची और लम्पट रतन सिंह उसकी माँ 'प्रेम' से जबर्दस्ती मुकदमा करवा देता है।

मंदाकिनी को लेकर बऊ अज्ञातवास में चली जाती हैं, सोनपुरा के दादा के यहाँ। मंदाकिनी को अपनी माँ से सहानुभूति है। वह मानती है कि उसकी माँ ने जो कुछ भी किया परिस्थितियों के हाथों मजबूर होकर किया। बऊ की बातें सुनकर उसे दुःख जरूर होता है, पर वह उन बातों को निरर्थक करके अपनी माता को ही सहारा देती है। यह उसके इन कथनों से स्पष्ट होता है–

---

1. बेतवा बहती रही, पृ0 125

'बऊ तो कहती थीं, अदालत के कठघरे में तुम तन कर खड़ी होती हो। कचहरी में दर्प से चलती हो। गर्व, घमंड और अहंकार की बोली बोलती हो। बऊ को सुनाती हो चुभती बातें।'[1]

'पर मैं कैसे मानूँ अम्मा ..... ये सूखी हथेलियाँ, ये बिवाई फटे पांवों में टेढ़े–तिरछे बिछिया। निस्तेज मुख पर धुँधलाती बिन्दी।'[2]

'अगनपाखी' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने भुवन और उसकी माँ के चरित्र का जो मार्मिक चित्रण किया है, वह इनके किसी अन्य उपन्यास में नहीं मिलता। माँ की खरी–खोटी बातों को सुनकर भी भुवन पर कोई असर नहीं पड़ता। भुवन के जीजा धन के लोभ में आकर भुवन का विवाह किसी ऊँचे खानदान में करवा देते हैं पर भुवन इस विवाह से संतुष्ट नहीं होती क्योंकि पति पागल भी है और नपुंसक भी। भुवन अपनी माँ के घर आकर रहने लगती है तथा हर काम में मनमानी करती है। इस कारण उसकी माँ क्रोधित होकर कहती है– 'भट्टी छोत, बाप भइया नहीं तो तू ऐसी भई जा रही है कि मर्द डरे। जनी के लच्छिन कब सीखेगी।'[3]

भुवन कहीं अपनी ससुराल से दुःखी है तो कहीं अपनी माँ के लांछनों से। जब भुवन की माँ उससे ससुराल जाने की बात पर विवाद करती है व भुवन को मारने लगती है तो भुवन का धैर्य जबाव दे जाता है। वह माँ से उलझ जाती है व कहती है– 'डुकइया तू मरने पर तुली रहती है। नाक नहीं बची तो जिन्दगी का भी क्या करेगी? ला, मैं घोंट दूँ तेरा गला – मर जा। किसी का क्या ले जायेगी? हवेली वाले तेरी लाश पर रोने नहीं आएँगे तू नहीं होगी तो बड़ा अच्छा रहेगा, वे मुझे खुलकर सताएंगे। ले मर मर मर कहकर दो तीन झटके दिए। तू नहीं मर रही न? मरेगी कैसे, तेरी जान मेरी जान से जुड़कर सखत जान हो गयी है।'[4]

---

1. इदन्नमम, पृ0 113
2. उपरिवत्, पृ0 113
3. अगनपाखी, पृ0 36
4. उपरिवत्, पृ0 74

'कस्तूरी कुण्डल बसै' अपनी आत्मकथा में मैत्रेयी ने माता और पुत्री का संघर्षपूर्ण चित्रण किया है। जहाँ एक ओर मैत्रेयी की माँ कस्तूरी का अपनी माता से सामंजस्य नहीं बैठता, वहीं दूसरी ओर मैत्रेयी का अपनी माँ कस्तूरी से भी मतान्तर रहता है। कस्तूरी नहीं चाहती कि उसका विवाह, विवाह की उम्र आने से पहले ही कर दिया जाय। कस्तूरी को भय रहता है कि उसका पति उम्र में उससे बहुत बड़ा है व बीमार रहता है। कहीं मर गया तो वह विधवा हो जायेगी, इसी भय के कारण वह विवाह से मना कर देती है। कस्तूरी की माँ को उसकी यह बात नहीं भाती कि कस्तूरी समाज की परम्पराओं को तोड़ने का दुस्साहस करे।

कस्तूरी की माँ हरसम्भव प्रयास करती है कि कस्तूरी विवाह के लिए हाँ कर दे, पर कस्तूरी के न मानने पर क्रोधित होकर कहती है– 'तू तो आदमी के बुढ़ापे और बीमारी से बिदक रही है, यह नहीं जानती कि मेरा बाप मुझे जवानी में ही छोड़कर भाग गया। गोरों की मार बुढ़ापे और बीमारी से बड़ी है, तेरे भइया भी डर के मारे भाग जायेंगे। तू यहाँ चौंतरा करके बैठी रहना, यही चाहती है नठिया।'[1] "कस्तूरी, जिसकी बेटी कुँआरी रहती है, उसकी सात पीढ़ियां गल जाती हैं, समझ ले।"[2] और इस प्रकार जबर्दस्ती कस्तूरी का विवाह कर दिया जाता है।

कस्तूरी विवाह उपरान्त एक पुत्री की माँ बनती है और पति की मृत्यु के पश्चात् 18 माह की पुत्री का लालन–पालन करती है तथा सोचती है कि उसकी पुत्री मैत्रेयी विवाह बंधन में न बंधकर अपनी पढ़ाई पूरी कर सरोजनी नायडू या सुचेता कृपलानी जैसी बने। कस्तूरी ने मैत्रेयी की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध किया, जिससे मैत्रेयी को किसी भी प्रकार की कोई परेशानी न उठानी पड़े, परन्तु मैत्रेयी ने अपनी माँ के अड़ियल स्वभाव के कारण अपनी शिक्षा की ओर कम ध्यान दिया और शादी–विवाह की तरफ ज्यादा। कभी माँ के प्रति स्नेह सम्बन्धों में प्रगाढ़ता दिखती है तो कभी माँ के कठोर रवैये से नफरत भी दिखाई देती है।

---

1. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 11
2. उपरिवत्, पृ0 11

मैत्रेयी मात्र सत्तरह वर्ष की आयु में ही माँ कस्तूरी से विवाह करने के लिए कह देती है। मैत्रेयी एक आश्रय चाहती है और अपनी माँ से छुटकारा। कस्तूरी मैत्रेयी को समझाती है कि पढ़–लिखकर अपना भविष्य बनाओ, शादी–विवाह के जंजाल में न फंसो, पर मैत्रेयी के न मानने पर कहती है– 'तू विवाह को गुड़ियों का खेल समझती है।'[1] मैत्रेयी के ऊपर इस बात का कोई असर नहीं होता, वह माँ से कहती है– 'नहीं तप और जद्दोजहद तो हर जगह होती है, फिलहाल तो मैं सुख–दुःख के एक साथी की तलाश में हूँ।'[2]

मैत्रेयी को अपनी माँ के ऊपर भरोसा नहीं रहता, क्योंकि माँ को अगर अपनी पसन्द का लड़का न मिला, तो वह मैत्रेयी की शादी भी नहीं करेगी। इस सम्बन्ध में एक साक्षात्कार में उन्होंने बताया– "फिर कुँवारी रह जाना। यदि ऐसा लड़का मिलता है तो ठीक है, नहीं तो कुँवारी रह जाना।"[3]

अपने लघु उपन्यास 'झूलानट' में मैत्रेयी ने माता और उसके दो पुत्रों– सुमेर और बालकिशन के बीच भेदभाव का तथा सुमेर द्वारा दूसरा विवाह कर लेने पर माता–पुत्र के विवाद का चित्रण किया है। फिर भी माता का हृदय अपने बड़े पुत्र के लिए स्नेह से भरा रहता है। शहर से गाँव आकर भी जब सुमेर अपनी पत्नी शीलो से बात नहीं करता, तब उसकी माता को दुःख होता है और माता पुत्र में विवाद हो जाता है। माता तथा पुत्र के बीच विवादास्पद भावनायें निम्न उदाहरणों में स्पष्ट हैं–

"बेटा, ब्याह चलाय की बात और थी। बहू से नहीं बोला–बतलाया, न सही, मगर अब तो ब्याह को ढाई, तीन साल ......।"

"ढाई सौ भी हो जाएँ, मैं क्या कर सकता हूँ?"

"ऐसे न कह बहू की जवाबदार हूँ मैं।"

"अब तक समझाया है समझा दो ऐसे ही।"

---

1. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 62
2. सृजन समीक्षा, अक्टूबर–नवम्बर–दिसम्बर, 2004, पृ0 10
3. उपरिवत्, पृ0 10

"अन्यायी मखौल न कर।"

"मखौल तो तुमने समझ लिया है अम्मा।"

"ब्याह के पहले ही जता देता अपनी मंसा।"

"मैंने तुम्हारी फूल परी देखी ही कब थी?"

"देखने की मनाही थी बेटा?"

"देखकर बदल भी क्या जाता, अम्मा?"[1]

सुमेर की माँ उसे बहुत समझाती है पर वह नहीं मानता, फिर भी उसकी माँ अपने पुत्र के सभी अनुचित कार्यों पर परदा डालती रहती है व गाँव में इन बातों को फैलने नहीं देती।

सुमेर जब गृहस्थी के सामान के विषय में कहता है तो माँ खुश होकर कहती है– "तू कम निर्मोही है? सबेरे ही बँधवा दूँगी सामान। तूने इशारा कर दिया, बस।"[2]

बालकिशन से माता को उतना स्नेह नहीं है जितना कि सुमेर से। बालकिशन से माता सिर्फ घर और खेत के कामों के लिए ही प्रेम करती है। इसी कारण बालकिशन के मन में हीनभावना घर बना लेती है। उसका मन घर से विरक्त हो जाता है और वह वैराग्य लेकर घर से चला जाता है।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में मैत्रेयी ने जहाँ एक ओर कदमबाई का माँ के रूप में व राणा का पुत्र के रूप में जितना मार्मिक वर्णन किया है, उतना ही पिता के रूप में राम सिंह व पुत्री के रूप में अल्मा का वर्णन मिलता है। मंसाराम अपने छोटे पुत्र करन को जितना प्रेम करता है, बड़े पुत्र जोधा से उतनी ही नफरत, क्योंकि जोधा पिता मंसाराम के आचरणों से घृणा करता है।

---

1. झूलानट, पृ0 36
2. उपरिवत्, पृ0 38

कदमबाई कबूतरा बस्ती की महिला है, जिसका पति जंगलिया कबूतरा पुलिस द्वारा मार दिया जाता है। कदमबाई एक पुत्र की माँ है जिसका नाम 'राणा' है। राणा मंसाराम का ही पुत्र है। यह बात कदमबाई ने उपन्यास में अनेक स्थानों पर स्वीकार की है। कदमबाई राणा से बहुत अपेक्षायें रखती है। जैसे कि कबूतराओं का कार्य होता है– चोरी करना, डाका डालना, अपने डेरों पर दारू बनाना आदि, पर राणा का इन कामों में मन नहीं लगता। कदमबाई इसके लिए बहुत चिन्तित रहती है और अंत में राणा को अपने रिश्तेदार रामसिंह के घर पढ़ने के लिए भेज देती है।

कदमबाई के कारण ही मंसाराम के घर में विघटन हो जाता है। मंसाराम जमीन जायदाद वाला व्यक्ति है, कदमबाई के कारण हर जगह अपमानित होता है। मंसाराम राणा के लिए कपड़े भी बनवा देता है। कदमबाई को जब वह चुपचाप कम्बल देने जाते हैं, तो जोधा देख लेता है और क्रोधित होकर कहता है– "उसी कोठे में आधा कनस्तर मिट्टी का तेल रखा है जिसमें अम्मा जली थीं। स्नान कराकर आग लगा दूंगा। तुम्हारे मरने पर हमें न पाप लगेगा , न धिक्कार मिलेगी, सब शाबाशी देंगे।"[1]

पिता के परम्पराओं के विपरीत कार्यों के कारण गाँव के लोग भी जोधा का साथ देने लगते हैं, कहते हैं– "जिनके बाप बरबाद होते हैं, वे बेटे जल्दी जिम्मेदार हो जाते हैं। जोधा उन्हीं में से है।"[2]

रामसिंह कबूतरा ने अपनी पुत्री का लालन–पालन स्वयं ही किया है। रामसिंह की पत्नी का निधन पुत्री के जन्म के कुछ दिन बाद ही हो गया था। रामसिंह अपनी पुत्री अल्मा से बहुत प्रेम करता है और हमेशा उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है, उसने अपनी पुत्री की शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया। रामसिंह ने अल्मा की सगाई कदमबाई के पुत्र राणा के साथ कर दी, पर रामसिंह की मृत्यु के उपरान्त अल्मा को दर–दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं और अंत में श्रीराम शास्त्री से विवाह कर वह

1. अल्मा कबूतरी, पृ0 138
2. उपरिवत्, पृ0 89

अल्मा शास्त्री बन जाती है। कुछ समय पश्चात् शास्त्री की हत्या कर दी जाती है। मृत्यु के समय शास्त्री प्रदेश के समाज कल्याण मंत्री थे। शास्त्री की मृत्यु के बाद सत्तारूढ़ पार्टी ने उनकी पत्नी अल्मा शास्त्री को बबीना विधानसभा सीट का प्रत्याशी घोषित कर दिया।

(ख) पति - पत्नी :

मनुष्य की जीवन यात्रा में 'पति–पत्नी' का रिश्ता सबसे आकर्षक एवं महत्वपूर्ण होता है। परिवार की सुखद या दुःखद स्थिति 'दाम्पत्य' सम्बन्ध पर ही निर्भर करती है। पति–पत्नी का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ एवं अंतरंग होता है। वे एक–दूसरे के सुख–दुःख के साथी होते हैं। हिन्दी उपन्यासों एवं कहानियों में ऐसी अनेक नारियों का उल्लेख मिलता है जो पति को परमेश्वर मानती है तथा उनकी आचारहीनता, दुष्प्रवृत्तियों और कर्त्तव्यहीनता को मौन होकर स्वीकार करती हैं। पत्नी के इस व्यवहार में आदर्शवादिता अवश्य़ झलकती है, किन्तु विवेक की दृष्टि से उसका यह व्यवहार उचित नहीं कहा जा सकता है। पत्नी का कर्त्तव्य यह नहीं है कि वह विषयगामी पुरुष का मौन अनुसरण करें, अपितु उसे चाहिए कि वह उसे सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करे।

मैत्रेयी पुष्पा इस विचारधारा को स्वीकार नहीं करतीं। उनके लेखन में अगर पत्नी पतिपरायण है, तो पति को भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह भी पत्नीव्रत धारण करे। पुरुष पत्नी पर सतीत्व का बंधन लगाता है। पुरुष का व्यभिचार छिप सकता है किन्तु स्त्री का नहीं। पातिव्रत्य का एकांगी आदर्श पिछले हजारों वर्षों से हिन्दू परिवार में सर्वमान्य है। पतिव्रता नारियों की अपेक्षा पत्नीव्रता पति बहुत ही कम मिलते हैं। फिर भी समाज नारी की ही आलोचना करता है, किन्तु आज इसका स्वरूप बदल रहा है। मैत्रेयी के कथा–साहित्य में अपने अधिकारों के प्रति लड़ने वाली पत्नियों का बाहुल्य मिलता है।

मैत्रेयी पुष्पा ने 'पति–पत्नी' के सम्बन्ध का वर्णन सहज आत्मीय, माधुर्यपूर्ण व कटुता और तनावपूर्ण दोनों रूपों में किया है। भारतीय जीवन के परिवेश में नारी की

स्वाभाविक और सूक्ष्मतम् भावनाओं का उसकी शक्ति और दुर्बलता का उसके सामाजिक नैतिक और घरेलू जीवन एवं स्वभाव का, उसकी रुचि, आदर्श भावना और चारित्रिक उत्थान–पतन का जितना मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा–साहित्य में किया है, उतना अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। मैत्रेयी के कथा–साहित्य में पति–पत्नी का यह सम्बन्ध विविध आयामों द्वारा व्यक्त किया गया है।

मधुर सम्बन्ध –

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा–साहित्य में पति–पत्नी के बीच अतिशय प्रेम, लगाव व सुख–दुःख के साथ का बहुत ही अच्छा वर्णन किया है। 'चाक' उपन्यास में रंजीत और सारंग में झगड़ा भी देखने को मिलता है, तो प्रेम भी। रंजीत सारंग की बातों पर ध्यान नहीं देता व सारंग पर शक भी करने लगता है, इन्हीं बातों को लेकर दोनों के मन में वैमनस्यता पैदा हो जाती है। रंजीत कभी अपने विचारों पर पछताता है तो कभी गर्व महसूस करता है, कभी सारंग को देखकर जलता है तो कभी प्रेम के वशीभूत होकर कहता है– ''अभी तक नाराज हो?'' उन्होंने पत्नी की बाँह पकड़ ली। प्रार्थना भरा स्वर ......

''छुओ मत, सारंग ने झटक दिया उसका हाथ।''

''सारंग, मैंने इतनी बड़ी भूल की है जितना तुम दुत्कार रही हो?''

''जब तुम्हें सुनना ही नहीं कुछ, तो मैं तुमसे बोल–बतिया कर क्या लूँगी?''

''क्या कहती हो तुम? बोलो सुनने बैठा हूँ।''[1]

किसी के द्वारा सारंग की तारीफ सुनकर प्रसन्न होते हैं रंजीत। सारंग हँसमुख, गृह कार्यों में दक्ष व व्यवहार कुशल नारी है जिसने सबका मन मोह लिया है। सारंग के ससुर रंजीत का व्यवहार जानते हैं इसीलिए सारंग के उचित या अनुचित सभी कार्यों में सहयोग करते हैं। रंजीत भी कभी सारंग के कार्यों के आगे झुक जाते

1. चाक, पृ0 292

हैं, तभी तो कहते हैं– "भाई सुगढ़ बहू किसी को न मिले। ताजिदंगी आदमी रखवाली ही करता रहे।"[1]

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में मंसाराम अपनी पत्नी के प्रति पूर्ण समर्पित नहीं है, वह कबूतरा बस्ती की एक महिला कदमबाई को प्रेम करते हैं। मंसाराम की पत्नी इन सभी बातों के बाद भी मंसाराम के प्रति पतिपरायणता के धर्म को निभाती है, उसे कदमबाई से कोई शिकायत नहीं है। कहीं–कहीं पर मैत्रेयी पुष्पा ने भी आदिकाल से चली आ रही बहुपत्नी प्रथा का समर्थन सा किया है, पति कैसा भी व्यवहार करे परन्तु पत्नी अपने पथ से विरक्त नहीं होती। मंसाराम की पत्नी के इन शब्दों से यही स्पष्ट होता है– "तुम अपना मन मत मारो, उस कबूतरी को बिठा लो। बस मुझे सेवा का मौका देते रहना। क्या चाहिए और?"[2]

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा–साहित्य में कहीं पति–पत्नी की प्यार भरी तकरार का वर्णन किया है तो कहीं अतिशय स्नेह का भी। पति अपनी पत्नी को अत्यधिक स्नेह करता है उससे एक क्षण के लिए भी अलग नहीं होना चाहता, प्रेम की पराकाष्ठा को प्रकट करते हैं यह उदाहरण– "उस दिन के बाद मैंने उन्हें एक–दूसरे में रमे हुए पाया। कबूतर के जोड़े की तरह चोंच से चोंच जोड़े। ..... नशे में डूबे हुए कहते 'विरमा ने हमारे लाने खूब सिरजीं तुम, नातर कैसे कटती जिन्दगी?'[3] "लखन, छबीली का बुखार नहीं उतरता। पाँव का घाव पुराता ही नहीं। भट्टी–सी तच रही है। न मालुम क्या–क्या तो अंट–बंट बोल रही है। तलफ रही है लखन, मछली की तरह ..... पेट में अन्न का रेसा नहीं। आज तीन दिना हो गये।"[4]

'चिह्नार' कहानी संग्रह में पति–पत्नी का मधुर सम्बन्ध देखने को मिलता है। पति अपनी पत्नी के सहारे घर व परिवार छोड़कर पढ़ने जाते समय पत्नी से कहता है

---

1. चाक, पृ0 152
2. अल्मा कबूतरी, पृ0 96
3. चिह्नार, पृ0 29
4. उपरिवत्, पृ0 30

"अम्मा नहीं रहीं। तुम्हीं हो अब इस घर की स्वामिनी। संभालना। पिता जी और मणि को तुम्हारे आसरे छोड़ता हूँ। निश्चिंत होकर पढ़ूँगा, तुम जो हो।"[1]

तनावपूर्ण सम्बन्ध –

मैत्रेयी पुष्पा ने जहाँ एक ओर पति–पत्नी के प्रेमात्मक पहलू का वर्णन किया है, वहीं दूसरी ओर दाम्पत्य को बिखेरने वाले तनावपूर्ण सम्बन्धों को भी उकेरा है। मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य में अगर कुछ पत्नियाँ पतिपरायण हैं तो कुछ पति के अन्याय का विद्रोह करने वाली भी हैं तथा कुछ अपने अधिकारों को पहचानने वाली प्रगतिशील पत्नियाँ भी हैं। पति को अपने आगे झुकाने वाली पत्नियों का वर्णन मैत्रेयी ने सफलतापूर्वक किया है।

पत्नी की छाया से भागने वाले पति वैरागी की पत्नी इस विश्वास के साथ पतिव्रत धर्म का पालन करती है कि एक दिन उसका पति अवश्य वापस आ जायेगा। पति स्नेह के नाम पर कटु वचन बोलता है। इसी को स्पष्ट करते हुए मैत्रेयी ने लिखा है– "बैरागी को पत्नी से कोई लगाव नहीं, मेल–मिलाप नहीं, पर मुख देखे का सम्बन्ध क्या कम भारी है? गाँठ जोड़कर, अग्नि साक्षी करके सात फेरों का बंधन क्या सहज नकारा जा सकता है? बहुत बड़ा आधार था उसके पास। अर्द्धांगिनी होने के अधिकार की गुरूहता पर टिकी है गजरा।"[2]

'अगनपाखी' उपन्यास की नायिका भुवन का विवाह भुवन का जीजा अर्थलोलुपता व अपने पुत्र की नौकरी के लालच में आकर बड़ी हवेली के नपुसंक व अर्द्ध विक्षिप्त विजय सिंह से करा देता है। भुवन इस विवाह से असंतुष्ट है उसका दाम्पत्य टूटने की कगार पर आ जाता है। मायके आकर भुवन अपनी माँ से भाग्य की दुर्बलता बताते हुए कहती है– "अम्मा मेरी दुनिया दूसरी जनियों जैसी नहीं। दिन में कैसी भी रहे, रात को बदल जाती है मैं जानती हूँ जनी अपने आदमी की कमीवेशी किसी से नहीं कहती। पति की कमजोरी जनी की लाचारी बन जाती है, फिर इस मामले में सहाय भी

1. चिह्नार, पृ0 126
2. बेतवा बहती रही, पृ0 64

कौन करे? एक ही गली बचती है– आदमी जैसा भी है उससे मिलकर रहो या फिर अलग होकर जिओ। अब मैं क्या करूँ? लो। तुम ही बता दो।"[1]

इस कथन से भुवन के हृदय की पीड़ा का पता चलता है। जिन्दगी से समझौता करते हुए भुवन अपने नपुसंक पति की पतिपरायण पत्नी बनने का फर्ज तो अदा करना चाहती है पर अपनी भावनाओं को भी नहीं मार पाती और इसी कशमकश में वह पति की मृत्यु की खबर सुनकर अपनी बहन के लड़के व बचपन के प्रेमी चन्दर के साथ पलायन कर जाती है। गाँव के लोग समझते हैं कि भुवन अपने पति के साथ सती हो गयी है।

मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य में पत्नियों पर शक करने वाले पतियों की कमी नहीं है। पत्नियों द्वारा पति से संतुष्ट न हो पाने के कारण पर पुरुष से सम्बन्ध स्थापित करने के भी विविध उदाहरण हैं। 'चाक' उपन्यास में रंजीत अपनी पत्नी की चरित्रहीनता को इस प्रकार व्यक्त करता है– "साले इस घर में आग लगा दूँ। दलवीर भइया की बातें बड़ी–बड़ी, काम ऐसे टुच्चे। और यह औरत रंडी–वैश्या को मात कर रही है।"[2]

मैत्रेयी के कथा–साहित्य में पत्नियाँ परिस्थितियों से पलायन अवश्य कर लेती हैं किन्तु घर में रहकर ही पर–पुरुष से सम्बन्ध रखती हैं। 'गोमा हँसती है' में जब पति को शक होता है तो वह आपत्ति करते हुए कहता है– "आयंदा यह मेरे घर आया तो तेरा सिर फोड़ डालूंगा कुतिया। इस हरामी को फेंक दूँगा गोद से उठाकर। उस भुजंगी को देखकर खिलती है सूरजमुखी। मुझे देखकर तो तेरा मुँह तोरई की तरह लटक जाता है।"[3]

'विजन' उपन्यास में उच्चवर्गीय नारी की भावनाओं का जो दमनात्मक रूप देखने को मिलता है, उससे स्पष्ट होता है कि लेखिका ने अपने आस–पास के

---

1. अगनपाखी, पृ0 74
2. चाक, पृ0 167
3. गोमा हँसती है, कहानी– गोमा हँसती है, पृ0 170

सामाजिक जीवन का बहुत ही स्पष्ट उल्लेख किया है। फिर भी नेहा और आभा ने परिस्थितियों के आगे हार नहीं मानी तथा पति के सहयोग के बिना ही आगे बढ़ने का प्रयास किया और इन्हीं सब बातों को लेकर उनके दाम्पत्य जीवन में तनाव पैदा हुआ। नेहा अपने ससुर के व्यवहार से खुश नहीं रहती है। अपने मानसिक तनाव के कारण वह परिवार में सामंजस्य नहीं बिठा पाती। वह मन में थमे आक्रोश को व्यक्त करती हुई पति से कहती है– "अजय, अब स्त्रियों के स्वभाव वाले कुछ लक्षण मुझे त्यागने होंगे। जब तुम लोगों के क्षेत्र में दखल दे ही रही हूँ तो व्यवहार में भी ताकतवरी होनी ही चाहिए, वही मुझे तुम लोगों से आगे ले जा सकती है।"[1]

मैत्रेयी ने कहीं पति के अनुचित कार्यों पर पत्नी के प्रतिबंध लगाने या सन्मार्ग पर लाने का वर्णन किया है तो कहीं पर पति द्वारा पत्नी पर अत्याचार का वर्णन किया है। 'चिह्नार' में अपने पति को शराब पीकर आने पर पत्नी अपने पतिव्रता धर्म को दर्शाते हुए कहती है– "शराब के नशे में धुत आदमी था तो कहनावत तो करनी ही थी। अपने आदमी को वह नहीं बरजेगी तो कौन बरजेगा? ऊँच–नीच तो समझानी ही पड़ती है। ज्यादा नशा पत्ती किस काम की? नास की निशानी है इसलिए टोक धरा।"[2] पत्नी के ऊपर पति के अत्याचारों का वर्णन भी आपके कथा–साहित्य में देखने को मिलता है 'साली कमबख्त। मर जा कहीं जाकर। रोज–रोज कोई न कोई बखेड़ा ..... चैन नहीं लेने देती। मौत नहीं है इस हरामजादी को। कहकर धक्के के साथ उसे छोड़ दिया। बालों के उखड़ आने की मर्मांतक पीड़ा से वह कराह उठी।'[3] 'गोमा हँसती है' में भागकर शादी कर लेने के बाद जब नौकरी के लिए रिश्वत की जरूरत पड़ती है। पति पत्नी के मायके से रूपये माँगने की बात कहता है, पर पत्नी इस बात के लिए राजी नहीं होती और घर छोड़कर चली जाती है। इस पर पति कहता है– "साली, कुतिया। तेरी ही खातिर कर रहा था मैं सारे जुगाड़, किसी और के लिए तो नहीं। हरामजादी, तेरे मायके की बारी आयी तो ..... बेटीचो .... ने दिया एक फूटा

1. विजन, पृ0 150
2. चिह्नार, कहानी–भँवर, पृ0 98
3. उपरिवत्, पृ0 106

सिक्का भी? मैं पूछता हूँ, तू नहीं उठाएगी ऐशोआराम?"[1] नारी में परिस्थितियों के अनुकूल आत्मपरिवर्तन की एक विलक्षण शक्ति पायी जाती है। परिस्थितियों के अनुरूप अपने बाहरी जीवन को बदल लेने की जितनी सहज प्रवृत्ति नारी में है, अपने स्वभावगत गुण न छोड़ने की आन्तरिक प्रेरणा उससे कम नहीं। इसी से भारतीय नारी पुरुष से अधिक सतर्कता के साथ अपनी विशेषताओं की रक्षा कर सकती है। मैत्रेयी पुष्पा ने भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक कई पत्नियों का वर्णन किया है। जैसे चाक की रेशम और सारंग, झूलानट की शीलो, इदन्नमम् की कुसुमा, ललमनियां की सावित्री गोमा हँसती है की, गोमा आदि इन नारियों ने अपने पतियों की भावनाओं को समझने का प्रयास तो किया किन्तु अपनी भावनाओं का दमन न करते हुए या तो दूसरे व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित किये या फिर अपने अधिकार का प्रयोग कर चुनाव में पति की हार का कारण बनीं।

चाक की सारंग पति से न बनने के कारण गाँव के मास्टर से सम्बन्ध स्थापित करती है, तो रेशम पति की मृत्यु के बाद किसी व्यक्ति का गर्भधारण कर उसे पाप नहीं मानती। इदन्नमम् की प्रेम पति की मृत्यु के पश्चात् अपने रिश्ते के जीजा के साथ भाग जाती है, वहीं अगनपाखी की भुवन भी पति की मृत्यु के बाद अपनी बहन के लड़के के साथ भाग जाती है। 'इदन्नमम' में कुसुमा पति के त्याग देने के बाद परिवार के ससुर के साथ सम्बन्ध बनाकर पुत्र पैदा करती है और इसी में अपनी शान समझती है। 'गोमा हँसती है' की सावित्री गाँव के लोगों के हित के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देती है। इसका परिणाम यह निकलता है कि सावित्री का पति उसे घर से निकाल देता है।

'गोमा हँसती है' में पति की मृत्यु के बाद पत्नी अपने पतिव्रत धर्म का विरोध करते हुए कहती है– "बैरी खुद तो परमधाम चला गया और हमें थमा गया, सती की कंठी कि फेरती रह और पिट घर वालों से। भले जान खो दे। मैं आसमान से तेरी

---

1. गोमा हँसती है, कहानी– साँप–सीढ़ी, पृ0 95

लाश पर फूल बरसाऊँगा। बाजे दुंदभी बजाऊँगा। स्वर्ग दिलाऊँगा।"[1]

(ग) भाई - बहन :

भारतीय हिन्दू परिवारों में भाई–बहन के सम्बन्धों को पवित्र सम्बन्ध की कोटि में गिना जाता है। बहन के संरक्षण का दायित्व पिता के बाद भाई पर ही अवलम्बित होता है। बहन भी भाई के हाथ में पवित्र सूत्र बांधकर अपने संरक्षण का भार उसे सौंपती है। शास्त्रों में कहा गया है– "पिता रक्षति कौमार्ये, भर्त्ता रक्षति यौवने" इसी प्रकार पिता की वृद्धावस्था में अथवा असहाय होने की स्थिति में बहन की रक्षा का सम्पूर्ण भार भाई पर आ जाता है। यद्यपि पाश्चात्य सभ्यता के दुष्प्रभावों से इन पवित्र सम्बन्धों में कटुता समाविष्ट हो गई है और कहीं दायित्व निर्वाह में असावधानी तथा कहीं जायदाद को लेकर पारस्परिक द्वेष एवं ईर्ष्या घर कर जाती है। मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य में भाई–बहन के पावन सम्बन्ध चित्रित हैं तो द्वेषपूर्ण सम्बन्ध भी रेखांकित हैं।

भाई–बहन का आत्मीयता पूर्ण रिश्ता बहुत से स्थानों पर देखने को मिलता है। 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में मीरा और उदय के प्रेमपूर्ण सम्बन्ध का एक उदाहरण दृष्टव्य है। मीरा– "देखना भइया, क्या हाल है। तुम गली पक्की काहे नहीं करा देते। वैसे ही प्रधान बने फिरत हो।"

उदय– "इसी डर से तो नहीं कराते कि फिर तुम यहीं बनीं रहोगी। उधर राघवेन्द्र की महतारी हमें गाली दे रही होगी कि हमारी बहू को लिवा गये और अबै तक नहीं भेजी। जाओ सासरे।"[2] इस उदाहरण में मीरा अपने भाई उदय को ग्राम प्रधान होने का बोध कराती है और ग्राम के विकास की बात करती है। यहाँ बहन–भाई के आन्तरिक प्रेम को दर्शाया गया है।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' उपन्यास में मैत्रेयी की माता अपने भाई से बहुत स्नेह

---

1. गोमा हँसती है, कहानी– उज्रदारी, पृ0 116
2. बेतवा बहती रही, पृ0 135

करती है। भाइयों के गलत व्यवहार पर भी उनका समर्थन करती है। इसी को स्पष्ट करता है यह उदाहरण– "लाली, बैल तू ही खोलना। हम अनपहचान आदमी, बैल बिदकेंगे। एक–एक करके चारों बछड़े पोखर तक पहुँचाने होंगे।"

"हाँ पहुँचा दूँगी"

"सावधानी से– बूढ़ा हल्ला कर देगा।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि बहन अपने भाइयों के प्रति इतना समर्पित रहती है कि अपनी ससुराल से चोरी करने में भी कोई बुराई नहीं मानती।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में मंसाराम के कदमबाई के साथ नाजायज सम्बन्ध को समाज स्वीकार नहीं करता है। मंसाराम का बहनोई इस सम्बन्ध के विरोध में जब मंसाराम को बेइज्जत करके घर से निकल जाने को कहता है, तब मंसाराम की बहन का स्नेह भाई के गलत कार्य पर भी इस रिश्ते को टूटने नहीं देता। वह कहती है– "भइया, तुझे धीरज की सौगंध। भानिज का मरा मुँह देखो, जो इस कसाई की देहरी पर चढ़े। बहन की खातिर अपना खून पानी मत कर मंसा।"[2]

भाई–बहन के पवित्र बंधन का एक रूप 'ललमनियाँ' में भी देखने को मिलता है। भिन्न धर्म होने के बाद भी जो सरसता, आन्तरिक प्रेम तथा निस्वार्थ आत्मीयता देखने को मिलती है, वह कहीं और मिल ही नहीं सकती। भाई–बहन के निस्वार्थ प्रेम को हम इन शब्दों में देख सकते हैं– "हम न जानते थे कि मोह–माया का ऐसा सागर है तुम्हारे भीतर। तुम्हारे प्रेम के कारण ही मेरे स्वास्थ्य में बदलाव आया है। जादू–सा हुआ है। कहाँ उठा–बैठा तक न जाता था और अब"।[3] नर्स सिस्टर डिसूजा की आत्मीयता के कारण ही उसे एक हिन्दू परिवार में इतना स्नेह व सम्मान मिलता है तथा भाई–बहन के पवित्र सम्बन्ध का निर्वहन भी होता है।

---

1. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 89
2. अल्मा कबूतरी, पृ0 265
2. ललमनियां, कहानी– सिस्टर, पृ025

जहाँ एक ओर इतना आत्मीय स्नेह है इस रिश्ते में, वहीं दूसरी ओर अपनी स्वार्थपरता के कारण एक भाई अपनी बहन का घर बर्बाद करने से नहीं हिचकता।

'बेतवा बहती रही' उपन्यास में अजीत अपनी बहन उर्वशी का कभी भी हित नहीं कर पाता। उर्वशी के विवाह से लेकर उसके वैधव्य तक व जीवनपर्यन्त के लिए वह उर्वशी को ऐसे नरक में भेज देता है, जहाँ आन्तरिक वेदना उसे घुट–घुट कर मरने को विवश कर देती है। उर्वशी को ससुराल से अलग करने में भी अजीत अपनी निम्न मानसिकता से उसे समझाते हुए कहता है– ''देखो तुम्हारे भले के लाने ही तो कह रहे हैं हम। आज को तो तुम्हारे जेठ हैं। अच्छी तरह रख रहे हैं। कल के दिन उनके लड़के जवान होंगे, कैसा व्यवहार करें, कौन जाने? फिर वहाँ रहने से फायदा।''[1]

इस प्रकार अंत में कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में कथानक को सुचारू गति प्रदान करने के लिए यदि एक ओर भाई–बहन को सरस–स्नेह–व्यंजक पवित्र सम्बन्धों को चित्रित किया है, वहीं दूसरी ओर उनकी आन्तरिक द्वेष भावना एवं कटुता का निदर्शन भी कराया है।

(घ) देवरानी - जिठानी :

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा–साहित्य में देवरानी–जिठानी के सम्बन्धों का मधुर चित्रण भी किया है और कटु व्यवहार का भी। 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में इन सम्बन्धों का बहुत ही मधुर वर्णन मिलता है। दादी और आजी देवरानी–जिठानी हैं पर पारिवारिक वैमनस्यता के कारण अलग–अलग हो जाती हैं, फिर भी मन में एक दूसरे के प्रति अपार स्नेह छिप–छिप कर मिलती हैं और प्रेम को व्यक्त करती है। ''कैसी अंकवार भरी परस्पर। एक दूसरे से लिपट गयी थीं, जैसे लम्बे बनवास के पश्चात मिली हों। दादी आजी के कंधे पर सिर धरे देर तक रोती रहीं। चरण–स्पर्श और आशीषों की औपचारिकता दोनों ही भूल गयीं।''[2]

---

1. बेतवा बहती रही, पृ0 110
2. उपरिवत्, पृ0 85

"काय छोटी, तुमें रहाई आ जात अपनी जिज्जी को बिना देखें? बिना मिलें? हम तो छोटी तुम्हें छत पै चढ़ के हेर लेत। कबहूँ ही सही पर आँख भर चितै तो लेत। पर तैं तो लौरी, लरका के कहे में चल रही .... निठुर पूत कौ हुकुम मान रही।"[1] दोनों में स्नेह भी है तो प्यार भरी झिड़कियां भी, तभी तो एक–दूसरे पर ताने–उलाहने देती हैं।

इसी प्रेम के लिए ही तो आजी ने दादी के विधवा हो जाने पर अपने आंचल की सघन शीतल छाया का सहारा दिया था और दादी को अपनी पुत्री जैसा माना था। यही दर्शाते हुए मैत्रेयी पुष्पा ने लिखा है– "लौरी आज से तुम बेटी भई जा घर की। रोक–टोक, आड़–मरजाद, तुमारे लाने आज से खतम। बिटिया की तरह रहौ, बरजोर कों पालो–पोसौ।"[2]

उर्वशी की जिठानी उसके मधुर व्यवहार के कारण उसे बहुत प्रेम करती है। उर्वशी के खाने–पीने का भी ख्याल रहता है जिठानी को "उरवसी, थाली परसी धरी है, चलो कलेऊ कर लो।"[3] उर्वशी सोचती है कि अम्मा सही कहती थीं कि साथ खाने से प्रेम बढ़ता है, इसीलिए उसमें और जिज्जी में इतना प्रेम है।

'चाक' उपन्यास में सारंग अपनी जिठानी की विवशता को समझती है। जिठानी के प्रति सारंग के मन में प्रेमभावना है, जोकि रंजीत से भी बहस करने पर सारंग को मजबूर कर देती है। रंजीत जब भाभी के गाँव न आने पर सफाई देता है, तब सारंग को उसकी बातों से क्रोध आता है और वह रंजीत से कहती है– "जिठानी और मुझमें फर्क नहीं रंजीत। वे आती हैं तो चमकदार कपड़े और दमकते हुए गहने पहने रहती हैं पर उनके मन पर पति की दहशत का काला पर्दा .... हमसे छिपा पातीं हैं क्या? और अब वर्षों से क्यों नहीं आईं? इसका जवाब है तुम्हारे पास? तुम भले ही समझते रहो कि तुम्हारी भाभी गाँव के धूल–धंगड़, मक्खी–मच्छरों में नहीं आना

---

1. बेतवा बहती रही, पृ0 85
2. उपरिवत्, पृ0 56
3. उपरिवत्, पृ0 51

चाहतीं, पर मैं नहीं मानती यह बात। जेठ जी जानबूझकर नहीं लाते उनको। नहीं लाते इसलिए कि वे बाबा के सामने कुछ खुलासा न कर जाएं।"[1] स्त्री होने के नाते स्त्री–मन की भावनाओं को समझकर ही सारंग जिठानी की तरफदारी करती है।

मैत्रेयी के कथा–साहित्य में देवरानी जिठानी के मधुर सम्बन्धों के साथ कटु सम्बन्धों का भी उल्लेख मिलता है। 'चाक' उपन्यास में देवरानी–जिठानी के व्यवहार में कटुता एवं बातचीत की निम्नता का स्तर सामने आया है, जिसे मैत्रेयी ने इस प्रकार वर्णित किया है–

देवरानी – रंडी, बेहा, रॉड, अऊती, मेरी छोरी को दोष मढ़ती है। अपना आँचर देख छिनार, बहू तेरे पूत छीता की मर्दानगी पर भूभर फेंक कर गई। तेरे खास जमाई के मूंड पर चप्पल मारी।

जिठानी – छिनार होगी तू और तेरी गुलकंदिया, रंडी कुआँरी न बूढ़ी।

देवरानी– अरी असल की हो तो बुला ले अपनी छीता की बहू को, वह तो कुआँरी न रांड।[2]

(ङ) ननद - भाभी :

परिवार में 'ननद–भाभी' का रिश्ता विशेष रूप से कटुतापूर्ण ही देखने को मिलता है, सहज आत्मीयता पूर्ण कम। मैत्रेयी के कथा–साहित्य में 'ननद–भाभी' के सम्बन्धों का चित्रण निम्न रूपों में मिलता है–

मधुर सम्बन्ध –

सहज आत्मीय रूप में 'इदन्नमम' उपन्यास में मंदाकिनी और कुसुमा के, 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में कस्तूरी और विद्या के तथा 'चाक' में सारंग और गुलकंदी के सम्बन्धों का उल्लेख मिलता है।

---

1. चाक, पृ0 56
2. उपरिवत्, पृ0 249

'इदन्नमम' उपन्यास में मंदाकिनी जब अज्ञातवास में बऊ के साथ दादा के घर में रहती है, तब दादा की बहू कुसुमा से उसे अत्यधिक लगाव हो जाता है। वह कुसुमा भाभी का दुःख–दर्द समझती है, इसीलिए गढ़ी में दाऊ जू और कुसुमा भाभी के आन्तरिक क्षणों के विषय में वह किसी को नहीं बताती। कुसुमा भाभी भी मंदाकिनी से बहुत सहानुभूति रखती हैं तथा मंदाकिनी के दुःख में दुःखी हो जाती हैं। जब बिरगवां में कैलाश मंदाकिनी के साथ बलात्कार कर देता है, तो कुसुमा भाभी उसे बहुत मारती है और छाया की तरह मंदाकिनी के साथ लगी रहती हैं। उनके अत्यधिक स्नेह को स्पष्ट करता है यह उदाहरण –

''खटिया पर निढाल पड़ी है मंदाकिनी बेहोश सी। कुसुमा ने छूकर देखा तो घबरा उठी।''

''बदन पिरा रहा है बिन्नू? दो घूँट चाय पियोगी।''[1] मंदाकिनी के मना करने पर भी नहीं मानती और चाय पिलाती हैं पर मंदाकिनी को उल्टी हो जाती है और वह असहाय सी हो जाती है, तब कुसुमा भाभी उसे हिम्मत बंधाते हुए कहती हैं ''लो कुल्ला कर लो बिन्नू, हिम्मत नहीं हारते। अँसुआ पोंछ डारो।''[2]

'चाक' उपन्यास में सारंग मिलनसार, हँसमुख और सदा प्रसन्न रहने वाली नारी है। सारे गाँव के लोग उसे प्रेम करते हैं। मैत्रेयी ने सारंग और गाँव के रिश्ते की ननद गुलकंदी की विनोदपूर्ण बातचीत का वर्णन इस प्रकार किया है– ''आज भी बिसुनदेवा मिल गया क्या? सारंग ने आँगन में सूखती मक्का को हाथ से फैलाते हुए यूँ ही हँसकर पूछा। वैसे दोपहर ढले तक लौट जाता है। कोई निशानी दे गया क्या? गुलकंदी –हट्ट! तुम्हें दिल्लगी ही सूझती रहती है। बिसुनदेवा मेरा कौन लगता है? सारंग – आज खील–मखाने कैसे खिल रहे हैं मन में, बताओगी नहीं?[3] इस उदाहरण में ननद–भाभी के प्रेमपूर्ण वार्तालाप का जो वर्णन किया गया है, वह मैत्रेयी

1. इदन्नमम, पृ0 88
2. उपरिवत्, पृ0 88
3. चाक, पृ0 124

के कथा–साहित्य के अलावा अन्यत्र मिलना सहज नहीं।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' उपन्यास में कस्तूरी विधवा औरत पुत्री के विवाह के लिए परेशान होती है। जब कस्तूरी की ननद विद्या को पता चलता है तो वह अपनी भाभी की सहायता करने के लिए कस्तूरी के पास आ जाती है। विद्या बीबी को समाज की पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था पर बहुत क्रोध आता है। एक विधवा औरत किस प्रकार अपनी युवा पुत्री के हाथ पीले करे क्योंकि समाज में बहुत से दहेज के दानव बैठे हैं, इन्हीं बातों पर कटाक्ष करते हुए वह कहती है– "लो तुम न आती तो हम तो आ ही रहे थे। हमने सुनी है कि 'कनास' बापों ने तुम्हें बड़ा सताया है, धुआँकरों ने एलकारनी का हौप न माना। राँड़ लुगाई की तरह फजिहत पर उतर आए। लोभी–लालची रूपया–पइसा तो माँग ही रहे हैं इसकूटर के संग छोरी के बाप–भइया भी माँग रहे हैं। बताओ, लुगाई हाथ–पाँव से मेहनत करे और भगवान से लड़कर खसम–पूत भी लाए, तब ये ब्याह सादी के लिए राजी होंगे। रंधैरी मरदों की दुनिया। आज मेरा हीरा भइया होता तो ....।'[1]

कस्तूरी विधवा होकर भी मर्दों जैसा हौसला रखने वाली औरत। पुत्री के विवाह सम्बन्ध की बात लेकर स्वयं जाती है लड़के के घर और लड़की के अंक पत्र दिखाकर कहती है कि लड़के के अंक पत्र हमें दे दो। दहेज का विरोध करने वाली कस्तूरी को दहेज के कारण ही बहुत घरों से वापस होना पड़ता है। पर स्वाभिमानी, उज्ज्वल चरित्र वाली, पुरुष सत्तात्मक समाज पर करारा प्रहार करने वाली व परिश्रम से नौकरी करते हुए अपनी पुत्री का भविष्य बनाने वाली कस्तूरी से पुरुष समाज डरता भी है, जिसे कस्तूरी की ननद गर्व का विषय मानते हुए कहती है– "सो तो तेरे नाम की इलाके में 'हई' पड़ गई है। कस्तूरी नाम सुनते ही बंजमारे मर्दों का हौसला हिल जाता है। मेरी छाती चौड़ी हो जाती है, भौजाई का नाम सन्नाम हो रहा है।"[2]

---

1. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 143
2. उपरिवत्, पृ0 143

तनावपूर्ण सम्बन्ध –

मैत्रेयी पुष्पा ने मधुर सम्बन्धों के साथ अपने कथा–साहित्य में ननद–भाभी के वैमनस्यतापूर्ण सम्बन्धों का चित्रण भी किया है। 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में उर्वशी एक चरित्रवान व सरल स्वभाव की लड़की है। बहुत मुश्किलों से शादी हो पाती है किन्तु विवाह के कुछ समय बाद ही उर्वशी पर वैधव्य का पहाड़ टूट जाता है। उर्वशी का भाई अजीत उर्वशी की जमीन हड़पना चाहता है, इसीलिए उसे अपने पिता के घर ले आता है। उर्वशी जब अपनी ससुराल जाने की बात भाभी से कहती है तो षडयंत्र में शामिल भाभी कटुता के साथ लांछन लगाते हुए कहती है– ''इतनी जल्दी तौ अपनौ आदमी होत तबहू नहीं करी जात। इतै जेठ के बुलउआ पर इतनी उतावली मची है बिन्नू को जैसे खसम बैठे हो।''[1]

इतने पर भी उर्वशी की भाभी को संतुष्टि नहीं मिलती, वह कभी भी अपनी ननद के चरित्र पर लांछन लगाने से नहीं चूकती व उसे इस बात का भी कष्ट नहीं होता कि उसके इन झूठे लांछनों से उर्वशी के मन में कितनी पीड़ा होगी। जब ससुराल से उर्वशी के जेठ की खबर आती है तो उर्वशी की भाभी कहती है ''इतनी ही मोह–मिमता जेठ के ढिंग रहने की जुड़ गयी है बिन्नू तौ जेठ के ही बिछिया काहे नहीं पहर लेतीं। फिर कोउ कछू कह सकत। हमारौ मौं तो ऊजरौ रैहे।''[2]

इसी प्रकार 'कस्तूरी कुण्डल बसै' उपन्यास में मैत्रेयी की माँ और उसकी भाभी में भी नहीं बनती। क्योंकि कस्तूरी की भाभी चाहती है कि कस्तूरी का विवाह समय से हो जाए पर कस्तूरी के विवाह के लिए न मानने पर ननद–भाभी में विवाद हो जाता है। उनके विवाद का एक उदाहरण इस प्रकार है भाभी– ''लाली, किताबों में क्या पढ़ती है? उनमें यही लिखा है कि जिन्दगी अनब्याहे ही काट दो और भारी सिल की तरह भइया की छाती पर लदी रहो। .... बेटी धान का पौधा होती है, समय से दूसरी जगह रोप देना ही अच्छा होता है। बखत निकलता जाता है पौधा मरने लगता

1. बेतवा बहती रही, पृ0 72
2. उपरिवत्, पृ0 110

है, जड़ें सूख जाती हैं। कड़ा पड़ता जाता है और उखाड़ कर फेंक देना पड़ता है।"[1]

कस्तूरी को भाभी की यह बातें सुनकर आश्चर्य होता है। कस्तूरी पढ़ी–लिखी है और भाभी अनपढ़। कस्तूरी जानती है कि भाभी को घर में रूपने के लिए सोने–चाँदी के गहनों की जरूरत है। अच्छे कपड़े चाहती है भाभी और कस्तूरी को इन सभी वस्तुओं की कोई आवश्यकता नहीं है। यही सब कह देने पर भाभी को क्रोध आ जाता है और वह कस्तूरी से कठोर वचन कहती है– "कैसा गाँव है यह। यहाँ की लड़कियाँ यह नहीं जानती कि जवानी में औरत को रोटी कपड़ा वही देता है, जो उसके संग सोए बैठे। अपना बच्चा पैदा करे। इस घर में बहन का इरादा भइया के संग सोने का हो गया होगा।"[2]

(च) सास - बहू :

मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य में सास–बहू के सम्बन्धों पर विशेष प्रकाश डाला गया है। परिस्थिति के अनुसार कहीं बहू–सास की आज्ञाकारिणी है, तो कहीं विरोध भी व्यक्त करती है। प्राचीन भारतीय संस्कृति–जन्य सम्बन्धों की मधुरता आपके कथा–साहित्य में अधिकांश रूप में देखने को मिलती है, किन्तु पाश्चात्य सभ्यता एवं वैज्ञानिक प्रभाव से सास–बहू के सम्बन्धों में कटुता का प्रादुर्भाव भी देखा जाता है। सास–बहू के मधुर एवं कलहपूर्ण दोनों ही प्रकार के सम्बन्धों की चर्चा मैत्रेयी के कथा–साहित्य में देखने को मिलती है।

तनावपूर्ण सम्बन्ध –

'अगनपाखी' उपन्यास में 'भुवन' की सास व भुवन में तनावपूर्ण सम्बन्ध बना रहता है। भुवन का पति पागल है जो आगरा के एक अस्पताल में भर्ती है। भुवन की सास चाहती है कि अपने पति की अनुपस्थिति में भुवन न कोई श्रृंगार करे, न ही प्रसन्न रहे क्योंकि उसका पति ही जब उसके पास नहीं है तो इन सभी चीजों की क्या

---

1. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 16
2. उपरिवत्, पृ0 16

आवश्यकता है। इस प्रकरण पर जब वह भुवन को गालियां देती है तो भुवन चन्दर को बताती है– ''रंडी, वेसा किस यार को नहा–धोकर दिखाएगी? खसम को काले कोशों फेंक आयी, किस यार को रिझाएगी? नये कपड़े नहीं पहन सकती। तेल डालकर चोटी नहीं गूंथ सकती। बालों की लटें बन गयी हैं। सास गिद्ध की तरह तीगती रहती है। मौका मिलते ही झपट्टा मारती है।''[1]

'झूलानट' उपन्यास में शीलो और उसकी सास में कभी बहुत ही स्नेह बढ़ जाता है तो कभी अत्यधिक तनाव। सास घर में अपना वर्चस्व चाहती है तो शीलो अपना। इन दोनों के अधिकारों के संघर्ष के कारण घर में नित्यप्रति क्लेश होता रहता है। शीलो और उसकी सास के मध्य विवादपूर्ण वार्तालाप का एक उदाहरण– शीलो– ''जब देखो डुकरों कांटों के झाड़ पर चढ़ी रहती है। दे अबकी बेर गाली?'' सास– हाँ हाँ, तेरे बाप की धौंस में रहूँ और घी गुड़ की बातें करू ठगिनी। जगाए देती हूँ खसम को, बैरी पूत नींद सुख ले रहा है और यह बाघिन छोड़ राखी है यहाँ।[2]

'इदन्नमम' उपन्यास में सास–बहू के दो प्रसंग आते हैं, एक बऊ और उनकी बहू प्रेम का व दूसरा कुसुमा व उसकी सास का। दोनों ही जगह सम्बन्ध तनावपूर्ण रहते हैं। बऊ अपनी बहू प्रेम के चरित्र के कारण उससे नाराज रहती है। बऊ के पुत्र महेन्दर की मृत्यु के उपरान्त प्रेम अपने रिश्ते के जीजा रतन सिंह के साथ घर छोड़कर चली जाती है और जमीन के लिए मुकदमा दायर कर देती है। बऊ से जब कोई बहू के विषय में पूछता है तो वह नफरत से कहती है– ''बिचारी लगती है तुम्हें वो हत्यारी।''[3] 'जायदाद लैकें खसम कर गयी। अब हिया पिराने लगा। हेज दिखा रही है। याद आने लगी मंदा। काहे को याद आने लगी। हर साल तो जन रही है। लला–बाइयन के का टोटे हैं वाके लानें।'[4]

---

1. अगनपाखी, पृ0 136
2. झूलानट, पृ0 8–9
3. इदन्नमम, पृ0112
4. उपरिवत्, पृ0 113

यशपाल द्वारा त्याग दी गयी कुसुमा रिश्ते के ससुर से प्रेम करने लगती है और उसे गर्भ ठहर जाता है। इससे परिवार में कलह का माहौल बन जाता है, कुछ समय उपरान्त कुसुमा एक पुत्र को जन्म देती है। घर में जब बँटवारा की बात होती है तो कुसुमा व उसकी सास में झगड़ा हो जाता है।

कुसुमा – दिलिद्दरों से बाँट–बटाई। है न मखौल की बात।

सास – कहना, यह बात फिर से चलाना अबकी बेर जुबान? चली आयी हिस्सेदारिन की।

कुसुमा – अब क्या कहें बड़ी–बूढ़ी से?

सास – कीरा परेंगे तेरे, परलोक बिगरेगा। रंडी, जे जनम तो गया ही मुँह मारते अगला भी गाड़ दिया पाप में।[1]

कुसुमा समाज व परिवार के लांछनों अपमानों को सहते हुए भी जीना चाहती है दाऊ जू के लिए तथा अपने पुत्र के लिए। जिस घर में वह रहती है उसी में उसका पति भी रहता है दूसरी पत्नी के साथ। फिर भी वह हिम्मत से कार्य लेती है। सास द्वारा सम्बन्धों के विषय में उपहास करने पर वह सास को खरी–खोटी सुनाने से नहीं चूकती। वह सास को सुनाते हुए कहती है– "अंधेर पीते रहे तुम लोग। खाक है बूढ़ेपन पर। उस दिन से कोई सम्बन्ध नहीं, कोई नाता नहीं रहा हमारा, जो ब्याह कर लाया था, उससे ही कोई ताल्लुक नहीं तो इस घर में कौन हमारा ससुर और कौन जेठ। ..... उमर के नाते अदब कर रहे हैं तुम हमारी सास होने का भरम न रखना।[2]

'विजन' उपन्यास में आभा और उसकी सास में मधुर सम्बन्ध नहीं बन पाता। शादी के दो दिन बाद ही आभा अपनी शिक्षा के कारण अपने पिता के घर जाने की बात कहती है जो सास को बिल्कुल अच्छी नहीं लगती। बहुत रोकने के बावजूद आभा अपने मायके चली जाती है। जिससे सास को अपमान का अनुभव होता है। वह

1. इदन्नमम, पृ0145
2. उपरिवत्, पृ0 146

क्रोध के कारण कहती है– "देव पितरों को अंगूठा दिखाकर गयी है, चूल्हे में जाये ऐसी डाक्टरी। सब कुनवे पर देवताओं का कोप पड़ेगा। असगुन खाली नहीं जाते।"[1]

'चाक' उपन्यास में रेशम और उसकी सास का सम्बन्ध बहुत ही कटुतापूर्ण है। रेशम पति की मृत्यु के बाद किसी अन्य व्यक्ति का गर्भधारण करके बिना किसी लज्जा के घर में रहती है व किसी की परवाह नहीं करती है। इसी बात को लेकर रेशम और उसकी सास में तकरार होती है। सास कहती है कि रेशम इस बच्चे को खत्म कर दे, पर रेशम नहीं मानती। वह इस बच्चे को जन्म देना चाहती है। जेठ के साथ बछिया की बात से भी रेशम इन्कार कर देती है, पर सास के नित्य नये विचारों से तंग आकर रेशम सास से कहती है– "मइयो तुम मेरे पीछे क्यों पड़ गयी हो। मेरे चाल–चलन की झंडी फहराना जरूरी है? बिरथा ही छानबीन करने में लगी हो। आज को तुम्हारा बेटा मेरी जगह होता तो पूछती कि तू किसके साथ सोया था? अब उसकी बाँह गह ले। मेरे मरे पीछे तेरहीं तक का सबर न करता और ले आता दूसरी। तुम खुश हो रही होतीं कि पूत की उजड़ी जिन्दगी बस गई। पर मेरा फजीता करने पर तुली हो।"[2]

बहू की कठोर बातें सुनकर रेशम की सास का सब्र जवाब दे जाता है तो वह भी रेशम को उसकी बात का कटु उत्तर देते हुए कहती है "मेरा बेटा पेट टाँग कर न आ गया होता। मर्दजात दस गली नाँखे तब भी नहीं जान सकता कोई। तू लुगाई की जात होकर मर्दों जैसा हौसला जुटा रही है।"[3]

यह सब सुनने पर भी रेशम पेट में पलने वाले बच्चे को पाप नहीं मानती है। वह सास को समझाते हुए कहती है। 'मैं जो पुन्न कर रही हूँ अम्मा, उसे पाप न कहो। बिना बाप के बालक को भगवान पाप मानता तो कुँआरी विधवा की कोख सुखा डालता।'[4]

---

1. विजन, पृ0105
2. चाक, पृ0 19
3. उपरिवत्, पृ0 19
4. उपरिवत्, पृ019–20

मधुर सम्बन्ध –

जहाँ एक ओर कटुतापूर्ण सम्बन्ध हैं, तो दूसरी ओर अत्यन्त आत्मीयता पूर्ण सम्बन्ध भी हैं। जहाँ झूलानट उपन्यास में शीलो और उसकी सास में झगड़ा–झंझट चलता रहता है तो दूसरी ओर अत्यन्त स्नेह भाव। जब शीलो का विवाह होकर आता है तो सास से उसका बहुत मधुर सम्बन्ध रहता है। शीलो की सास शीलो को बहुत प्रेम करती है। वह इन शब्दों से स्पष्ट होता है ''सास बहुएं एक थाली में खाना खातीं। फिर तृप्ति भरी डकार लेतीं अम्मा। कैसे निश्चिंतता भरे दिन थे। 'मोरे ठाकुर, मेहर तुम्हारी, कहकर अम्मा महादेव नहीं, शीलो भाभी का गुणगान करतीं।'[1]

शीलो भी सास के रूठ जाने पर मनाने का प्रयत्न करती व तब तक भोजन नहीं करती जब तक सास को मना नहीं लेती। शीलो की सास के प्रति आत्मीयता इन शब्दों से स्पष्ट होती है– ''अम्मा जी, एक बार तुम्हारा बेटा न खाए, हमें मलाल नहीं, पर हमारी बूढ़ी–पुरिखा भूखी–प्यासी रहें। हाय सच्ची, नरक में ठौर न मिलेगा। लो, तुम नहीं खातीं तो कौल ले लो हमसे, शीलो गिरास तोड़ने वाली नहीं।'[2]

'चाक' उपन्यास में जब रेशम अपनी जिद पर अड़ी रहती है तब सास ही उसके आगे झुक जाती है। रेशम अपनी बहिन सारंग को सास की दयनीय स्थिति के विषय में बताते हुए कहती है– ''डुकरिया, बिचारी की क्या खता? वह कौन सी अपने मन से ऐसा अजस करती है। एक दिना मुझे छाती से चिपका कर हूकरी देकर रोने लगी और सुबक–सुबक कर बोली– रेशमिया मेरा बस चले तो मैं तुझे अपनी पलकों में छिपा लूँ, पर मर्दों को क्या जवाब दूँगी री ऽ ऽ ऽ ...... ।'[3]

(छ) परित्यक्ता :

समाज को व्यवस्था देने में अथवा समाज के सुचारू संचालन में जितना पुरुष का हाथ है, उतना ही नारी का भी है। दोनों मिलकर सामाजिक संगठन को

1. झूलानट, पृ0 26
2. उपरिवत्, पृ0 96
3. चाक, पृ0 21

सुदृढ़ बनाते हैं। किन्तु पुरुष प्रधान समाज में पुरुष का वर्चस्व एवं अहं उसे स्वेच्छाचारिता के लिए विवश कर देता है। पुरुष नारी के अधिकारों का हनन करता है तथा अपनी अधिकार भावना को उस पर अनावश्यक रूप से थोपता है। यदि नारी किंचित मात्र भी अपनी जागरूकता का प्रदर्शन करके अपने अधिकारों की मांग करती है तो उसे इस पुरुष प्रधान समाज में प्रताड़ित किया जाता है और उसे तिरष्कृत कर दिया जाता है। पति अपने दाम्पत्य सम्बन्धों से विमुक्त कर जब पत्नी को त्याग देता है, तब वह 'परित्यक्ता' कहलाती है। मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य में परित्यक्ता नारियों का भी वर्णन मिलता है।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' उपन्यास में परित्याग की गई नर्मदा कस्तूरी के साथ रहने लगती है। उम्र के बहकावे में आकर वह चरित्रहीनता का लांछन सहती है। मैत्रेयी ने लिखा है– "वह परित्याग की हुई लड़की उस गाँव के ग्राम सेवक से घनिष्ठता रखने लगी। महिला मंगल के किसी पुरुष का समागम कस्तूरी देवी के हिसाब से अपराध था, बदनीयती थी, लेकिन यहाँ तो हाथ में हाथ लेने–देने का दृश्य था, रात के समय एक खटिया पर शयन।[1] कस्तूरी इसे बर्दाश्त नहीं करती और नर्मदा को अपमानित करके महिला मंगल व अपने संरक्षण से निकाल देती है।

'इदन्नमम' उपन्यास में यशपाल द्वारा त्याग दी गई कुसुमा समाज से संघर्ष करते हुए भी अपनी हार नहीं मानती। वह जो भी कार्य करती है, उससे इस पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था पर करारा प्रहार होता है। कुसुमा नहीं मानती कि पति के त्याग देने के पश्चात् भी पति के परिवार से वही नाता रहेगा जो पति के साथ रहने पर था। इन्हीं सब बातों का बहिष्कार करते हुए वह परिवार के ससुर से, जो विधुर थे, अपना प्रेम सम्बन्ध स्थापित कर लेती है।

कुसुमा सुन्दर व स्वस्थ्य है। सभी उससे प्रसन्न रहते हैं व उसके कार्यों की प्रशंसा करते हैं। बऊ उसके दुःख से दुःखी होती हैं व पूछती हैं "देवगढ़वारी,

---

1. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 59

कद–काठी से लम्बी, इकहरे बदन की बहू। गेहुंआ रंगत है, काली साँवरी भी नहीं। नैन नकस भी बुरे नहीं बताता कोई। फिर गोविन्द सिंह के मोड़ा यशपाल के मन काहे नहीं भरी? काहे को त्यागा कुसुमा को।''[1]

कुसुमा के चचिया ससुर (दादा) भी उसके दुःख–दर्द को समझते हैं व चाहते हैं कि कुसुमा का साथ दे सकें। इसीलिए जब कुसुमा को मंदाकिनी और बऊ के साथ गढ़ी पर जाना पड़ता है तो वह कह उठते हैं– ''यहीं कौन से सुख साके धरे हैं माधोपुरा वाली बहू को। सो डांग–जंगल में जाने से अनखायेगी कुसुमा।''[2]

दादा को कुसुमा के भविष्य की बहुत चिन्ता रहती है। वह मानते हैं कि वह कुसुमा के लिए कोई ऐसा कार्य नहीं कर पा रहे हैं, जिससे उसका भविष्य सुरक्षित हो सके। दादा अपनी पत्नी से इसी विषय में कहते हैं– ''देवगढ़ वारी कुसुमा हमारे करेजा में फँसी फाँस की तरह सालती है। उसे ब्याह कर लाये थे हम। कोई फरज बनता है हमारा। हमारे न्याय को ललकारती है, चुनौती देती है कि दादा, तुम अधरमी ही हो, भले पंचायत में न्याय करो, निरदोस दीन–गरीबों की ओर से केस लड़ो, पर है तो चिराग तले अंधेरा।''[3] दादा जानते हैं कि वह कुछ नहीं कर सकते इसीलिए लाचार हैं। कहीं पारिवारिक दबाव है तो कहीं अपने खून से न लड़ पाने की लाचारी। फिर भी वह कुसुमा का अन्त तक साथ देते हैं व दाऊ जू वाला हिस्सा कुसुमा को दिलाकर ही मानते हैं।

कुसुमा अपने और दाऊ जू के सम्बन्ध पर शर्मिन्दा नहीं होती व उन दिनों को याद करती है जो उसने दाऊ जू के साथ गढ़ी में बिताए थे, जहाँ पर उनका प्रेम पनपा था। वह उन सभी स्मृतियों में डूबकर प्रसन्नता का अनुभव करती है तथा अपनी जिन्दगी को धन्य मानते हुए मंदाकिनी से कहती है– ''बिन्नू याद हैं वे दिन? गढ़ी में बिताये दिन? जिन्दगानी की धरोहर हो गये। हते तो गिनती के पल–छिन, पर याद

1. इदन्नमम, पृ0 68
2. उपरिवत्, पृ0 68
3. उपरिवत्, पृ0 68

करते हैं तो पूरा एक जीवन लगता है सम्पूरन जिन्दगानी।"[1]

'विजन' उपन्यास में आभा का पति आभा का त्याग कर देता है। आभा समाज से संघर्ष करते हुए अपने माता–पिता के पास आकर रहने लगती है, पर उसे लगता है कि उसके कारण उसके माता–पिता का भी जीवन तनावपूर्ण होता जा रहा है तथा समाज में उन्हें नीचा देखना पड़ रहा है। आभा घर छोड़ कर छात्रावास में रहने लगती है। कभी आभा पर समाज द्वारा चरित्रहीनता का आरोप लगाया जाता है, तो कभी परम्पराओं को तोड़ने का। आभा फिर भी संघर्ष करती है और हार नहीं मानती। अपने अच्छे कार्यों द्वारा वह अपने नजदीकी लोगों का मार्ग प्रशस्त करती है।

'ललमनियां' कहानी संग्रह की कहानी 'ललमनियां' की नायिका मौहरो का पति शादी के कुछ दिन बाद मौहरो को छोड़कर चला जाता है और फिर लौटकर नहीं आता। मौहरो एक बच्ची की माँ भी है व मेहनत–मजदूरी करके अपना व अपनी पुत्री का पालन कर लेती है। उसके जीवन में उस समय अचानक एक नया मोड़ आता है जब उसका पति जोगेश उसके सामने ही दूल्हा बनकर दूसरा विवाह करने आ जाता है।[2]

इस प्रकार मैत्रेयी ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में परित्यक्ता की व्यथापूर्ण जिन्दगी का खुलासा किया है तथा समाज पर लगे कलंक एवं पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था के प्रदूषण को उजागर किया है।

(ज) विधवा :

भारतीय समाज में नारी के विभिन्न रूप दृष्टिगत होते हैं, उनमें नारी का एक रूप विधवा भी है, जो अपने जीवन के कर्णधार, संरक्षक तथा पोषक पति से रहित दुःखमय जीवन व्यतीत करने को विवश हो जाती है। मैत्रेयी पुष्पा ने उपन्यासों एवं कहानियों में ऐसी विधवाओं का चित्रांकन किया है, जो परिस्थितियों से पराजित नहीं

---

1. इदन्नमम, पृ0 250
2. ललमनियां, कहानी–ललमनियां, पृ0 250

होतीं, समस्याओं से पलायन नहीं करतीं, वरन् सम्पूर्ण साहस एवं चारित्रिक दृढ़ता के साथ समस्याओं का सामना करती हैं। विधवाओं के चित्रण में मैत्रेयी ने नारी हृदय की वेवशी को परखा है तथा प्राचीन भारतीय समाज में कलंक मानी जाने वाली नारी की पक्षधरता स्वीकार करते हुए उनके साथ सहानुभूति प्रकट की है।

'बेतवा बहती रही' उपन्यास में उर्वशी विवाह के कुछ समय पश्चात् ही वैधव्य को प्राप्त हो जाती है। उर्वशी का नई उम्र में वैधव्य, नारी जीवन का असीम एवं असह्य संकट तो होता ही है, साथ ही माता–पिता को, जान–पहचान वालों को, उर्वशी की सखी मीरा को भी संकट में डाल देता है। उर्वशी मायके आती है तो उसका विधवा रूप देखकर हृदय द्रवित हो जाता है 'उर्वशी गिरती–कराहती उसके समक्ष लाकर खड़ी कर दी – सफेद सूती धोती–ब्लाउच, नंगे–उजाड़ हाथ, बिछिया सुती पाँवों की नंगी उंगलियाँ, उसके वैधव्य पर बिसूरती हुई।'[1]

मीरा को अपनी प्रिय सखी उर्वशी के विधवा होने का बहुत ही दुःख रहता है। उसे उर्वशी के भाग्य पर रोना आता है किन्तु जब उर्वशी को अपने घर पर देखती है, अपने पिता की पत्नी के रूप में तो प्रेम को एक तरफ रखते हुए कहती है ''उर्वशी, तुम्हें विधवा देखा था तो कष्ट सहने की क्षमता थी पर आज ....।''[2] मीरा उर्वशी को अपनी माँ के रूप में स्वीकार करे तो कैसे, उसे अपार कष्ट होता है।

मीरा के बड़े भाई की पत्नी के माता–पिता ने उसका छोटी अवस्था में विवाह कर दिया था और विदा का महूरत कुछ वर्ष बाद का निकला था किन्तु वह पहली बार विवाह में आती है ससुराल, और दूसरी बार आती है पति की मृत्यु पर। वह अबोध बालिका सी देखती रहती है सबको, पर उसे विश्वास नहीं होता कि वह विधवा हो गयी है। मैत्रेयी ने उसके वैधव्य का बड़ा ही हृदय–विदारक वर्णन किया है। चुपचाप बैठी थी वह। न घूंघट न आड़। यह भी नहीं जानती थी कि पति के निधन पर कैसे रोये। चूड़ी तोड़ने को कहा तो दोनों हाथ आगे कर दिये .... काँच की चूड़ियाँ

1. बेतवा बहती रही, पृ0 64
2. उपरिवत्, पृ0 123

छन्न–छन्न टूटती रहीं। बहू देखती रही .... निर्निमेष। बड़ी–बड़ी आँखों की सीपियाँ घनी बरौनियों के बीच भर आयीं। पॉव की उंगलियों पर किसी का हाथ गया। ... बिछिया उतरते ही दहाड़ मारकर रो उठी।'[1]

'कस्तूरी कुण्डल बसै' उपन्यास में मैत्रेयी ने अपनी माँ के विवाह से इंकार करने की वजह मानी है वैधव्य। कस्तूरी अपनी माँ से कहती है कि उसका वर बूढ़ा है, वह मर जायेगा और बहू विधवा हो जायेगी। कस्तूरी जो कहती है वैसा ही होता है कि मोतीझला की बीमारी में कस्तूरी के पति हीरालाल का निधन हो जाता है और कस्तूरी विवाह के मात्र कुछ साल बाद ही विधवा हो जाती है। जब कस्तूरी की माँ को यह ज्ञात होता है तो बहुत दुःखी होती है और कस्तूरी से कहती है– "मुझे मुझ तक छोड़ लाली, विधवा जीवन में जीवन जैसा कुछ नहीं होता। उजड़े ठूँठ पेड़ों के झुंड को कोई बाग मानेगा? जिन्दगी भर जिस कुदरती चक्र को त्यागने योग्य मानती रही, मुझे क्या पता था कि वही सब तेरे रूप में मुझसे लिपटकर पिछला हिसाब माँगेगा।'[2] कस्तूरी चरित्रवान, पुरुष सत्तात्मक समाज पर करारा प्रहार करने वाली परिश्रमशील महिला है। वह किसी का सहारा नहीं लेती और स्वयं घर संभालते हुए पढ़ती है और ग्रामसेविका की नौकरी करती है।

जहाँ एक ओर मैत्रेयी ने अपने कथा–साहित्य में ऐसी विधवाओं का उल्लेख किया है, जो अपने विधवा जीवन को सहजता से स्वीकार कर परपुरुष की तरफ नजर उठाकर भी नहीं देखतीं और सारा जीवन अपनी समस्त भावनाओं को मारकर जीती हैं जिनमें 'कस्तूरी कुण्डल बसै' की कस्तूरी, 'इदन्नमम' की बऊ और कुसुमा, तो दूसरी ओर विधवा होने के बाद अपनी शारीरिक भूख व भावनाओं का दमन न कर अपना पथ चुनकर उस पर चली जाती हैं, ऐसी विधवाओं का भी वर्णन किया है।

'इदन्नमम' उपन्यास में बऊ बालविधवा हैं और अपने सतीत्व का पालन करती रही हैं, यही अपेक्षा वह अपनी पुत्र वधू प्रेम से रखती हैं। पर 'प्रेम' उनके कदमों

---

1. बेतवा बहती रही, पृ0 137
2. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 26

पर न चल कर स्वयं का संसार चुनकर घर छोड़कर चली जाती है। बऊ को यह सब अच्छा नहीं लगता और वह जीवन की सच्चाई बताते हुए कहती हैं मंदाकिनी से ''रांड विधवा तो हम भी हुए थे बेटा। और चढ़ती उमर में हुए थे। जनी के लाने आसनाई करने वालों की कमी नहीं होती। पर हम जानते थे ऊँच–नीच। बात को परखने की बुद्धि नहीं खोई थी हमने। जाहिर थी यह बात कि उन दुष्टों की आँख हमारी देह और जायदाद पर थी।[1]

मंदाकिनी प्रेम की पुत्री है और वह जानती है कि बऊ की अपेक्षाओं पर खरा न उतरना ही उसकी माँ के विरोध का कारण बना। मंदाकिनी समझदार और योग्य युवती है, बात को सोचने–समझने में सक्षम। अपनी माँ का सहयोग करते हुए वह इस समाज की पुरुषवादी व्यवस्था व बऊ के विचारों का विरोध करती है। माँ का घर छोड़कर भाग जाने को भी वह अनुचित नहीं मानती तथा बऊ के कटु व्यंग्यों और समाज के सारे विरोध सहने पर वह सोचती है ''क्या पता? बऊ को यही दुःख हो कि वे विधवापन के लिए बनाये गये निषेधों को सहती–झेलती रहीं, अम्मा ने जिन्हें नकार दिया। जिन दैहिक सुखों को बऊ ने इच्छा या अनिच्छा से कुचला, उन्हीं को अम्मा ने अनिवार्य समझ लिया। उनका गम यह भी हो सकता है कि विधवापन के चलते सामाजिक विधान की भागीदार वे ही अकेली क्यों हुईं? यह दंड उनकी बहू ने क्यों नहीं भोगा? हवेली की मर्यादा की रक्षा में होम होने की सजा केवल उनके लिए और जायदाद का बंटवारा बराबर–बराबर, यह कहाँ का न्याय है?[2] एक ही परिवार की दो विधवाओं का विपरीतात्मक वर्णन मैत्रेयी ने बहुत ही स्पष्टता के साथ किया है।

कुसुमा भाभी परित्यक्ता थीं पर दाऊ को अपना पति मान लिया था और दाऊ की मृत्यु के बाद वैधव्य का व्रत धारण करती हैं। मंदाकिनी कुसुमा भाभी से बहुत स्नेह करती है। भाभी की जीवन–व्यथा को मंदाकिनी से ज्यादा कौन जान सकता है? मंदाकिनी उनके सौन्दर्य और वैधव्य की तुलना करते हुए सोचती है ''भाभी की सुतवाँ

---

1. इदन्नमम, पृ0 267
2. उपरिवत्, पृ0 268

नाक और ठोड़ी पर गुदना की एक बिन्दी, नाक में लौंग, पतले होंठ। कहाँ से उतरी थीं भाभी? कि तकदीर टेढ़ी थी उनकी, जो हमेशा त्याज्य रहीं और अब विधवा का रूप।'[1]

'चाक' उपन्यास की रेशम समाज की रूढ़ियों और परम्पराओं को तोड़ने वाली नारी, समाज को दिखाने की हिम्मत रखती है कि एक स्त्री विधवा होकर भी गर्भ धारण कर सकती है। सास के लाख प्रयास करने पर भी रेशम पेट में पल रहे बच्चे को समाप्त नहीं करती व परिवार के विरोधी हो जाने पर कहती है– ''जमाने के लिए, रीति–रिवाजों के लिए। विधवा सिर्फ विधवा होती है। वह औरत नहीं होती फिर।'[2] परन्तु रेशम को अपनी इसी जिद के कारण दुःखद अंत का सामना करना पड़ता है।

मैत्रेयी ने वैधव्य के पश्चात् पलायन करने वाली नारियों का वर्णन अधिक किया है, जोकि परिस्थितियों का सामना करने की हिम्मत तो रखती हैं किन्तु अपने जीवन की लालसा को भी नहीं मार पातीं। तभी तो 'अगनपाखी' उपन्यास में विधवा होकर भुवन पति के साथ सती होने की बात तो करती है पर मंदिर जाकर अपने प्रेमी के साथ भाग जाती है।[3]

मैत्रेयी के कथा–साहित्य में बाल–विधवाओं का वर्णन भी मिलता है जोकि कम उम्र में, विवाह हो जाने के एक या दो साल बाद ही विधवा हो जाती हैं। उनका सारा जीवन कैसे कटे, इस प्रश्न का उत्तर तो नहीं मिलता, क्योंकि आपके साहित्य में कहीं भी पुनर्विवाह का वर्णन नहीं मिलता, पर असमय विधवा हो जाने के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। 'काहे को रोऊती ठकुरायन? करम की हेटी हती अभागिन सो कछू देखबौ नहीं बदौ हतौ, इतेक लम्बी जिन्दगानी फिर अपनी जात–बिरादरी में दूसरे ब्याह की रसम–रीत ....?'[4] जो लुटना था सो लुट गया। विवाह योग्य आयु थी पर

---

1. इदन्नमम, पृ0 250
2. चाक, पृ0 18
3. अगनपाखी, पृ0 171
4. ललमनियां, पगला गई है भगवती, पृ0 97

मिला वैधव्य का अथाह दुःख।[1]

विधवा होने के बाद औरत का जीवन ही बदल जाता है। उसका रहन–सहन, पहनना–ओढ़ना, बातचीत सबमें परिवर्तन हो ऐसा रूढ़ियों का मानना है। इसी को समाज स्वीकार करता है, पर मैत्रेयी ने इन सभी बातों का खण्डन किया है। वह औरत को औरत के रूप में देखती हैं। क्या विधवा औरत की इच्छाएं मर जाती हैं, नहीं, मारनी पड़ती हैं समाज व परिवार के भय के कारण, तभी तो मैत्रेयी ने लिखा है 'चूड़ी बिछिया और रंग–बिरंगे कपड़ों को पाप बताकर विधवा औरत की जिन्दगी पर होने वाले खर्च और चढ़ने वाले रूप को खारिज करने लगे वो घर के लोग। रंगीन सपने मत देखो, दिल मोहने वाली बातें मत सुनो, पति की दुःख की कटारी से सारे दुःखों के तार काट डालो।'[2]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा–साहित्य में पारिवारिक सम्बन्धों की संवेदनात्मक विवेचना प्रस्तुत की है। पारिवारिक सम्बन्धों की द्विधा प्रकृति को अनुभव के आधार पर चित्रित करते हुए सजीवता समाहित करने में लेखिका को महारत हासिल है। साहित्यकार वस्तुतः सामाजिक प्राणी तो होता ही है, समाज का प्रतिनिधि व मुख्य सचेतक भी होता है। सामाजिक प्रतिनिधित्व करते हुए मैत्रेयी ने माता, पिता, भाई, बहन, पति, पत्नी, देवरानी, जेठानी, ननद, भाभी आदि सम्बन्धों की गहराई से विवेचना की है तथा उनके बीच मधुरता एवं कटुता को भी स्पष्ट किया है।

---

1. चिह्नार, कहानी बहेलिया, पृ0 37
2. गोमा हँसती है, उज्रदारी, पृ0 98

पंचम अध्याय

मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नायक व नायिका का स्वरूप

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों एवं कहानियों में चारित्रिक दृष्टि से नायिकाओं का प्राधान्य है। नारी जीवन की सूक्ष्म दृष्टि को कुशलता से उकेरने में लेखिका को महारत हासिल है। नारी उत्थान, नारी जागरण तथा नारी विमर्श को मुख्य ध्येय बनाकर हिन्दी साहित्य सृजन में अनवरत् सचेष्ट रहने वाली मैत्रेयी पुष्पा महिला कलाकारों में अग्रगण्य हैं। उनके कथा साहित्य में नायक, नायक की भूमिका तो प्रस्तुत करते हैं किन्तु वे सर्वत्र नायिकाओं के संचालन में सहयोगी बनकर रहते हैं। इनके अधिकांश नायक सामान्यतः मध्यम वर्गीय परिवारों से सम्बद्ध हैं तथा वे उन प्राचीन परंपराओं एवं रूढ़ियों का सक्रिय विरोध भी करते हैं जो जीवन के प्रतिकूल पड़ती हैं। इनके नायक सामाजिक विसंगतियों, विद्रूपताओं, कुंठाओं एवं दमित वासनाओं से पाठक का परिचय तो कराते ही हैं, नारी–जागरण में उत्प्रेरक की भूमिका भी निभाते हैं।

(क) उपन्यासों में नायक का स्वरूप :

बेतवा बहती रही – उदय

मैत्रेयी पुष्पा के 'बेतवा बहती रही' उपन्यास की नायिका उर्वशी को दृष्टिगत रखकर विवेचन करें, तो उपन्यास का नायक 'सर्वदमन' उचित ठहरता है। किन्तु सम्पूर्ण औपन्यासिक घटना संयोजन एवं कथ्य का विश्लेषण करने पर उपन्यास का नायक 'उदय' को स्वीकार करने में कोई आपत्ति संभावित नहीं है। उदय–मीरा का भाई, सभ्य, सुशिक्षित एवं कर्मठ नवयुवक है। वह उर्वशी के प्रति अपार श्रद्धावान, बड़ों के प्रति अतिशय प्रणम्य, सतर्क एवं क्रियाशील पात्र है। लेखिका ने उपन्यास के मुख्य पात्रों में परिगणित करते हुए उदय की संघर्ष प्रियता की पुष्टि निम्न पंक्तियों में की है। "उर्वशी, दाऊ और उदय इस क्षयग्रस्त समाज में निरन्तर ढहने को अभिशप्त रहे। परिवेशगंत दबावों के छटपटाते सप्राण, सदेह पुतले नहीं तो और क्या थे?"[1] इन पंक्तियों से

---

1. बेतवा बहती रही की भूमिका : प्रगतिवादी समाज से गुजरते हुए, पृ0 6

आशय है कि उदय इस पतनोन्मुख समाज की असह्य यातनाओं को अनवरत् झेलते रहे तथा परिस्थितिगत यंत्रणाओं के प्रखर प्रहारों का मुखर और प्रबल प्रतिरोध करते रहे।

उदय का हृदय संवेदनायुक्त तथा सहानुभूति से परिपूर्ण था। सर्वदमन तथा वैरागी की मोटर साइकिल ट्रैक्टर से दुर्घटनाग्रस्त हो गई। सर्वदमन की दुर्घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई। वैरागी घायल अवस्था में मेडिकल कालेज में भर्ती कराये गये। मीरा और विजय वैरागी को देखने जाते हैं। उदय पहले से ही वहाँ उपस्थित है– 'अस्पताल और बस स्टैण्ड के बीच का रास्ता ...... लोग ही लोग। वहीं उदय दिखाई दिये थे। .... पलंग के पास उदय पहले से खड़े थे।'[1]

उदय के स्वभाव की मधुर गंध सम्पर्कित लोगों को बरबस ही आकर्षित कर लेती है। उदय ग्वालियर से लौटते हैं। बरजोर सिंह से प्रताड़ित शेरा की बहू को सान्त्वना देने जाती मीरा उदय को सामने आता देखकर भाव विभोर हो जाती है। 'भइया ऽ ऽ .... देखते ही उदय से लिपटकर सिसकने लगी। रात का खिसियानपट था, जो उदय को देखते ही फूट पड़ा।'[2]

उदय के हृदय की पावनता, विशालता एवं विनम्रता प्रदर्शित है, उसके व्यवहार में। यदि वह एक ओर मीरा का माँ जाया भाई है, तो दूसरी ओर उसके मन और मस्तिष्क में उर्वशी की पावन प्रतिमा आराध्य देवी की तरह प्रतिष्ठित है। मीरा का कथन उदय के हृदय की स्थिति का सटीक रेखांकन करता है– 'उर्वशी, उदय भइया के लिए क्या है, यह तो वह भी नहीं जानती, पर जो कुछ है वह सामान्य से ऊपर उठकर – पावन .... पवित्र। सच्चे आराधक हैं वे उसके।'[3]

पिता बरजोर सिंह की वासनात्मक नियति को देखकर मीरा उदय के साथ उर्वशी को सिरसा भिजवा देती है। बरजोर सिंह को यह ना–गवार गुजरता है। दोनों में गाली–गलौज होने के बाद वाली स्थिति दृष्टव्य है– 'उदय की आँखें अंगारे सी

1. बेतवा बहती रही, पृ० 66
2. उपरिवत्, पृ० 77
3. उपरिवत्, पृ० 97

दहक उठीं। दोनों ओर से भीषण गोलाबारी का सा आदान–प्रदान .... रिश्ते–नाते, अदब–कायदे, व्यवहार–शिष्टाचार सब भस्म हो गये।'[1] यह कथन उदय की सत्य के पीछे अडिग रहने की क्रोध पूर्ण स्थिति को उजागर करता है।

उदय सत्य का आग्रही है। पिता के दुराचरण पर कुपित होकर कही–अनकही सब कहता है। अजीत सिंह के कुकृत्य से क्षुब्ध होकर वह ठान लेता है– 'गोली मार दूँगा, चाहे फाँसी चढ़ जाऊँ। अजीत जैसे राक्षण की शकल चन्दनपुर में दोबारा दिखे तो सही।'[2]

उदय अपनी सहृदयता एवं सौम्य स्वभाव से पीढ़ियों से चली आती खानदानी दुश्मनी को समाप्त कर चचेरी बुआ को मीरा की शादी में बुलाता है। वह अपनी ईमानदारी के कारण ग्राम प्रधान नहीं बनना चाहता। अन्त में उर्वशी के आग्रह पर अपने भाई विजय की विधवा के साथ विवाह करने की स्वीकृति देकर अपने महान औदार्य को प्रकट करता है। अतः कहा जा सकता है कि नायकत्व के गुणों से अभिषिक्त उदय उपन्यास 'बेतवा बहती रही' का सफल एवं सशक्त नायक है। वह साहसी है, उदार है, सहृदय है, न्याय का पक्षधर है, विनम्र है और है अपने संकल्प पर अडिग।

चाक – रंजीत

'चाक' उपन्यास समाज की पारम्परिक मान्यताओं को बदलने और तोड़ने के उतार–चढ़ावों की कथा को वर्तमान संदर्भों के साथ प्रस्तुत करने वाला मैत्रेयी पुष्पा का सामाजिक उपन्यास है। इसमें पिछड़े इलाके के अतरपुर गाँव के सारंग और रंजीत के पारस्परिक सम्बन्धों का बेवाक चित्रण किया गया है, उपन्यास का नायक है रंजीत। सारा घटनाक्रम रंजीत तथा सारंग के आसपास घूमता है। मुख्य कथा को विस्तार देने के लिए लेखिका ने कर्मवीर तथा रेशम और विसुनदेवा तथा गुलकंदी की कथा को सहायक कथा के रूप में चयन किया है। यह उपन्यास 'न राजनैतिक उपन्यास है, न समाजशास्त्रीय, मगर उस समाज की रोचक – या भयावह? कथा है जो इन दोनों से

1. बेतवा बहती रही, पृ0 102
2. उपरिवत्, पृ0 128

अछूती नहीं है।'[1] कथन का तात्पर्य यह है कि चाक उपन्यास का कथानक ब्रज प्रदेश की रोचक और भयावह स्थितियों का समवेत स्वरूप है, जिसमें अतरपुर गाँव के जाट किसानों के जातीय संघर्षों, रीति–रिवाजों, गीतों–उत्सवों, प्यार–ईष्याओं तथा कर्मकाण्डी–अंधविश्वासों को ईमानदारी से उकेरा गया है।

उपन्यास का नायक रंजीत सम्पूर्ण मानवीय गुणों और अवगुणों की प्रतिमूर्ति है। मैत्रेयी ने उसकी मानसिक उलझनों एवं परवशताओं का तथ्यात्मक चित्रण किया है। सारंग की मौसेरी बहन रेशम के प्रति रंजीत के हृदय में निहित ईर्ष्या को व्यक्त करता है, यह कथन– 'तुम तो रेशम की ऐसे फिकर करती हो, जैसे वह दूध–पीती बच्ची हो। जो औरत बिना आदमी के बच्चा पैदा करने का दमखम रखती है, वह क्या–क्या नहीं कर सकती? तुम हो कि उसकी चिंता में घुली जा रही हो।'[2] यहाँ रंजीत के स्वभाव की कटुता का चित्रण किया गया है।

लेखिका ने रंजीत को नायक की भूमिका में प्रस्तुत करते हुए अन्याय के प्रति विरोध प्रदर्शन एवं साहसपूर्ण अपने मंतव्य को व्यक्त करने में समर्थ चित्रित किया है। रेशम को उसका देवर डोरिया आग में जिंदा जला देता है। इस घटना से रंजीत अधीर हो उठता है तथा अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करता हुआ कहता है– 'दादा मुझे सच पर विश्वास नहीं रहा। सचाई की शिनाख्त करने वाले लोग अब रहे ही नहीं। दिन दहाड़े एक औरत मार दी जाय और गाँव चुप बैठा रहे ! है न गजब?'[3]

इस कथन के माध्यम से लेखिका ने नायक की अपेक्षित अपूर्व साहसिकता एवं उसके विरोधी तेवर को उजागर करने का प्रयास किया है। सारंग और श्रीधर मास्टर के प्रेम सम्बन्धों से चिढ़कर थान सिंह के अन्तर्मन में अन्तर्विरोध उत्पन्न होता है। मनोहर उनकी प्रेम–चर्चा अफवाह की तरह जगह–जगह फैलाता है। इस प्रकार अपयश या बदनामी से तंग आकर रंजीत क्रोध से अभिभूत हो उठता है तथा सारंग की

---

1. फ्लेप पर अंकित
2. चाक, पृ0 25
3. उपरिवत्, पृ0 33

नारी–सुलभ संवेदना को ठुकराकर अपने व्यंग्य वचनों से उसके मर्म पर प्रतिघात करता हुआ कहता है– 'तुम सतमंती बनने का ढोंग कब तक करोगी आखिर? किस–किस को मूर्ख बनाओगी पूरे गाँव की आँखों में धूल झोंक दोगी? किसी को सपना नहीं आ रहा कि मास्टर हमारे यहाँ गुलछर्रे .... देखा होगा तभी न कह रहा होगा मनोहर कि लोग–बाग ससुराल में मेहमानी मार रहे हैं, और मास्टर जी यहाँ आसनाई ....।'[1] यह कथन रंजीत की स्वच्छ मानसिकता का प्रदर्शन तो करता ही है, साथ ही उसकी चारित्रिक निर्मल भावना का प्रत्यक्षीकरण भी करता है।

रंजीत की सूझ–बूझ अपूर्व निर्णायक क्षमता, बौद्धिक स्तर, कार्यकुशलता तथा विश्वसनीयता से प्रभावित होकर ग्राम प्रधान फतेहसिंह रंजीत को प्रधानी देकर उपकृत करना चाहते हैं। रंजीत की परिपक्वता निम्न पंक्तियों में स्पष्ट हैं– 'भइया, यह तो हम भी चाहते थे। क्योंकि आदमी को ज्ञान तो किताबों से मिल सकता है, पर व्यवहार की बात तो अनुभव से ही आयेगी। बिना अनुभव के कोरा ज्ञान लंगड़ा ही हुआ।'[2] यहाँ मैत्रेयी ने रंजीत के चरित्र को निखारते हुए नायकत्व की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है तथा व्यवहारिक कार्यकुशलता और अनुभव की गंभीरता भी अभिव्यंजित की है।

रंजीत के चरित्र में एक ओर ज्ञान की परिपक्वता उसे ग्राम प्रधान के योग्य घोषित करती है तो दूसरी ओर तत्कालीन सामंतवादी प्रवृत्ति उसको गम्भीरता को उजागर करती है। पूर्व प्रधान फतेहसिंह निम्न जातियों को हेय दृष्टि से देखते हैं किन्तु रंजीत आन्तरिक रूप से भाई–चारा बनाये रखता है। रंजीत पर फतेहसिंह एक ओर प्रभावी है तो दूसरी ओर सारंग भी उसकी हृदयस्थ भावना को बार–बार कुरेदती है। सारंग, रेशम और गुलकंदी के अनर्थ को लेकर रंजीत पर दोषारोपण करती है तब उसका हृदय द्रवित हो उठता है। वह कहता है– 'मैं क्या करूँ सारंग? वे यकायक घबरा उठे। इस पदवी को लेने के लिए मुझे कहाँ–कहाँ से गुजरना पड़ रहा है। तुमको

1. चाक, पृ0 155
2. उपरिवत्, पृ0 280

खूब मालूम है, मैं टुच्चा नहीं। घटियापन नहीं करूँगा। जो गलतियाँ हुई हैं, ईमानदारी निभाने के सपनों के ही कारण हुई हैं।'[1] रंजीत का यह कथन उसकी न्यायप्रियता, ईमानदारी एवं कर्मठता को व्यक्त करता है।

सारांशतः कहा जा सकता है कि 'चाक' के नायक रंजीत के स्वभाव में आंशिक कटुता है तो अपूर्व साहसिकता के साथ प्रेम–भावना भी विद्यमान है। एक ओर स्वच्छ मानसिकता के साथ चारित्रिक निर्मलता है तो व्यावहारिक पटुता भी उजागर है। यदि राजनीतिक दाव–पेंच तो अवसरवादिता भी कहीं–कहीं दृष्टव्य है। 'चाक' उपन्यास के कथानक के सफल निर्वाह के लिए रंजीत जैसे नायक का चयन लेखिका की अभूतपूर्व कुशलता को प्रकट करता है। उपन्यास के सभी पात्र रंजीत के प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सम्पर्क में रहते हैं।

इदन्नमम – मकरंद

अपने उपन्यासों की रचना प्रक्रिया में मैत्रेयी पुष्पा ने सामाजिक युग–चेतना को रेखांकित किया है। इसी से उनके उपन्यास जीवन की प्रतिकृति माने जाते हैं। लेखिका ने जीवन के विविध व्यापार, क्रियाकलाप और घटनाओं का संयोजन कर जीवन के यथार्थ की झाँकी प्रस्तुत की है। इनके उपन्यासों में नायक के लिए उच्चकुलोद्भव, क्षत्रिय या देवता होने की बाध्यता अस्वीकार करके सामान्य मध्यम वर्गीय परिवारों से नायकों का चयन किया गया है। उनके उपन्यास 'इदन्नमम' के सम्बन्ध में गिरिराज किशोर का अभिमत है– "दरअसल यह उपन्यास मुख्यतः महिला संघर्ष प्रधान उपन्यास है। पुरुष उसमें सहभागी हैं। इस बीच उपन्यासों में जो नारी चरित्र सामने आये हैं, उनके मुकाबले इस उपन्यास के चरित्र ज्यादा संघर्षशील जमीन से जुड़े हैं।"[2]

'इदन्नमम' का नायक मकरंद क्षत्रिय कुलोद्भव, गौरवर्ण, उत्साही युवक है। उपन्यास की नायिका मंदाकिनी से प्रेम तो हृदय से करता है किन्तु सामाजिक मर्यादा

1. चाक, पृ0 381
1. फ्लेप पर अंकित टिप्पणी, गिरिराज किशोर

का सदैव ध्यान रखता है। अवसर मिलने पर प्रेमासक्त भाव से प्रेमिका मंदाकिनी से तर्क–वितर्क कर अपने को ऊँचा सिद्ध करने की कोशिश करता है और अन्त में प्रेमिका को पहुँचाई ठेस पर शर्मिन्दा भी होता है।

उपन्यास का नायक मकरंद अपनी युवावस्था के आवेश को नियंत्रित नहीं कर पाता है और प्रेमिका के शारीरिक हाव–भाव एवं अंग–चेष्टाओं के प्रति आकर्षित होकर उसे अपनी बाँहों में समेट लेता है। 'मकरंद ने उसकी बाँह पकड़ी और जा पहुँचे ढोर वाली बखरी में, जहाँ कोई न था। जहाँ अँधेरा था। जहाँ वे एक–दूसरे को देख तक न पा रहे थे। .... एकाएक मकरंद ने अपनी बाँहों के घेरे में ले लिया उसे।'[1]

मकरंद प्रगतिशील विचारों का परिश्रमी युवक है। अपने शैक्षिक विकास के लिए डॉक्टरी पढ़ने इलाहाबाद जाता है। डॉक्टरी में डोनेशन (रिश्वत) देकर भर्ती होने की कटु निन्दा करते हुए चंदा को 'अमीरों की बैसाखी' बताते हुए कहता है, 'ये घटिया चालबाजियाँ ही कहलायेंगी जो हमारे मेहनती वर्ग के पाँवों पर कुल्हाड़ी मार–मार कर उन्हें अपंग बना रही हैं, ताकि वह धड़ाम से गिरे और ढेर हो जाय।'[2]

लेखिका ने नायक की भूमिका द्वारा सच्चे प्रेम की अभिव्यक्ति को साकार स्वरूप प्रदान किया है। डॉक्टरी पढ़ने इलाहाबाद जाते समय मकरंद मंदाकिनी का अश्रुप्रवाह देखकर खिन्न हो जाता है। माँ की वर्जना को अनदेखा करते हुए वह मंदाकिनी के पास दौड़कर आता है और अपना हृदयस्थ प्रेम–प्रवाह उड़ेलते हुए कहता है– 'पहले आँसू पोंछों, हौसले से रहना। मैं पढ़ने जा रहा हूँ। मेहनत करूँगा। डॉक्टर बनूँगा। तुम्हारे गाँव आऊँगा मन्दा। तुम्हारे अस्पताल में। रोना नहीं, तुम्हें हमारा कौल।'[3] यहाँ नायक का प्रेमभाव तो स्पष्ट है ही, साथ ही उत्साहवर्द्धन का अटूट विश्वास भी विद्यमान है।

नायक मकरंद अपनी प्रेमिका की विरह व्यथा से पीड़ित होकर उसके प्रेम

---

1. इदन्नमम्, पृ0 55
2. उपरिवत्, पृ0 221
3. उपरिवत्, पृ0 139

को विस्मृत करना चाहता है। अपने माँ–बाप से व उनके व्यवहार से असंतुष्ट रहता है। श्यामली गाँव से मंदाकिनी के चले जाने का समाचार पढ़कर उस पर पड़ा मनोवैज्ञानिक प्रभाव निम्न पंक्तियों में परिलक्षित होता है– "पढ़ते–पढ़ते कंठ सूख गया मंदा। जीभ जड़ हो गई। कई दिनों तक बहुत बैचेन रहा। क्यों है मेरे साथ यह दिक्कत कि भूल नहीं पाता मैं। बीते हुए कल को लादे फिरता हूँ कंधों पर। अतीत ढोना सबसे बड़ी बिडम्बना है मंदा।"[1]

इस प्रकार 'इदन्नमम' में नायक की भूमिका वर्तमान जगत में व्याप्त विसंगतियों, भ्रष्टाचारों तथा अनियमितताओं के निरावरण के साथ प्रेम के शास्वत प्रवाह में समुत्पन्न बाधाओं का दिग्दर्शन कराती है।

अल्मा कबूतरी – मंसाराम

मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास कबूतरा जनजाति के आपराधिक इतिहास का संकलित दस्तावेज होने के साथ–साथ समाज की मुख्यधारा से जुड़ने का प्रगतिशील उपक्रम भी है। विगत कुछ दशकों में इस जनजाति की आपराधिक प्रवृत्तियों में पर्याप्त सुधार हुआ है। इस सुधारात्मक परिवर्तन के सम्बन्ध में डॉ0 रामशरण जोशी का अभिमत है– 'मैत्रेयी पुष्पा की जरायमपेशा जाति कबूतरा की इस रूपान्तरण गाथा में दो धारायें समानान्तर चलती हैं– पहली बदलाव के लिए कबूतरा समाज की आंतरिक तड़प और बाह्य प्रयास, दूसरी– औरत का आंतरिक और बाहरी सशक्तीकरण। गहरी पड़ताल करें तो समाज और औरत दोनों का बदलाव एवं सशक्तीकरण परस्पर सहयोगी धाराओं के रूप में उपन्यास में उभरते हैं।'[2]

लगभग आधे से अधिक उपन्यास में कदमबाई छाई रहती है। औपन्यासिक मुख्य घटनाओं से सम्बद्ध होने का श्रेय कदमबाई को है। अतः यदि कदमबाई को उपन्यास की नायिका मानें तो उपन्यास का नायक मंसाराम को मानना पड़ेगा। मंसाराम कज्जा वर्ग (सवर्ण – उच्चजाति) का प्रतिनिधि है। इनके खेतों में कबूतरा

1. इदन्नमम्, पृ0 220
2. हंस, सितम्बर 2000, पृ0 88

जनजाति के डेरे हैं। कदमबाई के लावण्य पर मंसाराम मुग्ध होकर उससे नाजायज सम्बन्ध बनाते हैं और कदमबाई गर्भवती हो जाती है। 'और उस रात ने, उस फसल ने, उस प्यार ने कदम के गर्भ में एक अंश बूँद बढ़ने के लिए छोड़ दी। बूँद की गंध हवा के साथ खेतों पर फैल गई।'[1] यह कथन मंसाराम के चारित्रिक दोष को उजागर करता है।

मंसाराम इस चारित्रिक दोष को अन्तर्मन से स्वीकार करते हैं किन्तु अपने पारिवारिक सदस्यों तथा समाज के सम्मुख धर्म का बनावटी कवच धारण कर अपयश से बचना चाहते हैं– 'नियम से नहाना–धोना, खाना–पीना और भजन–पूजन में जिन्दगी बिताने वाले ध्येय का अनुकरण करते हुए समय बिता रहे थे। सच तो यह था कि केहर सिंह के चले जाने के बाद वे अपने सभ्य शिष्ट और सज्जन होने को लेकर ज्यादा सतर्क हो गये थे, कहीं सोहबत का रंग लगा तो नहीं रह गया? एक धब्बा ही रंग–भंग कर डालेगा।'[2]

मंसाराम परिवार एवं समाज की नजरों में गिरकर स्वयं को बदहवास अनुभव कर रहे थे। साहस करके उन्होंने कबूतरा बस्ती में ही डेरा डाल दिया। पत्नी और पुत्रों को लौटाने की कोशिशें व्यर्थ गईं। किन्तु मंसाराम का अन्तर्मन बार–बार कचोटता रहा। 'मन के रेशे खिंचते हैं तो टीस होती है, मगर वे कटते नहीं कि मामला खत्म हो। डगमगाना बचा रहता है। न जाने कैसे और कब मन खुला छूटा और तितली की तरह बात भीतर घुस आई, फड़फड़ाने लगी– गाँव में क्या कह रहे होंगे लोग? यही कि मंसाराम कबूतरा हो गया। चौपाल पर बैठकर उनकी तबाही का शोक मनाया जा रहा होगा या ठठाकर हँसी हो रही होगी?'[3]

मंसाराम की बहन का लड़का धीरज अल्मा कबूतरी की रक्षा करता है, प्रेम भी करने लगता है। प्रेम सम्बन्ध उसकी डायरी में उल्लिखित है। पारिवारिक विरोध न सह सकने के कारण वह मंसाराम के पास आ जाता है। मंसाराम पशोपेश में हैं क्योंकि

---

1. अल्मा कबूतरी, पृ0 22
2. उपरिवत्, पृ0 152
3. उपरिवत्, पृ0 168

राणा भी अल्मा कबूतरी से जुड़ा है। फिर भी मंसाराम का धीरज के प्रति कथन कितना उत्साहवर्द्धक है– ''उदासी भरी हँसी हँसकर मंसाराम बोले– विष का स्वाद चखने वाला शिव ....। पढ़। पढ़ लेना चाहिए। अगर आदमी पिछली जिन्दगी जोड़कर न चले तो उसका जीवन केवल एक दिन की म्याद का रह जाए, बस आज भर का। 'आज' बीते हुए कल का ही तो नतीजा है।''[1]

मंसाराम का उक्त कथन उनके सांसारिक अनुभव का द्योतन करता है। आगे उनके मनोवैज्ञानिक अनुभव का एक उदाहरण दृष्टव्य है। 'मंसाराम को विश्वास नहीं। उनके चलते अल्मा, राजा और धीरज के बीच में फँसी कड़ी कोई न कोई तूफान अवश्य उठाएगी। स्त्री पुरुष की कितनी बड़ी कमजोरी है, उनसे ज्यादा इस बात को कौन जानता होगा।'[2] इस प्रकार अन्त में कहा जा सकता है कि मंसाराम के चरित्र में लेखिका ने तमाम उतार–चढ़ावों को समावेशित कर उसे जटिल बना दिया है। वह आदि से अंत तक आदर्श और यथार्थ के भ्रम में डूबकर अपना मार्ग सुनिश्चित नहीं कर पाता।

अगनपाखी – चन्दर

मैत्रेयी पुष्पा ने 'अगनपाखी' उपन्यास में भुवन–मोहिनी और चन्दर की प्रेम कहानी को अपनी पूर्व परिचित दिलचस्प किस्सागोई के साथ एक नया आयाम दिया है। उपन्यास का नायक चन्दर अपनी मौसी भुवन के लगभग समवयस्क है। रिश्ते में मौसी और भतीजा होकर भी एक–दूसरे के प्रति आकर्षित होकर प्रेम करने लगते हैं। चन्दर का भुवन के प्रति अतिशय प्रेम निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है– 'दिक्कत यहीं शुरू होती है कि मैं उसे भूल नहीं पाता। अपने प्यारे बचपन की तरह वह मैंने सीने से लगा रखी है। अनमोल याद सी मन में बसी है। मैं उसका पिता नहीं, भाई नहीं, पति नहीं, फिर क्या हूँ? बहन के बेटे का रिश्ता कितने नजदीक होता है?'[3]

1. अल्मा कबूतरी, पृ0 327
2. उपरिवत्, पृ0 329
3. अगनपाखी, पृ0 10

'मैं बचपन का गुलाम आज तक अपने लगाव की बेड़ियों में जकड़ा, अनेक दुखते निशानों, दागों को देखता रहता हूँ कि देखते रहना चाहता हूँ, ऐसी क्या मजबूरी है?'[1]

उक्त उद्धरणों में चन्दर के हृदय की अविस्मरणीय प्रेम–भावना अनावृत हुई है किन्तु उसके हृदय में रह–रह कर चेतना जाग्रत होती है और वह सोचता है अपने पवित्र रिश्ते को न निभा सकने की विवशता के सम्बन्ध में।

मैत्रेयी पुष्पा के इस उपन्यास में सामाजिक विडम्बनाओं का सफलता पूर्वक उद्घाटन हुआ है। चन्दर के पिता चन्दर की नौकरी के बदले भुवन का विवाह रुग्ण एवं कमजोर किन्तु जायदाद के स्वामी विजय सिंह से करवा देते हैं। चन्दर भुवन की समस्यायें सुलझाने का प्रयास करते–करते स्वयं सचेत होकर अपने भविष्य के बारे में सोचने लगता है– 'मुझे सारा ध्यान अपने कैरियर पर लगाना चाहिए। पिता ने किस तरह का पदक मेरे हाथ में थमाया है और मैं दो कौड़ी की लड़की भुवन के गम का मारा, सारा कुछ राई–रेत करने पर उतारू हो गया हूँ।'[2] यहाँ लेखिका ने चन्दर की गम्भीरता एवं स्वाभिमान को उकेरने का उपक्रम किया है।

'अगनपाखी' का नायक चन्दर भुवन की सास को वास्तविकता की गहराई से तो अवगत कराता ही है, कटु सत्य भी उसके समक्ष प्रस्तुत करता है। 'अम्मा, मैं बैचेन इसलिए हूँ कि तुम सब उसके मुकाबले बहुत चैन में हो। एक का सुख दूसरे के दुख का कारण बने तो वह सुख कैसा? अगर भोगने वाला उसे सुख मानता है तो वह इंसान कैसा?'[3] इस कथन से चन्दर की स्पष्टवादिता का परिचय मिलता है तथा स्पष्ट एवं खरी बात कहने से उसके साहस का भी। वह स्वाभिमान पूर्वक कहता है कि– 'उस नौकरी पर लात मार दूँगा जो भुवन को नरक में धकेलने के बदले मिली।'[4] यहाँ नायक

---

1. अगनपाखी, पृ0 10
2. उपरिवत्, पृ0 59
3. उपरिवत्, पृ0 112
4. उपरिवत्, पृ0 110

की प्रबल स्वाभिमानी प्रवृत्ति उजागर हुई है, साथ ही भुवन के प्रति उसका अटूट प्रेम भी प्रकट हुआ है।

चन्दर के इर्द–गिर्द उपन्यास का सम्पूर्ण घटनाचक्र घूमता है। चन्दर प्रेम–विह्वल होकर भुवन को गले लगा लेता है। भुवन विवाहिता औरत के लिए पर–पुरुष के स्पर्श को पाप की संज्ञा से अभिहित करती है। तब चन्दर की आन्तरिक संवेदना का प्रस्फुटन देखने योग्य है। 'क्या होता है पाप? मेरे लिए एक ओर सारा संसार है तो एक ओर तुम। पद–प्रतिष्ठा, धन–दौलत लेकर क्या करूँगा भुवन? अगर तुम्हारी मुक्ति यहाँ से कर सकता हूँ तो बाप के किए का अपने किए का प्रायश्चित समझूँगा।'[1] यहाँ चन्दर का एकनिष्ठ प्रेम तथा हित–कामना परिलक्षित है।

चन्दर भुवन को निराश कर बीहड़ में देवी मंदिर की तरफ जाता है। नदी के किनारे बैठकर, आत्मग्लानि की अग्नि में झुलसता हुआ किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। सोचता है कहाँ जाऊँ– 'गाँव जाऊँ तो उसी पिता का दर्शन होगा, जिसने मुझे कुचल डाला। उस नौकरी पर कैसे जाऊँ जो किसी के सर्वनाश की निमित्त बनी। मेरे लिए सारे रास्ते बंद हो गए, जो रास्तों के रूप में खुलकर नागों से डसते रहते हैं।'[2] यहाँ चन्दर के हृदय की व्यथा तथा कुछ भी न कर सकने की स्थिति का स्पष्टीकरण है। लेखिका ने बड़ी सफलता से चन्दर के चरित्र का अंकन किया है।

अतः कहा जा सकता है कि अगनपाखी उपन्यास का नायक 'चन्दर' सच्चा प्रेमी तो है ही, साथ ही स्वाभिमानी, गम्भीर प्रकृति, व्यवहारवादी, यथार्थवक्ता और प्रगतिशील विचारों का समर्थक भी है। मानवीय संवेदना से परिपूर्ण नायक पर–हित–कामना को मुख्य उद्देश्य समझकर सहयोग के हितार्थ सदैव तत्पर रहता है।

झूलानट – बालकिशन

'झूलानट' उपन्यास का नायक बालकिशन है। उपन्यास की नायिका शीलो

---

1. अगनपाखी, पृ0 148
2. उपरिवत्, पृ0 107

है। नायिका का पति सुमेर नायक न होकर प्रतिनायक के पद पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है। उपन्यास का सम्पूर्ण घटनाचक्र शीलो और बालकिशन के इर्द–गिर्द घूमता है। इसलिए बालकिशन को शीलो का देवर होते हुए भी 'झूलानट' उपन्यास का नायक स्वीकार करना शास्त्रीय दृष्टि से औचित्यपूर्ण है।

बालकिशन की माँ और शीलो के बीच नित्यप्रति का कलह पारिवारिक अशांति का कारण है। बालकिशन का हृदय एक ओर शीलो के अप्रतिम सौन्दर्य के आकर्षण में आसक्त है, दूसरी ओर वृद्धा माँ के प्रति दायित्व बोध के भार से आक्रान्त है। उसका मन झूले पर झूलने वाले नट के मानिन्द अस्थिर तो है ही, साथ ही उलझनों के भयावह भँवर जाल में आबद्ध भी है। पारिवारिक शांति–कामना से बालकिशन अस्वस्थ होते हुए भी देवी माँ की अर्चना करने को आतुर एवं लालायित है, शीलो उसे रोकती है किन्तु उसकी भक्ति भावना का प्रबल स्वरूप निम्न पंक्तियों में देखने योग्य है– 'मैं साँग छिदवाऊँगा। शीलो दस शीश बीस भुजा की हो जाए, तब भी न मानूँगा, कहती है सिर्री हो गए हो। गाल में बल्लम का फल छेदकर लहूलुहान होना चाहते हो? कितनी नादान औरत है। क्या जाने माता का परताप? महामाई अपने भगत का सत्त भी चीन्हती–जानती हैं।'[1] बालकिशन के स्वगत कथन से स्पष्ट है कि उसके अन्तर में भक्ति भावना का उमड़ता आवेग विद्यमान है।

बालकिशन चित्तवृत्ति की अस्थिरता का अनुभव करता हुआ कभी अपने को संयम सूत्र में बाँधने की कोशिश करता, तो कभी उच्छृंखल होकर शीलो भाभी की देह का मादक स्पर्श करना चाहता है। एकान्त पाकर बालकिशन कामुकता–पूर्ण चेष्टा करता है, शीलो की भयावह एवं विनम्र फटकार का प्रभाव उसके चारित्रिक दोष को उजागर करता है– 'बालकिशन काँप गया। सती की भवों में बान खिंचा था। ये आँसू नहीं, विष–ज्वाल टपक रही है। भस्म हो जाएगा। दो बलिस्त पीछे सरकना चाहता था, लेकिन सीढ़ियों पर पछाड़ सा खाता हुआ लुढ़कता–लुढ़कता नीचे। महा पातकी का

---

1. झूलानट, पृ0 11

हश्र। सोचकर बिलबिला उठा। लखन भाव से पाँव पकड़ लिए भाभी के।'[1] यह कथन बालकिशन के यौवन–सुलभ चारित्रिक दोष को अभिव्यक्त करता है, साथ ही उसके हृदय की कोमलता को भी व्यंजित करता है।

शीलो और उसकी सास– दोनों ने बालकिशन के अन्तर को झकझोर डाला है। वह अनिर्णीत अवस्था में किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा रहकर कुछ भी नहीं सोच पाता। जो शीलो प्रेम पूर्ण हाव–भाव दिखाकर बालकिशन के मन को बाह्य तौर पर प्रेम–जाल में उलझाये रखने का नाटक रचती है, वही अपने पति सुमेर के आने पर तन–मन से सेवा में जुट जाती है। प्याज लाने की बात सुनकर वह मन ही मन कहता है– 'मैं विरोध नहीं कर सकता, मान लिया, लेकिन सहयोग भी क्यों करूँ? गली के कुत्ते की दर पर रखती है? जब चाहे टुकड़ा डाल दिया, जब मन आया, दुत्कार दिया।'[2] इन पंक्तियों में लेखिका ने बालकिशन के स्वाभिमान युक्त प्रतिरोध भाव का प्रदर्शन कराया है।

बालकिशन के मन–मस्तिष्क में शीलो छा गई है। शीलो के प्रयासों से वह माँ का तिरस्कार करने लगता है। माँ के लिए खाँसी की दवा लाना भूल गया। हार्दिक ग्लानि से क्षुब्ध होकर बालकिशन पश्चाताप करते हुए मन ही मन माँ से कहता है– 'तू चाहे भी, तो माफ नहीं कर पाएगी मुझको। जैसे मैं नहीं बख्श पा रहा खुद को। शीलो चुड़ैल– घर से, गाँव से, धन से, तन से और अब मेरे मन से भी खारिज करती जा रही है तुम्हें।'[3] बालकिशन अपने किये का प्रायश्चित करने के लिए देवी के मंदिर जाता है– 'बालकिशन मूर्ति के पास पहुँचने से पहले ही बेहोश होकर गिर गया। न जाने कब तक पड़ा रहा देवी के चरणों में।'[4] यदि बालकिशन शीलो के प्रति आकर्षित होकर प्रेमिल व्यवहार करता है तो उसके दुर्व्यवहार से क्रोधित होकर दण्ड विधान भी अपनाता है– 'आगे की भद्दी बात खुद ही समझ ली बालकिशन ने और तड़ाक–तड़ाक दो–तीन

---

1. झूलानट, पृ0 53
2. उपरिवत्, पृ0 104
3. उपरिवत्, पृ0 139
4. उपरिवत्, पृ0 142

तमाचे जड़ दिये पूरी ताकत और हिम्मत के साथ, साली, अम्मा को गाली देती है। बोल, अब बोल।'[1]

'झूलानट' का नायक बालकिशन अनिर्णीत स्थिति में अनिश्चित जीवन जीता है। उसके दोनों ओर विषमतायें एवं विपरीत भावनायें मौजूद रहकर उसे अस्थिर बना देती हैं। कभी घबड़ाकर वह प्रायश्चित करता है तो कभी पश्चाताप की अग्नि में झुलसता रहता है। कभी क्रोधावेश में माँ तथा शीलो से कटु एवं निन्दनीय शब्द भी कह देता है तो कभी मन मसोस कर रह जाता है। अंत में कहा जा सकता है कि बालकिशन झूले पर कलाबाजियाँ दिखलाते नट के समान अस्थिर जिन्दगी जीता है तथा अन्त में आराध्य देवी का आश्रय ग्रहण कर शांति का अनुभव करता है।

विजन – डॉ0 अजय

मैत्रेयी पुष्पा का 'विजन' उपन्यास निजी चिकित्सा संस्थानों की अराजकता, अमानवीयता तथा गहरी अनियमितताओं को सम्पूर्णता के साथ उजागर करता है। इसमें लेखिका ने दैनिक जीवन की समस्याओं, घटनाओं, क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं को बड़ी आत्मीयता से उकेरने का प्रयास किया है। उपन्यास की आंतरिक संरचना के सम्बन्ध में डॉ0 रोहिणी अग्रवाल का मत है– 'विजन का ताना–बाना भी कुछ ऐसी ही कुशलता से बुना गया है कि वह दो स्त्रियों का शोक गीत न रहकर घरनी और व्यवसाय, स्त्री और समाज के अन्तर्सम्बन्धों की गाढ़ी तस्वीर बन जाता है जिसमें परम्परा, संस्कार, संस्कृति के नाम पर अंध आस्था और गद्गद् स्तवन है तो सागर के छोरों को अपनी आँखों से छू लेने की आकुल उड़ान भी। जरा गौर से देखें तो इस तस्वीर में दो चेहरे उभरने लगते हैं– आभा दी और डॉ0 नेहा शरण।'[2]

शरण आई हास्पिटल के मालिक सर्जन डॉ0 आर0पी0 शरण के बेटे डॉ0 अजय उपन्यास के नायक हैं। सम्पूर्ण औपन्यासिक घटनाचक्र डॉ0 अजय और उनकी पत्नी डॉ0 नेहा शरण के इर्द–गिर्द घूमता है। डॉ0 अजय को सर्जन बनाकर अपना

---

1. झूलानट, पृ0 143
2. हंस, अप्रैल 2002, पृ0 85

योग्य वारिस घोषित करने के लिए अनगिनत धनराशि एवं मँहगी शराब का दिल खोलकर उपयोग किया गया था। अर्थात् डॉ0 अजय दान देकर प्रवेश पा सके थे अपनी डिग्री के लिए। अजय के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लेखिका का मत है– 'लम्बे कद के सुदर्शन अजय! गौर वर्ण दिपदिपाता चेहरा, जैसाकि खाते–पीते घरों के बेटों का होता है। ऐश–आराम से जो चिकनाई–लुनाई मिलती है, वेश–भूषा से जो व्यक्तित्व निखरता है, योग्यता की सनद हाथ में हो तो सोने में सुहागा जैसा सब कुछ अजय के पास है।'[1] अजय के पापा ने योग्यता की सनद के लिए ही सभी हथकंडे अपनाये थे। उनका व्यक्तित्व आकर्षण से भरपूर था।

अजय और नेहा का दाम्पत्य प्रेम उनके सम्बन्धों को दृढ़ से दृढ़तर तो करता है, किन्तु नेहा की तर्क बुद्धि यदा–कदा व्याघात उपस्थित कर देती है। अजय के स्वाभाविक गुण ही उसके जीवन की अमूल्य धरोहर है। 'अजय के पास करुणा का खजाना है। दिलासाओं की टोकरी है। अफसोस भरी सान्त्वनाएँ हैं। उनका यही धन, यह बल और यही आत्मविश्वास नेहा को जब तक मिलता रहा है। आज भी संवेदना में कमी नहीं।'[2] कभी–कभी दोनों में वैचारिक मतभेद छोटी–छोटी बातों को लेकर उत्पन्न हो जाते हैं। 'डे केयर सर्जरी' के सम्बन्ध में उत्पन्न विवाद से त्रस्त अजय कहते हैं 'नेहा! अजय कराहे, क्या कहती जाती हो? इतनी उत्तेजना ठीक नहीं। मैं मानता तो हूँ, तुम सही कहती हो, सही करती हो, लेकिन ....।'[3] इससे आशय निकलता है कि अजय सहज, सरल एवं चिन्तनशील प्राणी है। उथल–पुथल, उठा–पटक तथा संवादों में समागत जटिलता वे सहन नहीं कर पाते।

अजय और नेहा में गर्भपात हो लेकर मतभेद हुआ। नेहा माँ बनने का औचित्य सिद्ध करती तथा अजय कुछ समय पश्चात् संतानोपत्ति चाहते। अजय अपनी वाक्पटुता से नेहा को प्रभावित करते हैं। 'अजय की विशेषता यही है कि वे कटखनी

---

1. विजन, पृ0 17
2. उपरिवत्, पृ0 49
3. उपरिवत्, पृ0 50

बात को भी इस मासूमियम से कहते हैं कि आदमी को सारा दोष अपना ही लगे और उनके भोलेपन पर मर जाए।'[1]

अजय भारतीय संस्कृति से प्रभावित है। अपने पिता के ऋण को कभी विस्मृत नहीं होने देता। पिता ने उसके लिए क्या नहीं किया। 'वह अपने पिता का आजीवन कर्जदार है। मरीजों के हित से ज्यादा उसे पिता के हित की चिन्ता होगी। वह तो एक तरह से निरा पराश्रित है।'[2]

अजय परिस्थितिवश कभी संकोचशील दिखाई देता है, तो कभी मुखर। नेहा उसके परिवर्तित स्वभाव पर टिप्पणी करती हुई कहती है– 'यह प्यार आगरा में कहाँ खो जाता है? और यहाँ अनूठा गीत क्यों बज रहा है? यहाँ आकर मुखर–मुखर हो जाने वाले अजय, वहाँ कौन सी लज्जा, कौन सा संकोच और कौन–सा भय तुम्हारा मुँह दबाये रहता है कि तुम मौन, कि तुम बन्दी ....।'[3]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अजय का व्यक्तित्व सहज, सरल होते हुए भी परिस्थितिवश मुखर एवं चंचल हो जाता है। समस्त चारित्रिक गुण उसे सफल नायक की श्रेणी में परिगणित करने के लिए पर्याप्त हैं।

(ख) उपन्यासों में प्रतिनायक का स्वरूप :

बेतवा बहती रही – अजीत

'बेतवा बहती रही' उपन्यास की नायिका 'उर्वशी' के भाई अजीत को प्रतिनायक मानकर कथानक का विवेचन करना ही यहाँ मुख्य प्रतिपाद्य है। अजीत को मैत्रेयी पुष्पा ने छल, झूठ, दम्भ, ईर्ष्या, कपट, अन्याय तथा शोषण आदि की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित किया है। शिक्षा के क्षेत्र में पूर्णतः असफल, अजीत नौकरी के लिए माँ की जीवन भर की संचित निधि को हड़प लेता है। 'हम का कैरये अम्मा, हाकिम कों

---

1. विजन, पृ0 142
2. उपरिवत्, पृ0 146
3. उपरिवत्, पृ0 154

रूपइया भरने पड़ हैं, तब लगहै नौकरी।'[1] यह कहकर माँ से दो स्वर्ण मोहरें ले जाता है। इतना ही नहीं माँ के पैरों के 'पैजनाँ' भी ले जाकर वन–विभाग की नौकरी कर लेता है।

अजीत अपनी बहन उर्वशी के विवाह के लिए एक अपराधी एवं दुश्चरित्र परिवार का लड़का देखता है। बुजुर्गों की असहमति से क्रोधित होकर कहता है– 'हम तो ढूँढ़–खोज कें हारे जा रहे और तुम दोनों बूढ़े कानून काढ़त–काढ़त दम नहीं लैरये। फिर खुद हीं काहे नहीं खोज लेत। हमारे ऊपर काहे कों डारौ जे बबाल?'[2] तात्पर्य यह है कि अच्छी–खासी सलाह पर अजीत का इतना क्रोध वृद्धों के अपमान का सूचक है तथा बहन के विवाह के प्रति उदासीन भाव है।

वन विभाग की नौकरी में शशिरंजन पाण्डेय ने अजीत को लकड़ी बेचने के मामले में फँसा दिया। अजीत की मानसिकता देखिये– 'कोई अफसर उनके विरूद्ध ऐसी हिम्मत करे, सम्भव न था। अजीत उस क्षेत्र के दादा थे, फिर उनसे बैर लेने का मतलब .....?'[3] अजीत के सम्बन्ध में तमाम अफवाहें सुनी जाती हैं। 'अजीत डाकुअन के गिरोह में फँस गओ है। मोंठ वारे माते तौ यहाँ तक कैरये हते कि जौरा के डाके में ऐन पहचान लऔ अजीत कों।'[4]

अजीत अपने कुकृत्यों का परिणाम भोगते हुए किसी डकैती में फँस जाता है। 'जितने मुँह उतनी बातें। बस, इतेक सही है कि लापता है नास गऔ। माँ समान जर, जमीन और बहन, सब बेंच डारी ठठरी बँधे ने।'[5] तात्पर्य यह है कि अजीत अपनी बहन उर्वशी का सौदा बरजोर सिंह से कर चुका था। इसी सम्बन्ध में मीरा ने जब उर्वशी से राजगिरि जाने को कहा, तो उर्वशी अवसन्न मन से कहती है। 'अजीत भइया से भाई–बहन कौ सम्बन्ध रहौ कहाँ है? बहन तो उनके लिए रूपइया बन के रह गई।

---

1. बेतवा बहती रही, पृ0 23
2. उपरिवत्, पृ0 27
3. उपरिवत्, पृ0 73
4. उपरिवत्, पृ0 129
5. उपरिवत्, पृ0 139

......केवल कागज के कुछ नोट।'[1]

इस प्रकार प्रतिनायक अजीत के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि लेखिका ने इसका सृजन देशकाल, परिस्थिति जन्य तमाम दोषों, अपराधों को अनावृत करने के लिए ही किया है। उपन्यास में बुन्देलखण्ड के समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को रेखांकित करने का लेखिका का प्रयास सराहनीय है।

चाक – श्रीधर

मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' उपन्यास का नायक रंजीत और नायिका सारंग है। सारंग श्रीधर के सौम्य स्वभाव, साहस, आकर्षक व्यक्तित्व, प्रेमी हृदय, निर्भय वार्तालाप, सैद्धान्तिक दृढ़ता तथा सादगी पर मुग्ध होकर प्रेम करने लगती है। श्रीधर मास्टर अतरपुर गाँव के प्राथमिक विद्यालय का योग्य अध्यापक है। भलमनसाहत उसके स्वभाव में है तथा सामाजिक ज्ञान और विद्वता उसकी बात–बात में झलकती है। श्रीधर का मोहक व्यक्तित्व सारंग को आकर्षित करता है। 'श्रीधर मास्टर उसके बराबरी वाले मूढ़े पर बैठे हैं। सफेद कमीज, नीली पैन्ट। तिरछी माँग निकालकर बाल काढ़े हुए। गेहुँआ रंग का सपाट माथा। जरा मोटी सी नाक और होंठों की कटावदार छवि, दरमियाना कद, सारंग ने आज गौर से देखा।'[2]

श्रीधर की सौम्यता से सारंग के हृदय में आदर–भाव जाग्रत हुआ। 'श्रीधर के पास बढ़ती हुई वह घूँघट में मुस्कुराई। थरथराती उँगलियों से हल्दी का टीका लगाया। दो चावल चिपका दिए हल्दी के ऊपर। .... सारंग श्रीधर के पाँवों पर झुक गई और चरण छू लिए अपना पल्ला डालकर।'[3] यहाँ लेखिका ने श्रीधर के रूप में ऐसे व्यक्तित्व का सृजन किया है जिससे सारंग तन–मन से आकृष्ट होकर तथा जातीय मर्यादा को भूलकर उसके चरण स्पर्श करने पर विवश हो गई।

श्रीधर का प्रेम–विह्वल हृदय सारंग की चाहत के रंग में रंग कर नित्य

---

1. बेतवा बहती रही, पृ0 140
2. चाक, पृ0 130
3. उपरिवत्, पृ0 131

मिलने को मजबूर हो गया। श्रीधर बाबा के बहाने उससे मिलने जाते और बिना पानी पिये नहीं लौटते। श्रीधर को अपनी छोटी कौम से जरा भी हीन–भावना उत्पन्न नहीं होती। वरन् वह बड़े स्वाभिमान से कहता है 'मैं कुम्हार का बेटा हूँ, जो चाक चलाकर बर्तन बनाता था और आप जैसे किसानों के घर की पूर्ति करता था।'[1]

श्रीधर की बाल्यावस्था श्रीप्रसाद वार्ष्णेय के सान्निध्य में व्यतीत हुई। श्री प्रसाद आर्य समाजी थे। श्रीधर ने उस परिवार में अपने को ढाल लिया। 'वे संध्या–वंदन, सबेरे और रात के श्लोक बोलना सीख गए, और उनके अर्थ जानने की जिज्ञासा में किताबें पढ़ने लगे। अंग्रेंजी भी पढ़ी स्कूल में। विद्या की पोटली में एक गाँठ ठोस पड़ी रह गई– हीनता।'[2] फिर भी श्रीधर अपनी हीनभावना को ज्ञान के बल पर बढ़ने नहीं देता। श्रीधर की विद्वता के कारण एवं बाल्यावस्था में प्राप्त संस्कारों के कारण गाँव की विभिन्न संस्थाओं से उद्घाटन, भाषण और उत्सवों के समापनार्थ निमंत्रण आया करते थे।

ग्राम–प्रधान श्रीधर मास्टर को अधिकारियों के निरीक्षण का भय दिखाता है। श्रीधर मास्टर निःशंक एवं निर्भय होकर अधिकारियों की वस्तुस्थिति एवं उसकी प्रभावहीनता को अनावृत्त करते हुए कहता है। 'प्रधान जी, अफसर लोग ! हुँह ! अरे, उन्हें तो आप ऐसे ही समझ लें जैसे पुलिस बैंड, जिसे हँसी–खुशी, दुख–गमी में बजकर अपनी उम्र पूरी करनी होती है। सरकार को बच्चों की सही–सही तालीम से कोई सरोकार नहीं। स्कूल कागजों पर खड़े हैं और आँकड़ों पर खड़ा है शिक्षा विभाग।'[3]

रंजीत श्रीधर और सारंग के प्रेम सम्बन्धों को लेकर कुपित रहता है। उल्टी सीधी गालियाँ भी बकता है। किन्तु श्रीधर के मन में प्रेम की लौ निरंतर जलती रहती है। ऐसी स्थिति में वह माँ का स्मरण कर व्यथित हो उठता है। माँ की दयनीयता के अतिरिक्त अन्य महिलाओं के प्रति श्रीधर का सामरस्य उसकी वेदना में नई कड़ियाँ

1. चाक, पृ0 169
2. उपरिवत्, पृ0 170
3. उपरिवत्, पृ0 177

जोड़ देता है। 'माँ की अवश आँखें, उनकी लाचारी की भारी शिला .... श्रीधर का मन कुचल कर धर गई। दर्द की कड़ियाँ जुड़ती जाती हैं– रेशम की दर्दनाक मौत। बाँदीपुर में भेड़ियों से घिरी केका। और यह सारंग ...... ये स्त्रियाँ उनकी माँ की छवि में तिर आती हैं। तभी तो श्रीधर पगला, हरामी, लुच्चा, बदमाश हो गया।'[1] यह कथन श्रीधर मास्टर की आंतरिक वेदना का उद्घाटन तो करता ही है, स्वाभिमान पूर्वक अडिग रहने का संकल्प भी दोहराता है।

श्रीधर मास्टर ईमानदार, न्यायप्रिय एवं कर्त्तव्यनिष्ठ है। ग्राम प्रधान विद्यालय भवन के नाम पर फंड निकालना चाहता है। श्रीधर साहस पूर्वक दृढ़ता से प्रधान की अवहेलना करता हुआ कहता है। "प्रधान जी यह अर्जी तो है, लेकिन मेरे हिसाब से गलत हलफनामा है। स्कूल की बिल्डिंग तो ठीक–ठाक है। बल्कि खूब मजबूत है। मैं आपकी भावना की कद्र करता हूँ, जो सोचा है गाँव के हित में सोचा है लेकिन ....।"[2] यह कहकर श्रीधर हस्ताक्षर करने से साफ इंकार कर देता है। प्रधान लोभवश तमाम हथकण्डे अपनाकर उल्टा सीधा भी कहता है किन्तु श्रीधर धैर्यवान प्राणी है, क्रोध पी जाना उनकी आदत में आ गया है। अफसर और नेताओं के बंदर बाँट पर श्रीधर क्षुब्ध हो जाता है तथा अपने सिद्धान्त पर दृढ़ रहता है।

प्रधान जी पुनः विद्यालय भवन की सफाई–पुताई का फंड श्रीधर के हस्ताक्षर से निकलवाकर हड़पना चाहते हैं। वे श्रीधर को भी कुछ हिस्सा देने का लालच देते हैं। जब श्रीधर किसी कीमत पर तैयार नहीं होते, तो प्रधान जी बहला–फुसलाकर कर नम्रता पूर्वक काम बनाना चाहते हैं, किन्तु असफल रहते हैं।

श्रीधर का सारंग से सहृदय मिलन चंदन (सारंग का लड़का) बखूबी समझता है। वह उनकी भावनाओं को परख लेता है। श्रीधर का चुपचाप आना रंजीत को भी असह्य होता है। रंजीत के मन में कटुता बस जाती है। रंजीत सारंग की पिटाई करता है। रंजीत श्रीधर को प्रधान की अर्जी पर हस्ताक्षर करने का दबाव डालता है, किन्तु

1. चाक, पृ0 181
2. उपरिवत्, पृ0 238

श्रीधर का स्वाभिमान उसे झुकने नहीं देता। 'सारंग, मैं अकेला हूँ, लेकिन कायर नहीं। तुम जानती हो खूब, कि यह पूरा गाँव भी मुझे झुका नहीं सकता।'[1] श्रीधर के हर शब्द में गर्व है, चुनौती है, चेहरे पर अक्खड़पन है और है आँखों में कठोरता। वह किसी भी तरह हीन–भावना से ग्रसित नहीं है।

श्रीधर पर रंजीत जानलेवा हमला करता है। अन्य सहयोगी श्रीधर को अस्पताल ले जाकर चिकित्सा करवाते हैं। सारंग सेवा में संलग्न रहकर शारीरिक संसर्ग का आनन्द लेती है। श्रीधर "तबादला कराऊँ या न कराऊँ" निश्चित नहीं कर पाता। वह सारंग से कहता है– 'तुम्हें नहीं खुद को धिक्कार रहा हूँ। .... मार–पीट, थाना–पुलिस, गिरफ्तारी! यह सब स्कूल मास्टर की करतूतों का नतीजा हो, तो कौन करेगा विद्या और विद्यार्थियों से जुड़े इस आदमी पर भरोसा।'[2] यह कथन श्रीधर की आत्मग्लानि को व्यंजित करता है। श्रीधर पश्चाताप भी करता है– 'सारंग से क्यों बँध गये हैं इस कदर? क्या दिया है उसने? जो उसने दिया, बाँदीपुर की केका ने नहीं दिया था? उसने भी वही प्यार दिया था, मगर भागना पड़ा श्रीधर को।'[3]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने 'चाक' उपन्यास के प्रतिनायक 'श्रीधर' में साहस, स्वाभिमान, अक्खड़पन, प्रेम, उदारता, सादगी, चिन्तन, सत्य एवं आदर्श– सभी गुणों को समवेत रूप में सृजित किया है। गुणवत्ता की दृष्टि से श्रीधर रंजीत से किसी भी तरह कम नहीं पड़ता।

इदन्नमम – अभिलाख

मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' उपन्यास में अभिलाख को प्रतिनायक के रूप में रखना औपन्यासिक कथावस्तु के अनुसार तर्कसंगत होगा। अभिलाख मानसिक एवं व्यवहारिक रूप से कुप्रवृत्तियों का शिकार है। सार्वजनिक सामाजिक विकास में अवरोध उत्पन्न करना, हठवादिता का प्रदर्शन करते हुए दीन–हीन मजदूरों का शोषण करना

1. चाक, पृ0 289
2. उपरिवत्, पृ0 320
3. उपरिवत्, पृ0 339

तथा विकासशील योजनाओं पर कुठाराघात करना उसके चरित्र की विशिष्टता है। निर्धन एवं असहाय बेरोजगारों के लिए आतंक का पर्याय बनकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना ही उसका एकमात्र उद्देश्य था। अभिलाख ने समाज के लिए समर्पित एवं विकासोन्मुखी प्रतिभा सम्पन्न उपन्यास की नायिका मंदाकिनी का प्रबल विरोध करते हुए अपने सामाजिक अस्तित्व को मानवता से शून्य कर दिया। अभिलाख आर्थिक सम्पन्नता के लिए पत्थर तोड़ने वाला क्रेशर लगाकर क्षेत्रीय भू–स्वामियों को भूमिहीन तो करता ही है। साथ ही क्रेशर पर मजदूरों के लिए मजदूरी मांगने पर मंदाकिनी से अनुचित वार्तालाप भी करता है। 'क्रेशर क्या आज लगा है? जब से कहाँ गई तू? आज लाई है यहाँ भू–स्वामियों को दखल लेने। बड़ी आल्हा सुना रही है। यह तो वही बात हुई न कि पर मरी मइया, आसों आए आँसू।'[1]

अभिलाख नासमझ तो था ही, दुष्ट प्रकृति, अन्यायी एवं गवांर भी था। वह यद्यपि ग्रामीण मजदूरों के संगठन से मन ही मन भयभीत रहता है फिर भी क्षेत्रीय मजदूरों को अपनी हठवादिता के कारण काम न देकर ललितपुर से आए सीधे–सादे मजदूरों को ही अधिक पसन्द करता है। वह मंदाकिनी के लिए गालियाँ बकने के साथ स्त्री पर हाथ उठाने का दुस्साहस करते हुए हल्की मारपीट करने में भी संकोच नहीं करता। 'अभिलाख ने आव देखा न ताव लपक कर मंदाकिनी के बाल पकड़कर झँझोड़ डाले। साली–हरामजादी कहकर गालियाँ दीं। बाहें पकड़ कर ऐंठ डालीं और जहाँ हाथ गया तहाँ .... ठौर देखा न कुठौर। टूट पड़ा भूखे–भेड़िए की तरह।'[2]

इदन्नमम का प्रतिनायक अभिलाख क्रोधी, कामी तथा स्वार्थी था। उसके आतंक से सभी क्रेशर वाले आतंकित थे। वह मंदा के खिलाफ किसी को भी बहका सकता था। अभिलाख अहंकारी भी था। अपने अहं की तुष्टि के लिए प्रयत्नशील रहकर औरों को नीचा दिखाने की कोशिश में लगा रहने वाला अभिलाख किसी भी समय उपद्रव के लिए सचेष्ट रहता था। वह किसी से भी बैठे–बिठाये पंगा ले सकता

---

1. इदन्नमम्, पृ0 198
2. उपरिवत्, पृ0 199

था। मैत्रेयी लिखती हैं– 'उस दिन कुछ बात थी? बैठे–बिठाये ही पंगा लेता है कि नहीं? अरे, अपने आदमी भेजकर करवा दिया पंचर। पिरभू को रास्ते में रोकर स्टीरिंग तोड़ने लगा उसका लठैत बलरमा।'[1]

अभिलाख ईर्ष्यालु स्वभाव का है। सामूहिक सहयोग से विकसित ट्रैक्टर योजना से असंतुष्ट होकर हानि पहुँचाने की धमकी देता है। चारित्रिक दृष्टि से हीन व्यक्तित्व वाला तथा मद्यपान का शौकीन अभिलाख लीला राउतिन को रखैल के रूप में रखता है तथा अपनी पत्नी को धोखा देने से भी नहीं चूकता। "साला अहीर की जात होकर पुखरिया में मुँह मार रहा है तो गंदा ही खाएगा। वह अघोरिन ही सुनाकर आयी है यह हुकुम। राउतों पर राज चला रही है ताड़का। ...... काली मइया पान का बीड़ा चबाती हुई हम्से कहने आयी थी कि तुम्हारा ट्रैक्टर न बिकवा दिया तो हमारे मालिक का नाम अभिलाख नहीं।"[2]

अंत में कहा जा सकता है कि लेखिका ने इदन्नमम उपन्यास में अभिलाख को प्रतिनायक के रूप में सृजित करके बुन्देलखण्ड के अंचल में व्याप्त सामाजिक बुराईयों को उद्घाटित किया है तथा मानवीय कमजोरियों को उजागर करते हुए समाज का चित्रांकन किया है।

अल्मा कबूतरी – राणा

मैत्रेयी पुष्पा ने अल्मा कबूतरी उपन्यास में पिछड़ी जनजातियों एवं उच्चवर्गीय लोगों के सम्पर्क से उत्पन्न सामाजिक विकास को चित्रित किया है। समाज से एकदम अलग–थलग रहकर अपराधों में प्रवृत्त कबूतरा जनजाति सदियों से अपना बौद्धिक एवं सामाजिक स्तर जहाँ का तहाँ बनाए हुए हैं। लेखिका ने उच्च वर्गीय समाज से जनजातियों को सम्बद्ध कर सामाजिक प्रवृत्ति का एक उपक्रम आयोजित किया है। अल्मा कबूतरी उपन्यास का प्रतिनायक राणा मंसाराम और कदमबाई की जारज संतान है। राणा का बचपन हर तरफ से निराश एवं रिक्तता से परिपूर्ण रहा। रामसिंह के

1. इदन्नमम्, पृ0 224
2. उपरिवत्, पृ0 230

आग्रह पर कदमबाई राणा को उसे सौंप देती है। रामसिंह अपनी पुत्री अल्मा के विवाह का तथा राणा की पढ़ाई का प्रलोभन देकर राणा को अपने साथ ले जाता है।

कदमबाई का शंकालु हृदय माँ की ममता एवं पुत्र बिछोह से उत्पन्न वेदना से अत्यधिक खिन्न तथा विषादग्रस्त हो जाता है। गोरामछिया पहुँचकर राणा अल्मा के सान्निध्य में रहकर सुखद आश्चर्य का अनुभव करता तथा रामसिंह के प्रगतिशील विचारों से अवगत होता है। रामसिंह राजा गंधर्व सेन के वृत्तांत से कबूतराओं के इतिहास को जोड़कर उसे सुनाता है।

मैत्रेयी ने राणा को सरल, सहज एवं भावुक नवयुवक के रूप में चित्रित किया है। अल्मा के सम्पर्क से यौवन सुलभ मादकता का संस्पर्श पाकर राणा का मन भीतर ही भीतर प्रफुल्लित हो उठता– 'दोनों बैठ गये। अल्मा ने उसके कंधे पर सिर टिका दिया। राणा का हाथ खुद–ब–खुद पीठ पर चला गया। बहुत प्यार, बहुत गुदगुदी, बहुत अच्छा लगा।'[1]

राणा रामसिंह के यहाँ पराधीनता का जीवन जीता है। किन्तु अल्मा का स्नेहशिक्त व्यवहार उसे आकर्षित किए रहता है। राणा रामसिंह की गोपनीय गतिविधियों से भी धीरे–धीरे अवगत हो जाता है, जबकि अल्मा रहस्यों को छिपाने का भरसक प्रयास करती है। गर्भपात करने की जड़ी–बूटी का अवैध प्रयोग एवं डकैतों तथा सिपाहियों से नाजायज सम्बन्ध, यह सब छिपाकर किया जाता है। राणा अपने प्रति तिरस्कार भाव देखकर पश्चाताप करता है और मन ही मन कहता है 'मैं तुम्हारी देहरी का कुत्ता हूँ क्या? या तुम लोग राजा–मंत्री हो? अपनों को ठुकरा कर चला आया और यहाँ शामिल न हो सका।'[2]

राणा रामसिंह के साहसिक किन्तु नितान्त अवैधानिक कार्यों से क्षुब्ध एवं भ्रमित रहा। डाकू और पुलिस का एक साथ मिलना, राणा के हृदय को भयाक्रांत कर देता है। राणा भय से व्याकुल हो अल्मा का साथ छोड़कर चुपचाप भाग जाता है।

1. अल्मा कबूतरी, पृ0 136
2. उपरिवत्, पृ0 186

राणा कमजोर दिल वाला युवक तो था ही, वहाँ की दहशतों से और भी बदहवास हो जाता है। किन्तु माँ की छत्रछाया में आकर उसका साहस जाग्रत हो जाता है। मैत्रेयी पुष्पा लिखती हैं– 'राणा अपनी मुट्ठियां कसकर, दाँत पीस कर बोला 'रामसिंह को पीस कर धर दूँगा। आए तो सही यहाँ। जान से खत्म करके मानूँगा, भले फाँसी पर चढ़ जाऊँ। धरती का बोझ तो कम हो जायेगा।'[1]

सारांशतः कहा जा सकता है कि अल्मा कबूतरी उपन्यास का प्रतिनायक राणा यदि एक ओर सीधा–सादा, सरल नवयुवक है तो दूसरी ओर अदम्य साहसी भी है। यदि अल्मा के आकर्षण में आबद्ध होकर प्रेम सम्बन्ध स्थापित करता है तो उसके पिता की संदेहास्पद प्रवृत्तियों से व्यथित होकर अल्मा का स्नेहित सम्बन्ध ठुकरा भी देता है। लेखिका ने राणा के चरित्र को रहस्यमय बनाकर पाठकीय आकर्षण में अभिवृद्धि की है तथा औपन्यासिक कथावस्तु को चिन्तन प्रधान बनाया है।

अगनपाखी – कुँ0 अजय सिंह

मैत्रेयी पुष्पा का 'अगनपाखी' उपन्यास सामन्तशाही प्रवृत्तियों से त्रस्त भारतीय नारी की अन्तर्व्यथा का जीता–जागता उदाहरण है। सामन्ती परिवार के जर, जोरू और जमीन वाले दांव–पेचों को मनोरंजक किस्सागोई की तरह वर्णित किया गया है। लेखिका ने कुँ0 अजय सिंह को प्रभावशाली प्रतिनायक के रूप में सृजित कर सामन्ती प्रथाओं को तथ्यात्मक रूप से चित्रित करने का प्रयास किया है। अजय सिंह की शान–शौकत, रुतबा, आतंकी परिवेश एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व का निदर्शन है चन्दर के इस कथन में– 'हम भी क्या करें? उसके जेठ के सामने हमारी घिघ्घी बँध जाती थी। कारण कि वे वैभव सम्पन्न हवेली के मालिक, ऊपर से रिश्ते में भारी, किसी तरह की गुस्ताखी माफ नहीं करेंगे, जो हमसे अनजाने ही गलती के रूप में हो जायेगी। वे हमें राजा सरीखे लगते।'[2] अजय सिंह उपन्यास की नायिका भुवन के जेठ हैं तथा प्रखर व्यक्तित्व के धनी भी हैं।

---

1. अल्मा कबूतरी, पृ0 214
2. अगनपाखी, पृ0 8

अजय सिंह का दोहरा व्यक्तित्व उनकी सामन्ती प्रवृत्ति को उजागर करता है। विराटा का नाई कहता है– 'अजय सिंह सतजुगी आदमी है। माँ का बड़ा आदर करते हैं। भइया को प्राण से प्यारा मानते हैं।'[1] जबकि अजय सिंह के छद्म रूप को भुवन इस तरह व्यक्त करती है– 'उसका बस चलता तो इस फरेबी कुँवर, जो उसे अपने पागल भाई के लिए ब्याह ले गया, को कोड़ों से पीटकर इस घर से बाहर कर देती। लेकिन समय था कि सिर नहीं उठाने दे रहा था।'[2] उक्त कथन अजय सिंह की अवसरवादी नीतियों को उजागर करता है।

अजय सिंह आतंक का पर्याय तो थे ही, अपना वर्चस्व स्थापित करने में भी माहिर थे। उनकी माँ अपनी मृत्यु के उपरांत जायदाद को लेकर चिन्तित रहती हैं, इसीलिए किसी भी परिस्थिति में विजय सिंह का विवाह अनिवार्य हो गया था। 'उसके मारे ही तो अजय सिंह को भइया का ब्याह करना पड़ा। अब वह जल्दी से जल्दी विजय सिंह की औलाद का मुँह इसलिए देखना चाहती है कि अपने ही सामने पगला बेटे का वारिस आ जाए तो तसल्ली बँधे। .... उसके मरे पीछे न मालूम क्या हो? बड़े बेटे से डरती है माँ।'[3]

अजय सिंह पारिवारिक अन्तर्कलह से उद्विग्न होकर कभी नाई को बुरा भला कहते हैं, कभी कामगारों को प्रताड़ित करते हैं, तो कभी चन्द्र प्रकाश को पारिवारिक एकता के लिए भुवन को समझाने का निर्देश देते हैं। कभी पुजारी के लड़के राजेश को कोसते हैं, तो कभी भुवन के चरित्र पर तीखा आक्षेप भी लगाते हैं। कभी जायदाद के लिए चक्रव्यूह की रचना करते हैं, तो कभी भुवन पर नियंत्रण के लिए तांत्रिक से प्रार्थना करते हैं। कभी विराटा में पुत्रेष्टि यज्ञ आयोजित कर यशस्वी धार्मिक होने का दम्भ पालते हैं, तो कभी धर्मपरायण होने का गौरवगान सुनकर अहम् को सन्तुष्ट करते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रतिनायक अजय सिंह के वैविध्य पूर्ण

1. अगनपाखी, पृ0 65
2. उपरिवत्, पृ0 78
3. उपरिवत्, पृ0 88

चरित्र को विश्लेषित करने में लेखिका को महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

झूलानट – सुमेर

'झूलानट' एक ऐसे परिवार की कहानी है, जो विभिन्न पारिवारिक एवं सामाजिक परिस्थितियों एवं समस्याओं से जूझता हुआ, तमाम प्रकार के ऊहापोह तथा उत्थान–पतन को झेलता हुआ शांतिपूर्ण जीवन जीने के लिए प्रतिबद्ध है, किन्तु अशांति एवं उथल–पुथल के दौर उसे शांत नहीं रहने देते। मैत्रेयी पुष्पा ने हिन्दी के इस विशिष्ट लघु उपन्यास में शीलो और बालकिशन की जटिल कहानी को बेहद आत्मीय और पारिवारिक सहजता के साथ उकेर कर नारी सशक्तीकरण को प्रमुखता से उभारने में सफलता प्राप्त की है। सुमेर को इस उपन्यास का प्रतिनायक माना जा सकता है। पुलिस विभाग में दीवान पद पर नियुक्त सुमेर अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट रहकर पत्नी से सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है। पत्नी शीलो, आधुनिक विचार सम्पन्न, स्वस्थ एवं सुन्दर युवती होते हुए भी पति के प्रति हार्दिक श्रद्धा भाव नहीं रख पाती।

सुमेर की माँ पुत्र तथा पुत्र वधू में सामंजस्य के लिए सुमेर पर दबाव डालती है। सुमेर अपनी असंतुष्टि का कारण स्पष्ट करता हुआ विवशता प्रकट करता है। 'आपे से बाहर मत होओ। ठंडे दिमाग से सोचो, तुम्हारी छः उंगलियों वाली कल्लू बहू मेरे दोस्त को रोटी परोसने ही आ जाती, तो वह कल के दिन मुझे बोलने न देता। कल्ले गोरे दो रंग .... पर तुम्हारी बहू तो नीली है, बैंगनी।'[1] स्पष्ट है कि शीलो के रंग से सुमेर खुश नहीं है तथा उसका व्यवहार भी पति को आकर्षित नहीं कर पाता।

सुमेर के हृदय में शीलो के प्रति घृणा–भाव चरम सीमा पर है। वह उसकी छाया से भी दूर रहना चाहता है। माँ के अनुनय–विनय के बावजूद भी सुमेर अपनी क्रोध मिश्रित घृणा प्रकट करता है। 'भइया ने दाँतों पर दाँत कसे। उनका गेहुँआ चेहरा तपे हुए लोहे–सा लाल .... गर्दन की नसें फूल गईं, सुनो अम्मा, मैं तमाशा करना नहीं चाहता, नहीं तो अभी हाल इस साली की चुटिया पकड़कर चौखट के बाहर तक

---

1. झूलानट, पृ0 37

घसीट लाता।'[1] सुमेर का यह कथन पुरुषवादी व्यवस्था के तहत् नारी वर्ग के प्रति अन्याय एवं शोषण को अनावृत करता है।

कालोपरांत सुमेर का हृदय परिवर्तन होता है। रघु बालकिशन से कहता है– 'तेरी अम्मा से बातें की हैं सुमेर भइया ने। गाँव में कुछ लोग कह रहे थे कि अपनी औरत को लिवाने आए हैं। अपनी गलती मानी है। काकी के आगे जार–जार रोये हैं। कहते हैं कि शीलो भौजी के भी पाँव छू लेंगे। सुनते ही शीलो भौजी ने उनके चरन छू लिए।'[2]

तदुपरांत सुमेर स्वभावतः उदार और सहृदय प्रतीत होता है। माँ तथा पत्नी के लिए साड़ियाँ लाता है। लेखिका ने सुमेर का हृदय परिवर्तन चित्रित कर कहानी को अप्रत्याशित मोड़ दिया है। सुमेर दूसरी पत्नी रखने के बाद मकान बनाने की नियति से अपने हिस्से की जमीन बेचना चाहता है। इसके लिए शीलो उसे अपनी सहमति न देकर उलझन में डाल देती है। अन्त में निराश होकर सुमेर अपनी ड्यूटी पर चला जाता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उपन्यास की कहानी मुख्यतः शीलो और बालकिशन की है, जिसमें सुमेर का चरित्र कथा विस्तार के लिए सृजित किया प्रतीत होता है।

विजन – मुकुल

उपन्यासों में कथानक को विस्तार देने में पात्रों का प्रमुख स्थान होता है। इनमें भी नायक और नायिका का मुख्य स्थान है। इनके अतिरिक्त विभिन्न औपन्यासिक घटनाओं का संयोजन, देश–काल–स्थिति का निदर्शन एवं फल प्राप्ति में सहायक के रूप में प्रतिनायक और प्रतिनायिका का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। विजन उपन्यास का प्रतिनायक मुकुल है। प्रतिनायिका आभा मुकुल को अपने बौद्धिक एवं सामाजिक

---

1. झूलानट, पृ0 50
2. उपरिवत्, पृ0 101

स्तर से गिरा हुआ समझती है। मुकुल उसे हॉस्टल में रखना चाहता है तथा अपने अभावों से जूझने की कहानी कहता है। आभा उसे असुविधाओं की स्मृतियों से प्राप्त सुख का संदर्भ देती है। तब मुकुल का वक्तव्य उसके अन्तर्मन में टीस उत्पन्न करता है। 'जालों में मुझे मत उलझाओ। तुम क्या चीज हो, राजा जनक की बेटी थी सीता, राम के साथ जंगल में गयी, मैं तो हॉस्टल की बात कर रहा हूँ। जहाँ जंगल नहीं, लोग रहते हैं, अच्छे से अच्छे घर के डॉक्टर।'[1]

आभा के कटुतापूर्ण संवादों से व्यथित डॉ0 मुकुल की सहनशक्ति जब जबाव दे जाती है, तब मुकुल उसे ताना देकर कहते हैं – 'हाँ, बिल्कुल! बड़े बाप की बेटी हेकड़ी दिखाएगी और हम सहते जायेंगे? कितनी मिन्नतें, कितनी विनती ..... महारानी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी।'[2] आभा की नीरस एवं चुभने वाली वाणी से मुकुल सदैव व्यथित रहते हैं।

मुकुल और आभा के वैचारिक मत वैभिन्य से उत्पन्न कलह से खिन्न होकर मुकुल उसके पिता से समझाने को कहते हैं। 'आप ही समझा सकते हैं इसको। यह मेरे परेंट्स के खिलाफ ही नहीं मेरे खिलाफ भी हो गई है। हर जगह तो मनचाही दुनिया नहीं मिलती।'[3] इसके उपरांत भी आभा का क्रोध बढ़ता ही रहा। तब विवश होकर मुकुल ने ताबड़तोड़ थप्पड़ें मारकर काबू में करने की कोशिश की। 'मुकुल अपने कुल की राज्यलक्ष्मी का नाम ले–लेकर साली, हरामजादी और हरामखोर जैसी गालियाँ उच्चारने में तनिक भी नहीं झिझके। मुट्ठियाँ अब भी बँधी थीं।'[4] इस हादसे के उपरांत आभा ने मुकुल से तलाक ले लिया।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मैत्रेयी ने विजन उपन्यास में स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों का गहराई से विवेचन किया है। मुकुल के रूप में प्राचीन भारतीय संस्कृति की

---

1. विजन, पृ0 110
2. उपरिवत्, पृ0 116
3. उपरिवत्, पृ0 119
4. उपरिवत्, पृ0 120

मान्यताओं को उकेरा है तो आभा के रूप में आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति को रेखांकित किया है। मुकुल प्रतिनायक के रूप में सफल पात्र है, जो नारी वर्चस्व की चुनौती को किंचिन्मात्र भी स्वीकार नहीं करता।

(ग) उपन्यासों में नायिका का स्वरूप :

बेतवा बहती रही – उर्वशी

मैत्रेयी पुष्पा का 'बेतवा बहती रही' उपन्यास उस क्षेत्र की व्यथा–कथा का मार्मिक विश्लेषण है– 'प्राचीन रूढ़ियाँ हैं जहाँ सनातन। अंधविश्वास है अन्तहीन। अशिक्षा का गहरा अंधियारा। शताब्दियों से चली आ रही अमानवीय यंत्रणायें। फिर जीने के लिए कोई किंचित ठौर खोजे भी तो कहाँ। हाँ, इन अँधेरी खोहों और खाइयों में कभी–कभी मुट्ठीभर किरणों के प्रतिबिम्ब का अहसास भी कितना कुछ नहीं दे जाता।'[1] कथन का तात्पर्य है कि बेतवा के किनारे बसे गाँवों का दीन–हीन समाज और उस समाज का हर दृष्टि से पिछड़ापन लेखिका को बाध्य करता है लिखने के लिए और उसका सुफल है 'बेतवा बहती रही' उपन्यास।

उपन्यास की नायिका 'उर्वशी' है, जिसे विधाता ने अनिंद्य रूप सौन्दर्य तो दिया, किन्तु उपहार में दरिद्रता भी दे दी। 'ज्यों–ज्यों उर्वशी बड़ी हुई, उसके अंग सौन्दर्य–सौष्ठव से निखर–सँवरकर दिखने लगे। कृपणता तो लक्ष्मी ने बरती थी। विधाता ने रूप तो उसे जी खोलकर दिया था।'[2]

उर्वशी सहज, सरल स्वभाव एवं कोमल हृदया है। सन्यासी की 'सीताराम' ध्वनि सुनकर उसका श्रद्धा समन्वित साधना–भाव जाग्रत हो जाता है। वह बैरागी की दूषित वासना–वृत्ति को परख नहीं पाती। 'उर्वशी का दान भाव जाग उठा। अनन्य श्रद्धा भक्ति उमड़ पड़ी। मन विभोर हो गया। जगदम्बे माई के मंदिर में रोज ही परिक्रमा करती थी। पूजा–पाठ में ध्यान लगाती थी। सुन्दर साधु को देखा तो लगा

---

1. बेतवा बहती रही, फ्लेप पर अंकित टिप्पणी
2. उपरिवत्, पृ0 14

साक्षात् भगवान आ गये हैं उसके द्वार .... उसकी तपस्या फलवती हुई।'[1]

उर्वशी सर्वदमन के साथ वैवाहिक बंधन में बँध जाती है। विवाह की विदा के बाद वह ससुराल राजगिरि आ जाती है, उस समय की उसकी अपरूपता का मनोहारी वर्णन दृष्टव्य है। 'उसके गिर्द मदभरी खुशबू गमकती थी। जहाँ होकर निकलती माहौल महक जाता। भरे–पूरे वदन से अलौकिक आभा फूटती–दमकता तेज। वह कुलाँचें मारती चाल क्या हुई? मंथर गति से चलती गजगामिनी।'[2] लेखिका ने विवाह के उपरांत उपलब्ध सौन्दर्य की विशिष्टता का मनोहारी वर्णन किया है।

मार्ग दुर्घटना में अचानक सर्वदमन की मृत्यु हो जाती है। उर्वशी का भरा–पूरा, फलता–फूलता जीवन–उपवन उजड़ जाता है। वह विधवा होकर दिन–रात सर्वदमन की स्मृतियों में खोई रहती है। उसका जीवन अशांत हो गया। उर्वशी के दुर्भाग्य का उल्लेख लेखिका के शब्दों में– 'ऊँचे पूरे कद की सुन्दर प्रतिमा–सी उर्वशी किस अपराध की भागीदार मानकर महादण्ड के लिए चुन ली नियति ने। अभिशप्त जीवन के अंधेरे सुरंग द्वार खुल गये .... किसने बध कर डाला उसके कपोत का . ....? आते–जाते भाव मन को रौंदते रहे। न धीरज, न शान्ति।'[3]

सर्वदमन की मृत्यु के उपरांत भाई अजीत का बार–बार उर्वशी से राजगिरि आने का आग्रह उसके मन में शंका उत्पन्न करता है। अचानक उमड़े स्नेह से वह स्तंभित हो जाती है। राजगिरि आकर अपनी माँ को सान्त्वना देती हुई कहती है– 'अम्मा, तुम इतनी न रोओ, आँखें फोड़ लोगी। हम तो रह लेंगे अम्मा, जिन्दगी तो काटनी ही है।'[4]

उर्वशी के साथ उदय के पिता जी कामुकतावश छेड़छाड़ करके अपनी वासना को तृप्त करना चाहते हैं। उर्वशी भय से काँप जाती है। किसी तरह अपना

---

1. बेतवा बहती रही, पृ0 18
2. उपरिवत्, पृ0 51–52
3. उपरिवत्, पृ0 65
4. उपरिवत्, पृ0 69

पीछा छुड़ाकर बदहवास स्थिति में चारपाई पर गिर जाती है। उसकी विषम स्थिति को लेखिका इन शब्दों में उद्घाटित करती है– 'इससे अच्छा है कि नदी में छलांग लगा दे ...... समा जाय बेतवा में। जिस जल–मिट्टी से जन्मी थी उसी गोद में फिर ....। इस जनम में जैसा भाग लिखाकर लाई, अगले जन्म में भी ऐसा ही हो बेतवा मइया ..... तो जनम मत देना। कौन सी भूल हो बैठी कि दो घड़ी चैन से नहीं काट पाती।'[1]

अन्त में सब तरह से पीड़ित, अपमानित और निराश होकर उर्वशी लम्बी बीमारी से ग्रसित हो जाती है। सभी इलाज असफल होते हैं। दाऊ के विशेष आग्रह पर उदय उर्वशी को सिरसा ले जाने की तैयारी करते हैं और रास्ते में ही उसके प्राण पखेरू उड़ जाते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'बेतवा बहती रही' उपन्यास की नायिका उर्वशी के चरित्र को मैत्रेयी पुष्पा ने सामाजिक और मानवीय जीवन मूल्यों से जोड़कर अपनी लोकधर्मिता का निर्वाह करते हुए वर्तमान युगीन वास्तविकता का सफल रेखांकन किया है।

चाक – सारंग

मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक' उपन्यास 'गाँव को रग–रेशों में जीता हुआ आत्मीय दस्तावेज – पुरुष समाज में स्त्री की अपनी पहचान का संकल्पपत्र'[2] है। लेखिका ने ब्रज प्रदेश के किसानों की कथा को उपन्यास के माध्यम से साहित्यिक वर्ग के समक्ष प्रस्तुत किया है। यह कथा न तो पूर्णतः राजनीति से सम्बद्ध है और न ही समाजशास्त्र से। मैत्रेयी पुष्पा का सम्पूर्ण कथा साहित्य नायिका प्रधान है। इनकी नायिकाएँ पुरुष वर्चस्व प्रधान सामाजिक व्यवस्था के विपरीत सबल और सटीक तर्क प्रस्तुत करती हैं। डॉ० सुरेश सिन्हा के अभिमतानुसार– 'नारी पात्रों में नायिका का प्रमुख स्थान होता है। वह सर्वप्रथम नारी पात्र होती है। सामान्यतः उपन्यास के नायक की प्रेयसी अथवा पत्नी

---

1. बेतवा बहती रही, पृ० 98–99
2. फ्लेप पर अंकित टिप्पणी

ही नायिका कहलाती है।'[1]

डॉ0 सुरेश सिन्हा की उक्त परिभाषा के आधार पर 'चाक' उपन्यास की नायिका रंजीत की पत्नी सारंग को माना जा सकता है। सारंग उत्साही एवं साहसिक प्रवृत्ति की नायिका है। रेशम के कत्ल के बाद सभी रंजीत का साथ छोड़ जाते हैं। गलत लोगों का विश्वास करके रंजीत पश्चाताप करता है किन्तु जंग के सिपाही की भाँति निरुत्साहित नहीं होता। सारंग पति का उत्साहवर्द्धन करती हुई कहती है– 'सच रंजीत, तुमसे मैंने ऐसी ही आशाएँ बाँधी हैं। तुम इतने बहादुर हो। मुझे जीत नहीं, तुम्हारी बहादुरी चाहिए। आज मैंने जाना हौसले की कीमत क्या होती है? ..... तुम्हारी उम्मीदें तो नहीं हारी न? हारा तो वह है जिसका मन मर जाता है, जिसकी लड़ने की इच्छा खत्म हो जाती है।'[2] उक्त पंक्तियों में नायिका सारंग का अप्रतिम साहस एवं आत्मिक सहयोग अभिव्यंजित है।

सारंग स्वतंत्रता की पक्षधर है। परतंत्र जीवन उसे अव्यावहारिक लगता है। उसे गुरुकुल पढ़ने के लिए भेजा गया था, जहाँ विद्यार्थियों का नियंत्रण में रहना अनिवार्य था। अनियंत्रित होने के कारण उसे गुरुकुल से निकाल दिया गया था। उसकी प्रतिक्रिया सारंग के शब्दों में 'मगर वह कैद ...... बड़ा फाटक, चार दीवारी पर ठुके काँच के टुकड़े किसी चोर–उचक्के के कारण नहीं, हमारी आजादी को लहूलुहान करने के हथियार थे। .... इस गुरुकुल की पहली शर्त लड़कियों के जीवन को कठोर नियमों की रस्सी से बाँधना।'[3]

सारंग प्राचीन रूढ़ियों एवं परम्पराओं का प्रबल विरोध करती है। श्रीधर मास्टर का स्नेहिल सहयोग उसे मिलता है। चंदन के प्रवेश के सम्बन्ध में रजिस्टर खोलने के लिए जब श्रीधर मास्टर असमर्थता व्यक्त करते हैं, तब सारंग अपने प्रेम का वास्ता देकर उसे कर्त्तव्य बोध का उपदेश देती हुई अपनी विवशता प्रकट करती है।

1. हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना – डॉ0 सुरेश सिन्हा, पृ0 59
2. चाक, पृ0 38
3. उपरिवत्, पृ0 88

'मेरा कुछ भी तो तुमसे छिपा नहीं है श्रीधर! तुम वही तो हो, जिसने मेरे दुख को मेरी आँखों में घूंघट के भीतर ही पढ़ लिया था। मैं आज तुम्हें दोष देने नहीं आई, बस यह कहना चाहती हूँ कि मेरे पाँवों में पड़ी बेड़ियों की झनझनाहट को तुम सुनकर भी अनसुना कर रहे हो, या बहरे हो गए हो?'[1] यहाँ सारंग श्रीधर को एक प्रेमी की प्रेम पूर्ण व्यावहारिकताओं को पूर्ण करने की सत्प्रेरणा देती है तथा ऐसा न कर पाने के लिए उपालम्भ भी देती है।

सारंग यदि कोमल ह्रदय नारी है तो कठोरतम् आक्रोश की प्रतिमूर्ति भी है। सारंग का श्रीधर मास्टर से प्रेम करना, रंजीत और सारंग के पारस्परिक प्रेम में खटास उत्पन्न कर देता है। रंजीत को शराब पीने की लत पड़ गई है। वह कुछ भी कह उठता है। वह क्षुब्ध होकर कहती है– 'तुम सोचते हो कुछ भी करोगे और मैं डर के मारे कुछ भी नहीं कहूँगी? तुम से डरती ही रहूँगी? तुम दुमुँहा हो गये हो तो मैं तुम्हारा फन कुचल न डालूँगी? ...... क्यों किया अपने कुकर्मों में शामिल? बोलो, क्यों? दो जबाब?'[2] इस कथन में नायिका सारंग का आक्रोशित व्यक्तित्व झलक रहा है। नारी पुरुष वर्चस्व का डटकर मुकाबला करने को तैयार है।

अंत में कहा जा सकता है कि 'चाक' की नायिका सारंग के चरित्र को लेखिका ने रंजीत और श्रीधर के मध्य लाकर जटिलतम बना दिया है। वह यदि प्रेरणा शक्ति, स्वेच्छाचारी तथा रहस्यमयी किरदार का निर्वाह करती है तो दूसरी ओर कोमल प्रेम की प्रवर्तक, आक्रोश की साक्षात् प्रतिमूर्ति तथा प्राचीन परम्पराओं की उपेक्षा करने वाली नारी भी है। सारंग का अनूठा चरित्र मैत्रेयी की सफल सर्जना कहा जा सकता है।

इदन्नमम – मंदाकिनी

मैत्रेयी पुष्पा ने 'इदन्नमम' उपन्यास में तीन पीढ़ियों की कहानी को बेहद सहज ढंग से कथाबद्ध किया है। उथल–पुथल से भरपूर इस कहानी को लेखिका ने

---

1. चाक, पृ0 185
2. उपरिवत्, पृ0 290

बड़े ही आत्मीयता के साथ संजोकर औपन्यासिक कलाकौशल का परिचय दिया है। मंदाकिनी इस उपन्यास की नायिका है। उसके चित्रण में लेखिका ने दोहरे संघर्ष को दर्शाया है—एक उसके औरत होने का तथा दूसरा वंचितों के अधिकारों का। डॉ0 राजेन्द्र यादव के शब्दों में— 'गहरी संवेदना और भावनात्मक लगाव से लिखी गई यह कहानी बदलते, उभरते 'अंचल' की यातनाओं, हार—जीतों की एक निर्व्याज गवाही है ...... पठनीय और रोचक।'[1] कथन से तात्पर्य यह है कि 'इदन्नमम' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने बुन्देलखण्ड के क्षेत्र विशेष की स्थितियों, परिस्थितियों एवं समस्याओं को रोचकता के साथ उकेरने का भरपूर प्रयास किया है।

मंदाकिनी मकरंद के प्रेम में आसक्त है। आँखें मिलते ही दोनों के हृदय प्रेम रस में सराबोर हो जाते हैं। एक—दूसरे को प्यार और शरारत भरी दृष्टि से देखकर प्रेम विह्वल होते हैं। मकरंद के अलग होते ही मंदा की दृष्टि व्याकुलता से उसका पिष्टपेषण करती है। वे जाने लगे। उनकी पीठ पर चिपके चले जा रहे हैं बेचैन पगलाये से दो नयन। पुलकित हो उठा है रोम—रोम। मुस्कराने लगा है भीतर समाया सब कुछ। ....जब तक निगाह में छाये रहे, पिछियाती रही मंदा।'[2] मंदा के प्रेमी हृदय में अपूर्व साहस संजोया है लेखिका ने। बऊ उसे पुलिस का भय दिखाकर सावधान करती हैं, तब उसकी प्रतिक्रिया व्यक्त होकर साहस का परिचय देती है। 'बऊ, ऐसे ही ले जायेगी पुलिस? मैं पुलिस वालों के हाथ आऊँगी? मेरे मुँह पर लिखा है कि मैं मंदा हूँ? स्कूल के पास खड़ी किसी भी लड़की को कैसे बाँध ले जायेगी पुलिस?'[3]

नायिका मंदाकिनी युवती तो है ही, अनुपम सुन्दरी भी है। जब वह अपनी पक्यात के दिन वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होती है, तब उसका सौन्दर्य और निखर जाता है। 'मंदाकिनी की सीपी सी आँखों में अनुपम चमक है। भवों के धनुष पलकों के ऊपर खिंचे हैं। कजरारी चवल पुतलियाँ थिर नहीं है। पान की पीक रची है होठों पर।

---

1. इदन्नमम की भूमिका – 'अथ दीपोभव' से – डॉ0 राजेन्द्र यादव
2. इदन्नमम, पृ0 48
2. उपरिवत्, पृ0 51

उबटन से देह गमक रही है। साँवली मंदा में रंभा अप्सरा प्रवेश कर गई हो जैसे।'[1] मंदा का सौन्दर्य सम्पन्न होना ही उसके लिए अभिशाप बनकर कैलाश मामा को उसके साथ बलात्कार करने को प्रेरित करता है। यह घटना मंदा के जीवन की दुःखद घटना है, जो उसे पुरुषवादी व्यवस्था के विरोध के लिए उकसाती है।

मंदाकिनी समाज कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ग्राम सोनपुरा में सरकारी अस्पताल खुलवाने की पेशकश करती है। इस प्रक्रिया में उसे सी0एम0ओ0 तथा बी0डी0ओ0 जैसे भ्रष्ट अधिकारियों की शोषण प्रवृत्ति से अवगत होना पड़ता है। अपनी कर्मठता के बल पर जैसे–तैसे अस्पताल लाने में वह सफल हो पाती है, फिर डॉक्टर की नियुक्ति के लिए उसे दिन–रात कठिन प्रयास करने पड़ते हैं। अन्ततः इस अभियान में उसे सफलता मिलती है।

मंदा समाज कल्याण में व्यस्त रहकर अपने व्यक्तिगत सुखों को तिलांजलि देती है और धार्मिक भावना से अनुप्राणित होकर जोगिन की तरह दिनचर्या अपना लेती है। एकादशी का व्रत रखती है। थाली में घी का दीपक जलाकर पूजा–अर्चना करती है। इन पवित्र आयोजनों में उसकी समाज कल्याण भावना ही निहित है। यहाँ तक कि वह विवाह न करने का मन बना लेती है।

निर्धन मजदूरों की बेकारी से दुखी होकर मंदा क्रेशर मालिकों से संघर्ष लेती है। अभिलाख उग्र होकर उसके साथ दुव्यर्वहार करता है– 'अभिलाख ने आव देखा न ताव, लपककर मंदाकिनी के बाल पकड़कर झंझोड़ डाले। साली–हरामजादी कहकर गालियाँ दी। बाँहें पकड़कर ऐंठ डालीं और जहाँ हाथ गया तहाँ ..... ठौर देखा न कुठौर। टूट पड़ा भूखे भेड़िये की तरह।'[2] इन विरोधों में उसका कोई व्यक्तिगत स्वार्थ न होकर केवल समाज कल्याण कामना ही थी।

क्रेशर के मजदूरों का शोषण देखकर वह क्षुब्ध रहती है। मजदूर मंदा की प्रेरणा से हड़ताल करते हैं। राउत और अभिलाख में भयंकर लड़ाई के दौरान सिर फूटे

1. इदन्नमम, पृ0 106
2. उपरिवत्, पृ0 199

तथा लोगों की बाहें टूटीं। मंदा मध्यस्थता करने पहुँच गई। 'बीच–बचाव की असफल चेष्टा में कई चोटें खा गयी मंदाकिनी। किसी ने पत्थर मारा निशाना बाँधकर। खून बह निकला माथे से। उसे घुमेर सी आने लगी। माथा पकड़कर बैठ गयी वहीं।'[1] इन समस्त घटनाओं में निहित है उसका परस्वार्थ एवं समाज कल्याण।

अंत में कहा जा सकता है कि मैत्रेयी ने 'इदन्नमम' में मंदाकिनी के चरित्र का सृजन कर अपने कौशल को चरम परिणति दी है। यह उनका श्रेष्ठ उपन्यास है और मंदा उनकी समस्त गुणों से विभूषित श्रेष्ठ नायिका है।

अल्मा कबूतरी – कदमबाई

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' के शीर्षक से यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि इसकी नायिका अल्मा को ही माना जाय। किन्तु उपन्यास के आधे से अधिक हिस्से पर कदमबाई छाई रहती है जो कज्जा वर्ग के प्रतिनिधि, जमींदार मंसाराम नायक की रखैल के रूप में चित्रित है। अतः कदमबाई को ही नायिका मानना अधिक उचित है। डॉ0 रामशरण जोशी भी मानते हैं कि 'अल्मा के किरदार चित्रण में लेखिका 'फास्ट ट्रेक' पर चलती दिखाई देती है। यही वजह है कि अल्मा निजी द्वन्द्वों, सामाजिक अन्तर्विरोधों और बदलाव प्रक्रिया के संभावित संकटों या उपलब्धियों को पूरी शिद्दत के साथ स्वर देने में कमजोर प्रतीत होती है।'[2] उक्त मत से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि समीक्षक अल्मा को नायिका मानने से असहमत है।

आगे जोशी जी अल्मा को नायिका स्वीकार करने में एक और आपत्ति प्रकट करते हैं कि– 'नायिका अल्मा से कहीं ज्यादा प्रभाव छोड़ती हैं अनपढ़ कदमबाई और भूरीबाई। यदि इन दोनों पात्रों को क्लाइमेक्स तक ले जाया जाता तो शायद उपन्यास 'ऐतिहासिक' बन जाता।'[3]

उपर्युक्त निर्णयात्मक मतों के अनुसार कदमबाई को उपन्यास की नायिका

---

1. इदन्नमम, पृ0 286
2. हंस, सितम्बर 2000, पृ0 89
3. उपरिवत्, पृ0 89

स्वीकार करने में कोई गुरेज नहीं होना चाहिए।

कदमबाई मंसाराम की ओर प्रेमासक्त होकर उनकी चाहत में व्याकुल रहती है। मंसाराम उसके पति जंगलिया को तमाम प्रलोभन देते हैं। यहाँ तक कि घर बनाने के लिए जमीन देने का आश्वासन भी देते हैं। इसका प्रभाव कदमबाई पर पड़ता है। लेखिका के शब्दों में– 'कदमबाई जवान और भरे पूरे सॉवल वर्ण मंसाराम को अपने वीर देवता की तरह पूजने लगी है। अहसान तले दबी लड़की वरदान भी चाहती है। पति–पत्नी उनके मुरीद हो गये, भाँप लिया मंसाराम ने।'[1]

मंसाराम ने कदमबाई का यौन–शोषण किया और परिणामस्वरूप राणा का अवैध संतान के रूप में जन्म हुआ। किन्तु कदमबाई के विचार नारी जागरण के प्रतीक बनकर उभरते हैं। वह मालिया से कहती है कि– 'बिरवा रोपा जा रहा था। रोपने वाला न जंगलिया था न मंसाराम। धरती–सी हरी–भरी एक औरत थी, वह जिसका भी अंश साधना चाहती थी, साध लिया। समय बताएगा कि यह बच्चा न कज्जा है न कबूतरा। आदमी है बस।'[2] कदमबाई जाति भेद से ऊपर उठकर प्रगतिशील भावनाओं को स्पष्ट करती है।

मैत्रेयी पुष्पा ने कदमबाई की साहसिकता का परिचय देते हुए लिखा है कि– 'कोई और कबूतरी होती तो मंसाराम का बालक अपने पेट से पैदा होने देती? रूखरी खाकर खेत में बहा आती। कदमबाई हिम्मत से लबालब है जबकि जानती यह भी है कि मंसाराम ने जो कहा है, सच नहीं कहा।'[3]

अपने लड़के राणा को शिष्टाचार सिखाने में उसे क्रोध का सहारा लेना पड़ता है। कभी–कभी वह बर्बर भी हो जाती है। उसमें सौतिया डाह भी परिस्थितिवश प्रस्फुटित होता है। 'मंसाराम की स्त्री का चेहरा याद आते ही कदमबाई का अपना चेहरा लाल भभूका हो गया। माना कि मंसाराम की औरत ने कदमबाई से कभी कुछ

---

1. अल्मा कबूतरी, पृ0 16
2. उपरिवत्, पृ0 35
3. उपरिवत्, पृ0 54

नहीं कहा, लेकिन अपने आदमी की पहरेदारी तो वह कबूतरी से बचाने के लिए ही करती है।'[1]

कदमबाई अपने परिवेश के यथार्थ से भी भलीभांति परिचित है। वह सपने देखती है किन्तु यह भी नहीं भूलती कि कज्जा समाज उसकी अवैध संतान को कभी स्वीकार नहीं करेगा। राणा को उद्बोधन देती वह कहती है– 'ये जुग–जुग के दगाबाज ..... राणा, तू इनकी संगत करके अपने धंधे की ईमानदारी से भी जाएगा। तू यह न समझना कि हम इनमें मिलकर कज्जा हो जायेंगे। हम तो इनकी बोली–वानी बोलते हुए भी इनसे अलग हैं। इनकी रोटी और हमारी टुक्क अलग नहीं, पर भूख–प्यास की कीमत अलग है।'[2]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मैत्रेयी ने इस उपन्यास में संरक्षण और शोषण की संस्कृति को प्रमुखता देते हुए कज्जा और कबूतरा वर्ग की खाई को उजागर किया है। उपन्यास के अंतिम आधे भाग की नायिका अल्मा है। मैत्रेयी ने कदमबाई की संघर्ष गाथा को बीच में ही छोड़कर अल्मा के चरित्र को उभारने में सफलता प्राप्त की है। अतः कहा जा सकता है कि उपन्यास में दो नायिकाएँ हैं। किन्तु कदमबाई को ही यदि प्रमुख नायिका माना जाय तो सर्वथा उचित ही होगा।

अगनपाखी – भुवन मोहिनी

'अगनपाखी' उपन्यास की नायिका भुवन मोहिनी अपने मौसेरे भाई चन्दर से आत्मिक लगाव रखती है। चन्दर के पिता भुवन का विवाह विराटा के कुँवर विजय सिंह से इस शर्त पर करवा देते हैं कि कुँवर अजय सिंह (विजय सिंह के बड़े भाई) सिफारिश करके चन्दर की नौकरी लगवा दें। विवाह के बाद भुवन अपने रोगी पति से एवं परिवारीजनों के व्यवहार से असंतुष्ट होकर चन्दर को मदद के लिए अथवा मन की पीर व्यक्त करने के लिए बुलाती है। चिट्ठी के प्रारम्भ की भाषा इस प्रकार थी– 'तुम मेरे सासरे वालों से डरते हो। वे क्या शेर हैं जो तुम्हें खा जायेंगे? डर के मारे नहीं आते,

1. अल्मा कबूतरी, पृ0 63
2. उपरिवत्, पृ0 63

मत आओ। तुम सोचते हो मैं अकेली घबराकर अपनी बान से हट जाऊँगी, याद नहीं हो तो याद कर लेना, मेरी माँ मुझे शिला कहती थीं।'[1] पत्र की भाषा से सिद्ध होता है कि भुवन मोहिनी यदि निर्भीक तथा साहसी स्वभाव की है, तो हठी एवं कठोर व्यक्तित्व की समर्थक भी है।

भुवन इकहरे शरीर, बड़ी–बड़ी आँखें, नुकीली ठोड़ी, गोल नथुनों और साँवली सूरत वाली सामान्य लड़की थी। व्यावहारिक कुशलता, अपार सहनशक्ति एवं सहजता उसके जीवन के मुख्य आचरण थे। निर्भीक होकर स्पष्ट बात कहना उसके लिए सहज कार्य था। दुनिया की रीति के सम्बन्ध में उसकी टिप्पणी दृष्टव्य है– 'शाबाश! देखा न, जो दुनिया की रीति को तोड़ता नहीं, उसी के लिए दुनिया की रीति होती है।'[2] तात्पर्य यह है कि दुनिया के सारे नियम, कानून, बंधन तथा अनुशासन उसी के लिए हैं जो उनका उल्लंघन नहीं करता, जो बंधन को स्वीकार नहीं करता, उसके लिए कोई बंधन नहीं होता।

भुवन मोहिनी ससुराल से लौटकर, अपने पागल पति के कारण व्यथित होकर अपनी आन्तरिक वेदना का बयान करती है। गहनों का लोभ भी उसे विचलित नहीं करता। वह निडर होकर कहती है– 'ये गहने धरो चाहे लौटा दो, लाखों के होंगे। पर एक खरी बात सुन लो, भले टका की सही। मैं वहाँ जाने वाली नहीं।'[3]

वह आगे नानी के समझाने पर कहती है– 'सुख साकों पर बिक जाऊँ? पागल की सेवा करना सुख साके होता है तो किसी पागलखाने में नौकरी कर लेती।'[4]

उक्त पंक्तियों से भुवन की अन्तर्वेदना रूपायित हुई है तथा उसकी संकोच हीनता भी उजागर हुई है।

भुवन के चरित्रांकन द्वारा लेखिका ने पुरुष वर्चस्व वाली सामाजिक व्यवस्था

---

1. अगनपाखी, पृ0 8
2. उपरिवत्, पृ0 23
3. उपरिवत्, पृ0 71
4. उपरिवत्, पृ0 72

को कठोर चुनौती देकर ललकारा है। प्राचीन नारी, जो घर की चहारदीवारी में बंद रहकर सारे जुल्म सहती थी, अब खुलकर अपना प्रतिरोध व्यक्त करने में समर्थ है। ससुराल के समबन्ध में भुवन का कथन– 'मैं बहू का व्रत पूरी तरह निभा रही हूँ, कोताही करूँ तो सास की साँस रुकने लगती है। जेठ को बेचैनी होने लगती है, नौकरों में भगदड़ पड़ जाती है। वे समझते हैं बहुओं की पीठ पर लदा परिवार बहुओं के कसमसाते ही ओंधे मुँह गिरेगा। हवेली ढहने की खबर तो नहीं सुनी तुमने? सब कुछ जस का तस है। बताओ मेरी कहाँ कमी है।'[1] यह भुवन अपने प्रबल तर्कों से अपने को निर्दोष सिद्ध करने का सफल प्रयास करती है और ससुराल की दुर्नीतियों का भंडाफोड़ भी करती है।

चन्दर भुवन से मिलने जाता है। कहता है, देखने चला आया हूँ। उसके पश्चात् भुवन के कथन में मनोवैज्ञानिकता का समावेश देखते ही बनता है। भुवन कहती है– 'कभी मिलना भी कैसा दुखदाई बन जाता है चन्दर कि लगता है मिलना ही नरक है, जिसमें तरह–तरह के कष्ट होते हैं।'[2]

अन्त में कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने 'अगनपाखी' उपन्यास में भुवन के चरित्र में निर्भीकता, स्पष्टवादिता, स्वाभिमान, सहनशीलता, प्रेम–भावना, प्रतिरोध क्षमता, स्वाधीनता तथा संकोचहीनता आदि गुणों का समावेश कर उसे श्रेष्ठ चरित्र की कोटि में समायोजित किया है।

झूलानट – शीलो

'झूलानट' उपन्यास की नायिका 'गाँव की साधारण सी औरत है शीलो – न बहुत सुन्दर और न बहुत सुघड़ .... लगभग अनपढ़ – न उसने मनोविज्ञान पढ़ा है, न समाजशास्त्र जानती है। राजनीति और स्त्री–विमर्श की भाषा का भी उसे पता नहीं है। पति उसकी छाया से भागता है। मगर तिरस्कार, अपमान और उपेक्षा की यह मार न शीलो को कुएँ–बावड़ी की ओर धकेलती है और न आग लगाकर छुटकारा पाने

1. अगनपाखी, पृ0 72
2. उपरिवत्, पृ0 106

की ओर। वशीकरण के सारे तीर–तरकश टूट जाने के बाद उसके पास रह जाता है जीने का निःशब्द संकल्प और श्रम की ताकत – एक अडिग धैर्य और स्त्री होने की जिजीविषा।'[1]

डॉ0 राजेन्द्र यादव की उपर्युक्त टिप्पणी 'झूलानट' उपन्यास की नायिका शीलो के सम्पूर्ण चरित्र का विश्लेषण करती है। पति के द्वारा अपमानित और तिरस्कृत होकर भी शीलो पति–परायण है। पति के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करने की भावना उसके मन में सुदृढ़ है। बालकिशन (देवर) के सान्त्वना देने पर उसके हृदय की व्यथा फूट पड़ती है– 'लला बालकिशन, जनी की जिन्दगी .... और फिर अपने आदमी की आँखों से उतरी औरत! हे मेरे संकर महादेव, दुस्मन की गति न करना ऐसी। मैं तुम्हारे भइया की लातों को फूल–पान समझकर माथे से लगाने को तैयार हूँ, लेकिन इस घर में दर तो पाऊँ।'[2] हीनभावना से पीड़ित शीलो परित्यक्ता की भाँति अपने हृदय की वेदना अभिव्यक्त करती है तथा बालकिशन की सहानुभूति अर्जित करती है।

पति (सुमेर) के संसर्ग बिना उपन्यास की नायिका शीलो स्वयं को खिन्न, अन्यमनस्क तथा उदास अनुभव करती हुई बालकिशन के प्रति आकर्षित होती है। वह चाहती है कि बालकिशन सज–धज के साथ रहकर अच्छा लगे– 'मैं तो यह कहती हूँ कि हल हाँकते हो, इसका मतलब यह तो नहीं कि बूढ़े हो गए। धोती–कुर्ता ही पहनोगे। रघु के पिताजी को देख लो, नाती–नतूलों के हो गए, शिब्बू की बेलबॉटम पैंट कसे रहते हैं। चिरगाँव से कमीज–पैंट काहे नहीं सिलवा लाते। और देखो, मूँड़ पर उस्तरा फिरवाने की जरूरत नहीं। हमें नहीं सुहाती घुटी मुड़ी।'[3] इस कथन के माध्यम से लेखिका ने नारी हृदय का मनोवैज्ञानिक चित्रण करते हुए सौन्दर्य के प्रति सहज आकर्षण व्यक्त किया है।

मैत्रेयी ने शीलो के वैविध्यपूर्ण चरित्रांकन से पाठकीय बुद्धि को दिग्भ्रमित

---

1. झूलानट की भूमिका से
2. झूलानट, पृ0 44–45
3. उपरिवत्, पृ0 89

कर दिया है। पति की अनुपस्थिति में बालकिशन के प्रति नारी सुलभ आकर्षण उसके व्यवहार से फूट पड़ता है तथा पति की मौजूदगी में वह बालकिशन के प्रति तटस्थ भाव का प्रदर्शन करती है। उसका अन्तर्मन झूले पर के नट के समान कभी बालकिशन और कभी सुमेर के प्रति अस्थिर आकर्षण अभिव्यक्त करता है। सुमेर के यह कहने पर कि तुम्हारे बालकिशन से पति–पत्नी के सम्बन्ध है, वह अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है– 'काये के पति–पत्नी, बाबू जी? वह अबोध मन का अच्छा है, सो बस ...... तुम्हारी ब्याहता होने के बाद भी .... पर छोड़ो उस बात की। बालकिशन तो ऐसे ही है हमारे लिए, जैसे तुम्हारे लिए तुम्हारी दूसरी औरत। बिन ब्याही, मन मर्जी की।'[1]

शीलो का पल–पल में परिवर्तित व्यवहार उसकी मानसिक चंचलता को स्पष्ट करता है। कभी माँ की सेविका के रूप में, तो कभी माँ की अनुदार अवज्ञा में प्रत्यक्ष रूप से सचेष्ट। कभी बालकिशन को स्नेह–पाश में आबद्ध करने का कृत्रिम प्रयास, तो कभी उपेक्षा भाव का प्रदर्शन। कभी पारिवारिक सामाजिक नियमों को स्वीकारने जैसा आचरण तो कभी स्वेच्छाचारिणी बनकर रूढ़ियों एवं परम्पराओं का अडिग भाव से उल्लंघन। तात्पर्य यह है कि लेखिका ने शीलो के चरित्र चित्रण को विविधता से संश्लिष्ट कर मनोवैज्ञानिकता को समावेशित किया है।

डॉ0 राजेन्द्र यादव के शब्दों में– 'झूलानट की शीलो हिन्दी उपन्यास के कुछ न भूले जा सकने वाले चरित्रों में एक है। बेहद आत्मीय, पारिवारिक सहजता के साथ मैत्रेयी ने इस जटिल कहानी की नायिका शीलो और उसकी स्त्री शक्ति को फोकस किया है .....।'[2]

विजन – नेहा

'विजन' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने जीवन की गूढ़ सच्चाईयों तथा अनदेखे, अनसुलझे पहलुओं को रोजमर्रा की सादगी और सहजता से चित्रित किया है। इस उपन्यास की नायिका डॉ0 नेहा है, जो 'शरण आई होस्पिटल' के मालिक

1. झूलानट, पृ0 112
2. झूलानट की भूमिका से

डॉ0 आर0पी0 शरण के बेटे डॉ0 अजय की पत्नी है। नेहा चिकित्सा क्षेत्र में अति आधुनिक नवीनतम तकनीकों की पक्षधर है। प्राचीन चिकित्सा पद्धति में आमूल परिवर्तन लाने को कृत संकल्प डॉ0 नेहा शरण अपने पति के मन और मस्तिष्क में नवीन चेतना का संचार और उद्बोधन करती रहती है।

डॉ0 नेहा अपने अत्याधुनिक तकनीकी ज्ञान पर पूर्ण आश्वस्त है। डॉ0 शरण टाँके रहित आपरेशन के लिए 'फेको' मशीन लाने वाले हैं। नेहा को इस बात पर हँसी आती है कि बिना जानकारी के अजय इस मशीन का उपयोग कर भी पायेंगे? 'डॉ0 नेहा को अनचाहे ही हँसी आ गई। साड़ी के हरे पल्ले से होंठ ढक लिए। मगर हँसी को छिपाने की व्यर्थ कोशिश .... बाप बेटा दोनों जारी हैं। टेक्नीक आती नहीं। सीखना आसान है क्या? अच्छे–अच्छों से स्टेप्स गड़बड़ा जाते हैं।'[1]

डॉ0 शरण अनुशासनप्रिय है। अनुशासन रखने के लिए कठोर शब्दों का प्रयोग करते हैं। नेहा बरदास्त नहीं कर पाती तथा अजय से आशा करती है कि अजय अपने पापा का प्रतिरोध करें। नेहा की मानसिक खिन्नता निम्न पंक्तियों में दृष्टव्य है– 'प्रेमी पति इतना नहीं समझते कि उनके घर में पत्नी से कोई कुछ कहे, वह उसे पति का ही कहा मानती है। कठोर और कँटीली बातें किसी कोने से आएँ, उसका कलेजा खण्ड–खण्ड हो जाता है। ऐसा न होता तो औरतें जिसे अपना समझती हैं, उस अग्नि साक्षी किये पति से शिकायत करने की सजा क्यों पाती।?'[2] यहाँ लेखिका ने अजय के तटस्थ रहने पर नेहा की मानसिक क्षुब्धता को स्पष्ट किया है।

नेहा का आत्मविश्वास उसके स्वगत कथन से प्रकट हो रहा है। 'मैं एक अच्छे सर्जन की खासियतों से लैस हूँ। आपरेशन के आधुनिक स्टैप्स मेरी उंगलियों पर हैं। स्मरण शक्ति अचूक है। फिर क्या कमी है डॉ0 आर0पी0 शरण की आँखों में कि डॉ0 नेहा का दर्जा अजय के मुकाबले दोयम है? क्यों?'[3] उक्त कथन के माध्यम से नेहा अपने मूल्यांकन के प्रति असंतोष प्रकट करती है।

1. विजन, पृ0 15
2. उपरिवत्, पृ0 19
3. उपरिवत्, पृ0 42

डॉ0 नेहा, नारियों की दयनीय स्थिति को उजागर करने वाले महादेवी वर्मा के कथन को उद्धृत करती हुई उसके प्रति अपनी मूक सहमति भी प्रकट करती है। 'न स्त्री को अपने जीवन का कोई लक्ष्य साधने का अधिकार है, न समाज द्वारा निर्धारित विधान के विरूद्ध कुछ कहने का।'[1] इस कथन के माध्यम से डॉ0 नेहा युगों से चली आ रही नारी की पराधीनता को उजागर करती है तथा नारी जागरण का सचेष्ट होकर समर्थन करती है।

डॉ0 अजय आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं और समृद्ध भी। वर्तमान युग में आर्थिक सम्पन्नता सफल जीवन की कुंजी मानी जाती है। किन्तु नेहा के मन में समृद्धि के प्रति अरुचि के संस्कार गहरी जड़ें जमाये हैं। 'मैं क्या जानती नहीं कि पैसा आदमी को बल ही नहीं देता, मनमाना रवैया भी मुहैया कराता है, जिसके जरिये मनचाहे और मूर्खतापूर्ण फैसले लिये जा सकते हैं।'[2]

नेहा, आई हॉस्पिटल की दिनचर्या में आपरेशन के लिए तैयार है किन्तु अपनी अवमानना तथा डॉ0 शरण के तानाशाही रवैये से असंतुष्ट होकर आँख सुन्न करने की सुई लगाने से मना कर देती है। अजय के आग्रह करने पर नेहा कहती है– 'तुम पर तरस आता है अजय, दया। कोई ऐसा होगा कि पिता की अंध भक्ति करें और योग्यता का दावा माने? तुम्हारे पिता तो पिता तक नहीं, गुरुजन क्या होंगे? जिसमें इंसानी जज्बात का कतरा तक नहीं, वह पिता का दिल रखता होगा, संदेह है।'[3]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उपन्यास की नायिका डॉ0 नेहा सम्पूर्ण कथानक में प्रारम्भ से अंत तक अपने वर्चस्व एवं अवमानना को लेकर मानसिक पशोपेश में रही। उसके स्वाभिमान को यदि अभिमान संज्ञा से अभिहित किया जाए तो कुछ भी अनुचित नहीं होगा। उसे अपनी उच्च चिकित्सीय शिक्षा के प्रति अभिमान है और इसी से परिवार एवं पति के साथ वह अपना तालमेल नहीं बिठा पाती।

---

1. विजन, पृ0 79
2. उपरिवत्, पृ0 139
3. उपरिवत्, पृ0 50

(घ) उपन्यासों में प्रतिनायिका का स्वरूप :

बेतवा बहती रही – मीरा

'बेतवा बहती रही' उपन्यास का सशक्त एवं प्रभावशाली चरित्र 'मीरा' बाल्यावस्था में अपनी माँ के आकस्मिक निधनोपरांत पालन–पोषणार्थ राजगिरि भेज दी गई अपने नाना–नानी के पास। नाना–नानी नहीं रहे। किन्तु बचपन की सुखद स्मृतियों को अपने मानस में संजोये वह यदा–कदा अन्यमनस्क हो जाती है। बेतवा के किनारे उर्वशी के साथ की गई अल्हड़ अठखेलियाँ, चुहलबाजियाँ उसकी स्मृति में घुमड़कर समय की तीव्र गति का अहसास कराती हैं। उर्वशी उसकी एकमात्र ऐसी सखी है जिसे छोड़कर वह अपने पैतृक गाँव चन्दनपुर नहीं जाना चाहती। 'वहाँ दादी हैं, पिता जी है। विजय और उदय भइया छुट्टियों में आते हैं। पर कोई हम–उम्र सखी–सहेली तो नहीं, न कोई सगी–सहोदरा। जब भी गई है, अनचीन्ही सी धरती लगी है वहाँ की उजाड़ ..... वीरान–भरी।'[1]

मीरा का कोमल और स्नेहिल अन्तर्मन उर्वशी के पाणिग्रहण के उपरान्त भी उसे छोड़ने को तैयार नहीं है। बिछड़ने की आशंका से दोनों बिलख–बिलख कर रोने लगती हैं– 'बड़ी–बूढ़ियां चिल्ला रही थीं बैठ के नहीं रोओ बेटा। ब्याह में बैठकें नहीं रोऔ जात। ....अरी बहनें तो फिरऊ ब्याह–कारज, सावन–तीज मिल जातीं। पर गुइयाँ–सखी नहीं मिल पाऊतीं आपस में। एक आऊत है तौ दूसरी चल देत।'[2]

मीरा अध्ययन के प्रति सावधान तथा शैक्षणिक सफलता के प्रति सचेष्ट थी। पिता शराब के शौकीन, कन्या को पढ़ाने के पक्ष में नहीं थे। फिर भी झाँसी रहकर उसने शिक्षार्जन किया, नाना के प्रयास से।

उर्वशी के पति सर्वदमन की दुर्घटनाग्रस्त होकर मृत्यु हो जाती है। उर्वशी के वैधव्य का करारा आघात मीरा को लगा। एक और आघात मीरा को उस समय

---

1. बेतवा बहती रही, पृ0 15
2. उपरिवत्, पृ0 41

अन्तर्व्यथित करता है, जब मीरा के पिता बरजोर सिंह उसकी सहेली उर्वशी को कामुक भावना से पकड़ लेते हैं। यह स्थिति दोनों के लिए असह्य हो जाती है। अपयश और अन्तर्कलह के भय से मीरा मन ही मन सब कुछ चुपचाप सह लेती है। उसकी सहनशक्ति ही उसे महान बनाती है। उसकी गम्भीरता उदासी में परिणत हो गई। 'अजब तरह का त्रास था— विचित्र सा दुःख .... कहने—सुनने को कुछ शेष न था। घर—आँगन सब अपरिचित हो उठे और घर वाले किसी दूसरी दुनिया के बाशिन्दे लगते थे।'[1]

मीरा का अपने पिता बरजोर सिंह के प्रति घृणा भाव उनके दुराचरणों के कारण था। विषम स्थिति यह थी कि उसकी बाल—सहेली उर्वशी उसके पिता की पत्नी के रूप में घर में ही मौजूद थी। इन परिस्थितियों के वैषम्य में अपने को स्थिर रखना बड़ा दुष्कर कार्य था।

भाई विजय की मृत्यु का भयंकर आघात मीरा की उदासी और बढ़ा देता है। गौने के ठीक पूर्व ही उसका असमय काल—कवलित हो जाना मीरा के लिए घोर निराशा का कारण बनता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में लेखिका ने मीरा और उर्वशी के जीवन में दुःखों की सरिता का बेतवा की तरह अनवरत् प्रवाहित होना दिखाकर समय के शाश्वत प्रवाह को रूपायित करने का सफल आयोजन किया है। मीरा गम्भीर एवं चिन्तनशील नारी है, जो आघातों से न घबड़ाती है, न दूर कहीं पलायन करती है। वरन् साहस व धैर्य पूर्वक मूक रहकर सहती रहती है।

चाक – रेशम

'चाक' उपन्यास की नायिका सारंग है तथा सारंग से उम्र में पाँच वर्ष छोटी उसकी बुआ की लड़की रेशम है प्रतिनायिका। औपन्यासिक घटनाक्रम में रेशम अधिक समय तक मौजूद नहीं रहती, किन्तु पाठक के मन पर स्थायी, अमिट प्रभाव छोड़ जाती

1. बेतवा बहती रही, पृ0 124

है। मजबूत कद–काठी एवं सुगठित वदन तथा गुलाबी दूध सी उज्जवल चमकदार छवि वाला चेहरा, कुल मिलाकर रेशम का व्यक्तित्व लावण्ययुक्त, मृदुल एवं आकर्षक है। 'गुलाब की सी रंगत, नाक–आँख से तराशी हुई सुन्दर गूजरी, हथौड़ों की सी गढ़ी हुई देह की उठान। कहाँ ले जाती इतना रूप?'[1]

रेशम का पति करमवीर फौज में हवलदार था। जब भी छुट्टी पर आता 'दुनिया भर की चीजों से बैग भर लाता। तेल–अतर, स्नो–पाउडर, धोती–साड़ी, बॉडी–ब्लाउज।'[2] तात्पर्य है कि करमवीर रेशम के सौन्दर्य से मुग्ध होकर उसकी झोली में अतिशय प्रेम उँड़ेल देता था। रेशम भी करमवीर को तन–मन से चाहकर स्नेह–सरोवर में आकण्ठ मग्न रहती। वह कहती– 'मैं दिन रात का भेद मानूँ तो कितने दिन गिनूँ? मैं तो पल–छिन गिनती हूँ। जितनी संग रहूँ, अंग लगूँ, घड़ी छोटी ही पड़ती जाती है। प्यासा आदमी गागर भर पानी पी भी ले तब क्या दूसरे दिन प्यास नहीं लगेगी? चातकी सी प्यासी रहती हूँ इसी बूँद की आस में।'[3]

अचानक विषैली शराब पीने से करमवीर की मृत्यु हो जाती है। रेशम विधवा हो जाती है। किन्तु वह हृदय से विधवा के आचारों–विचारों एवं रीतियों–नीतियों को स्वीकार नहीं करती, वरन् विरोध में अकाट्य तर्क प्रस्तुत करती है। 'उसने तो केवल इतना माना कि पेड़ हरा–भरा रहे तो फूल–फल क्यों नहीं लगेंगे? ऐसा हो सकता है कि ऋतु आए और बल्लरी लता फूले नहीं? औरत ऋतुमती हो और आग दहके नहीं?'[4] तात्पर्य यह है कि रेशम प्राचीन रूढ़ियों एवं परम्पराओं का सक्षम विरोध तो करती ही है, उन्हें आधारहीन सिद्ध करते हुए अकाट्य तर्क भी प्रस्तुत करती है।

रेशम गर्भवती हो जाती है। अवैध सन्तान को अपने उदर में पालकर भी रेशम अपनी मर्जी की मालिक है। किसी भी दण्ड विधान को स्वीकार न करने वाली

---

1. चाक, पृ0 17
2. उपरिवत्, पृ0 17
3. उपरिवत्, पृ0 18
4. उपरिवत्, पृ0 18

मुँहजोर औरत अपनी सास हुकुम कौर को मुँह तोड़ जबाव देती है। 'अम्मा तुम तो बिरथा ही दाँत किटकिटा रही हो। तुम्हारे पूत की चिता ठण्डी हो जाने से क्या मेरी देह की आग बुझ जाती। जीतों–मरतों का भेद भी भूल गई तुम? बेटा के संग मैं भी मरी मान ली?'[1]

रेशम सास के कोप की निरर्थकता सिद्ध करने तथा पूरी तरह अवहेलना और उपेक्षा पूर्ण तिरस्कार करके चुपचाप अपने कोठे में सो जाती है। सास विवश होकर विनम्रता के साथ आग्रह करती है कि वह अपने जेठ डोरिया को पति रूप में स्वीकार कर ले। रेशम फटकारती हुई कहती है। 'अम्मा, तुम बूढ़ी होकर ऐसी बातें करती हो? पिता समान जेठ का हाथ पकड़ लूँ? फिर जो बच्चे का बाप है ही नहीं, उसको बाप का दर्जा क्यों दूँ? ऐसा ही करना होता तो तुम्हारे बड़े पूत का ही बालक करती। तुम मुझे तरह–तरह से घेरकर अपने बेटे की मौत का बदला मत लो।'[2]

रेशम की सास उसके मर्दाने स्वभाव पर कुपित होकर अभिशाप देकर कहती है– 'तू स्वाहा हो जायेगी।' रेशम का प्रत्युत्तर उसकी स्वच्छन्द मानसिकता का परिचायक है। 'हो जाने दो स्वाहा। मैं तो भसम होने को ही बैठी हूँ, पर मेरा बालक जी–जाग जाएगा। मैं जो पुन्न कर रही हूँ अम्मा, उसे पाप न कहो। बिना बाप के बालक को भगवान पाप मानता तो कुँआरी–विधवा की कोख सुखा डालता।'[3]

हुकुम कौर औषधि खिलाकर रेशम का गर्भपात कराना चाहती है। रेशम के इन्कार करने पर दोनों में गुत्थम–गुत्था हो जाता है। रेशम अपने हृदय की पीड़ा सारंग को सुनाती है। 'बीबी, वे लोग कभी मुझे देवी बनाते हैं तो कभी राच्छसी। .... मैं दोनों तरह की नहीं। हाड़–मांस की बनी लुगाई, जिसके पेट में बालक है, उस पर या तो जल–दूध ढारेंगे या फिर .... मैं कहती हूँ तुम मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो। मेरी छातियों का दूध मत सुखाओ। रंडी सास, अपने पूत को तो रोती है और मेरे बालक

---

1. चाक, पृ० 19
2. उपरिवत्, पृ० 19
3. उपरिवत्, पृ० 19–20

की हत्या पर उतारू है।'[1] इस कथन से रेशम की तार्किक शक्ति तो उजागर होती ही है, साथ ही अपूर्व प्रतिरोध क्षमता भी उद्घाटित होती है।

रेशम अपूर्व साहसी महिला है। सारंग उसे समझाती हुई डोरिया का भय दिखाती है। रेशम शेरनी सी दहाड़ती हुई कहती है– 'डोरिया जैसे देखे हैं तीन सौ साठ। उँगली छूकर तो देखे, भडुआ को कच्चा चबा जाऊँगी।'[2] ऐसे ही उसका साहस उस समय देखते बनता है, जब रेशम की चचिया सास उसके गर्भ को लेकर रंजीत पर दोषारोपित करती है। रेशम सास का गला पकड़ कर कहती है कि 'दारी, ठौर कर दूँगी। लेना तो मेरे जीजा का नाम! ले! ले! ले! खानगी, दूसरी सांस नहीं आएगी, मेरी हथेलियों में से, हाँ।'[3]

रेशम थान सिह की भी चाल समझती है। थान सिंह का मत है कि रेशम डोरिया को पति मान ले। रेशम सोचती है कि थान सिंह को इससे दोहरा लाभ है। एक तो मजबूत कद–काठी का भाई और दूसरी उसकी जोरू, दो सेवक मिल जायेंगे। रेशम किसी की भी बात नहीं मानती और उसका स्वेच्छाचारिणी बनकर रहना किसी को पसन्द नहीं आया। परिणामतः कण्डों के विटा (विधिवत् लगाया गया कण्डों का ढेर) को गिराकर डोरिया रेशम की हत्या कर देता है। उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उपन्यास की प्रतिनायिका रेशम के माध्यम से लेखिका ने युगों से चली आ रही रूढ़ियों एवं परम्पराओं का सक्षम विरोध दर्शाया है। इसके लिए मैत्रेयी ने रेशम में स्वाभिमान, तर्क, साहस तथा अपने सिद्धान्त पर अडिग रहने का संकल्प सृजित किया है।

इदन्नमम – कुसुमा

मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' उपन्यास में बुन्देलखण्ड के ग्राम्यांचल की रूढ़ियों,

1. चाक, पृ0 21
2. उपरिवत्, पृ0 22
3. उपरिवत्, पृ0 24

परम्पराओं, आकांक्षाओं–ईर्ष्याओं के साथ एक–दूसरे के अधिकारों को झपटते, कुचलते, चूसते और न्याय की रक्षा में तत्पर लोगों की कहानी को रोचक ढंग से रेखांकित किया गया है। उपन्यास में कुसुमा को प्रतिनायिका के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। लेखिका ने उसे अनपढ़, परित्यक्ता, विपन्न परिवार में उत्पन्न किन्तु सुघर एवं आकर्षक नाक–नक्श वाली प्रतिनायिका के रूप में प्रस्तुत किया है। उपन्यास की नायिका मंदाकिनी उसके मनमोहक सौन्दर्य को देखकर अभिभूत हो जाती है। 'उनकी बिन्दी चमक रही है। छोटे से माथे से लेकर पतली नाक तक प्रसन्नता छलकी है। ठोड़ी में गड्ढा गहरा गया है। होंठ मुस्करा रहे हैं। आँखों के बीच काजल हँस रहा है। पलकें चपलता से झपक रही हैं।'[1] तात्पर्य यह है कि कुसुमा सब प्रकार के नारी सुलभ आकर्षणों से युक्त है। फिर भी परित्यक्ता है। दादा देवगढ़ वाली कक्को से प्रश्न करते हैं। 'देवगढ़वारी, कद–काठी से लम्बी, इकहरे बदन की बहू। गेहुँआ रंगत है, काली–साँवरी भी नहीं। नैन–नकस भी बुरे नहीं बताता कोई। फिर गोविन्द सिंह के मोंड़ा यशपाल के मन काहे नहीं भरी? काहे को त्यागा कुसुमा को?'[2] यहाँ भी कुसुमा की सुन्दर एवं आकर्षक छवि के संकेत विद्यमान हैं।

कुसुमा मंदाकिनी की शुभचिन्तक एवं सहयोगी तो है ही, युवावस्था की उद्दाम वासना से पीड़ित एवं कुंठित भी है। हृदय में उत्पन्न अतृप्त इच्छाओं के वेग को संकोचपूर्ण विवशता से व्याकुल होकर मंदा के समक्ष अभिव्यक्त करती है। 'बिन्नू यह जल निरमल है या मैला? पवित्तर है या पाप का? इमरत है कि बिस? नहीं जानते हम। तुम्हारी रामायन में लिखा भी होगा तो लिखने वाला यह नहीं जानता कि आदमी जब प्यासा होता है, प्यास से मर रहा होता है, तो कहाँ देखता है, कहाँ सोचता है, कहाँ करता है कोई भेद? कोई अन्तर?'[3] कुसुमा अमर सिंह दाऊ से सहबास कर अपनी वासना को तृप्त करने में कुछ भी अनुचित नहीं समझती। जब प्यासा प्यास से मर रहा होता है तो वह यह अन्तर नहीं कर पाता कि जल निर्मल है या दूषित। अमर सिंह

1. इदन्नमम, पृ0 70
2. उपरिवत्, पृ0 68
3. उपरिवत्, पृ0 81

दाऊ कुसुमा के ज्येष्ठ है और ज्येष्ठ से वासनात्मक सम्पर्क सामाजिक मान्यताओं के विपरीत है, फिर भी वह अपने को रोक नहीं पाती।

कुसुमा अपनी ह्रदय की बेचैनी तथा अपने को संयमित न कर पाने की मजबूरी व्यक्त करती हुई कहती है– 'अकेले थे हम मंदा! निपट अकेले। झुलस–झुलस कर मर रहे थे। प्यासे तड़प रहे थे। दाऊ जू आ गये हमारे बीहड़ में। सीतल झरना होकें बहने लगे। उजाड़ जिन्दगानी के टूटे–फूटे मंदिर में ज्यों पिरभू देवता का रूप धरकर खड़े हो गये हों। बस ....सोई हम उनकी सरन में जा गिरे जोगिन–तपसिन की तरह।'[1] इस कथन के माध्यम से लेखिका ने प्राचीन मान्यताओं को तोड़कर शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति को येन–केन–प्रकारेण उचित ठहराया है।

कुसुमा की रुचि धार्मिक कृत्यों में है, इसी से वह स्नानोपरांत तुलसी मइया पर जल चढ़ाती है, सूर्य को अर्ध्य देती है, कार्तिक स्नान करती है, गनेस, तुलसी और गौरा–पार्वती के भजन गाती है तथा कार्तिक स्नान में माह भर तक झूठ बोलने से परहेज करती है।

कुसुमा के ह्रदय में दाऊ के प्रति प्रेम का सरोवर लहरा रहा है। दाऊ रुग्ण होकर शैया पर पड़े हैं। कुसुमा उनकी सेवा में तन–मन से समर्पित रहकर उन्हें हर प्रकार से तृप्त रखने की इच्छा रखती है और अपने अनन्य प्रेम का परिचय देती है। 'बिन्नू तुमसे क्या छिपा है? सब जानती हो। हमारा सत–असत्, पाप–पुन्न। पर इतेक जरूर है कि दाऊ जू के लाने अमर–जल की तरह हम हर रात हाजिर रहते हैं। वे तिरपित रहें। अफरे रहें। हाँफते–काँपते जीते रहे।। और क्या चाहिए हमें?'[2]

कुसुमा गर्भिणी है। यशपाल (पति) से प्रताड़ित है। दाऊ अंतिम क्षणों से गुजर रहे हैं। परिवार के समक्ष कुसुमा कठघरे में खड़ी है। लेखिका ने उसके अन्तर्मन की कचोट को बेवशी को तथा औरत होने की व्यथा को किस तरह व्यक्त किया है। देखिये– 'सबने जबाव माँगा है जीवन का, उसके चरित्र का, उसके पाप–पुण्य का,

---

1. इदन्नमम, पृ0 81
2. उपरिवत्, पृ0 118

उसके सही–गलत का, जायज–नाजायज का। कुसुमा किस–किसको उत्तर दे, किस–किस को हिसाब दे अपने तरसते, तड़पते जीवन का?'[1]

कुसुमा दाऊ के दिवंगत होने पर बच्चा लेकर मायके चली जाती है। कुछ दिन बाद लौटकर अपमान सहती है। उसकी सौत (छोटी) कटु शब्दों का प्रहार करती है तो क्रोधित होकर कुसुमा तीखा प्रश्न करती है– 'हमारे कुँवर तो नहीं हैं ब्याहे की संतान, यह बात तो हम गा–गाकर कह रहे हैं। पर बैन तुम अपनों का सबूत दे दो कि तुम्हारे सात फिरे खसम से ही जायन्दा हैं। कोई कसौटी हो, तो दिखा दो घिसकर।'[2] कुसुमा को उसका पति यशपाल, उसकी सास तथा उसकी सपत्नी (छोटी) सभी उलाहने दे–देकर, विविध यातनायें–पीड़ायें उत्पन्न कर उसका जीना मुश्किल कर देते हैं। केवल ससुर अपनी संवेदना प्रकट कर उसे साहस एवं धैर्य प्रदान करते हैं। मंदाकिनी भी उसे सान्त्वना देती है। फिर भी कुसुमा पर्याप्त धैर्य रखती है और अपना जीवन गुजारती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कुसुमा दाऊ के सम्पर्क से अवैध शिशु को जन्म तो देती है किन्तु इसे वह जरा भी अनुचित या अकरणीय नहीं मानती। सामाजिक मान्यताओं को परिस्थितिजन्य विवशता से तोड़ने में वह किंचिंमात्र भी संकोच नहीं करती। लेखिका ने कुसुमा के चरित्र को सृजित कर नवीन प्रगतिशील विचारधारा को आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है और प्राचीन अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों का निर्भय होकर खण्डन किया है। मैत्रेयी के अधिकांश नारी पात्र संकटों की आग में झुलसते हुए, कठोरतम परिस्थितियों का सामना करते हुए तथा विविध संत्रास झेलते हुए भी नारी–जागरण की गुहार लगाते रहते हैं और भावी समाज को उद्‌बोधन देते हुए अकल्पनीय संचेतना से उत्प्रेरित करते रहते हैं।

अल्मा कबूतरी – अल्मा

मैत्रेयी पुष्पा के 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास के पूर्वार्द्ध में कदमबाई सम्पूर्ण

---

1. इदन्नमम, पृ0 123
2. उपरिवत्, पृ0 145

घटनाचक्र में छाई रहती है। इसलिए कदमबाई ही उपन्यास की नायिका है। उपन्यास के उत्तरार्द्ध में अल्मा कबूतरी का सभी स्थितियों में हस्तक्षेप तो है ही, समस्त घटनाचक्र में प्रभावशाली वर्चस्व भी है। अतः अल्मा को उपन्यास की प्रतिनायिका स्वीकार किया जा सकता है।

अल्मा का व्यक्तित्व समाज के बदलते परिवेश के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। वह परिस्थितियों के थपेड़ों को सहती हुई बेवश और लाचार नारी का जीवन जीती है और प्रत्येक स्थिति में समस्याओं से जूझती हुई समझौता करती है। अन्त में अल्मा कबूतरी से बदलते–बदलते अल्मा शास्त्री होकर राजनीति में हस्तक्षेप भी करती है।

प्रारम्भ में अल्मा सुगठित देह एवं आकर्षक नाक–नक्श वाली युवती है। राणा उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है तथा साथ–साथ पति–पत्नी की तरह रहने का सुयोग प्राप्त कर भी उसे अपनी जीवनसंगिनी नहीं बना पाता।

अल्मा राणा को हृदय से प्रेम करती थी। जब परिस्थितिवश रामसिंह ने अपनी पुत्री अल्मा को दातार नगर के दुर्जन कबूतरा के यहाँ कुछ रूपये लेकर बेंच दिया। अल्मा व्यथित होकर अपने प्रेमी राणा को मोघिया गुरु के हाथों प्रेम पत्र भेजती है। उसके प्रेम की पराकाष्ठा पत्र की भाषा से स्पष्ट होती है। "मेरे राणा, तुम चले गये। लगता है कि तुम यहीं हो। आहट सी आस–पास रहती है। यादों से दुःख कभी बढ़ता है तो कभी घटता है। तमाम तस्वीरें मन में फड़फड़ाती हैं।"[1]

अल्मा एक बेवश और निराश युवती परिस्थितिवश सूरजभान के कठोर नियंत्रण में पहुँचा दी जाती है। उसके हाथ–पैर नित्य रात में बाँध दिये जाते हैं। अल्मा नेताओं की वासनात्मक भूख मिटाने के लिए तैयार की जाती है। धीरज उसे एक पर्चा देकर राणा की विरह–वेदना का आभास कराता है।

अल्मा साहस की प्रतिमूर्ति थी। धीरज के सहयोग से सूरजभान की कैद से

---

1. अल्मा कबूतरी, पृ0 242

भाग जाने में सफल अल्मा नाथू मेहतर के साथ श्रीराम शास्त्री के यहाँ पहुँच जाती है। अल्मा को कहीं राणा याद आता है तो कहीं धीरज बाबू। बाद में श्रीराम शास्त्री राजनैतिक विजय पाकर मंत्री बन जाते हैं और डाकू बेटा सिंह उन्हें गोली मार देता है। अतः श्रीराम शास्त्री के अन्तिम संस्कार के बाद मुख्यमंत्री और राज्यपाल की सहानुभूति पाकर अल्मा को विधानसभा का उम्मीदवार बनाया जाता है।

सारांशतः कहा जा सकता है कि अल्मा के जीवन में विविध उतार-चढ़ावों का आयोजन कर लेखिका उसे सफल प्रतिनायिका के रूप में प्रतिष्ठित करती है। यदि राणा को नायक मानकर चला जाए तो अल्मा को इस उपन्यास की नायिका मानने में कोई संकोच नहीं होगा।

झूलानट – कान्ता

'झूलानट' उपन्यास की नायिका शीलो है। लेखिका ने शीलो की छोटी बहन कान्ता को प्रतिनायिका के रूप में चित्रित कर उपन्यास के उपसंहार को मनोरंजक बना दिया है। मैत्रेयी ने कान्ता की स्थिति एवं परिस्थिति को, यौवनावेग की चंचलता को तथा उसके लुभावने मादक सौन्दर्य को चित्रित करते हुए कहा है– 'चलायमान चित्त की लड़की, बड़ी बहन अमावस तो कान्ता पूरणमासी। पूरणमासी पहली बार बहन की ससुराल आई थी। अपने यहाँ बाप–भाइयों का दबदबा, भौजाइयों की निगरानी, माँ की नेक सलाह के चलते सिर झुकाकर घर में रहना पड़ता था।'[1] कथन से कान्ता के सौन्दर्य की व्यंजना के साथ पारिवारिक मर्यादा भी उजागर हुई है।

बहन की ससुराल आकर कान्ता स्वतंत्र होकर विचरण करने लगी तथा नवयुवकों के आकर्षण का केन्द्र बन गई। 'जीजाओं के बीच अपने को पाया, तो सारे बंधन टूट गये। आजादी की खुशी में रपटती, देह मचलती। .... फिर क्या दुपट्टा छाती छोड़कर गर्दन में लिपटा रहता। बेधड़क मुहल्ले के दौरे पर निकलती अतर लगाकर।'[2]

---

1. झूलानट, पृ0 119
2. उपरिवत्, पृ0 120

कान्ता के प्रति आकर्षित होकर 'सत्ते' बार–बार चक्कर लगाता है तथा अपने प्रेम को 'शाइरी' लिखकर प्रकट करता है। सत्ते के चरित्र पर आक्षेप लगने पर उसकी माँ बचाव पक्ष को अख्तियार कर कहती है– 'हमारे लड़का से बेरुत फाग खेल गई। कहती थी– जीजा चुरियाँ पहनकर बैठ जाओ। इस गाँव के जवान लड़के तो सालियों को भी बहन मानकर राखी बँधवा सकते हैं।'[1] कथन से कान्ता की स्वच्छन्द वृत्ति एवं युवकों की वासना को उकसाने की प्रवृत्ति प्रकट हो रही है।

कान्ता के चारित्रिक दोषों को परिलक्षित कर कीचड़ उछालने का काम करता है, विमली जिज्जी का यह कथन– 'रंडी हथेली पर सूरजमुखी धरे फिरेगी, तो बारी के भौंरो का क्या दोस? लो, हमने तो पूरी चीर हरन लीला नहीं, चीर खुद ही उतार फेंकते देखी है।'[2] इसके अतिरिक्त बालकिशन की माँ का यह आक्षेप भी कान्ता की चलायमान मानसिकता को प्रकट करता है– 'अकेला सत्ते नहीं, गली भर के जीजा नौत रही है यह छछूँदर। अगहन महीना में क्वार मास ..... कुतिया। बालकिसन, इसको इसके घर पहुँचा बेटा, हमारा घर बेसाखाना नहीं।'[3]

नित्य का सान्निध्य एवं सहचर्य कान्ता को जीजा बालकिशन की तरफ आकर्षित होने को मजबूर कर देता है। वह डाबर आँवला तेल, अगूँठा पट्टा की चप्पल तथा फिल्मी किताब की माँग कर जीजा को लुभाती है तथा खाना परोसते समय कहती है– 'कान्ता जिद करने लगी, झिझक खोलकर बोली– तुम्हें मेरी कसम है जीजा, एक कौर मेरे हाथ से।'[4] किन्तु यह प्रेमपूर्ण परिहास कान्ता को तथा बालकिशन को करारा झटका देता है, शीलो देख लेती है तथा दोनों के साथ खुलकर दुर्व्यवहार करती है। अपयश एवं चारित्रिक पतन से बचने के लिए शीलो कान्ता को बालकिशन के साथ न भेजकर रघु के पिता जी के साथ उसके घर यथोचित भेंट देकर पहुँचा देती है।

---

1. झूलानट, पृ0 121
2. उपरिवत्, पृ0 121
3. उपरिवत्, पृ0 121
4. उपरिवत्, पृ0 123

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कान्ता का वासनात्मक रवैया शीलो और बालकिशन के प्रेम में अन्तर उत्पन्न करता है। कुल मिलाकर कान्ता की स्वच्छन्दता, प्रेमाकुलता, कामुकता, आकर्षक रूप सज्जा, उन्मुक्तता तथा मन की चंचलता, नारी स्वातंत्र्य के रूप में वर्णित है। लेखिका ने कान्ता के चारित्रिक अवयवों का सृजन कर उसकी स्वच्छन्द मानसिक वृत्ति को परिलक्षित किया है।

विजन – आभा

डॉ0 आभा दी को 'विजन' उपन्यास की प्रतिनायिका माना जा सकता है। मैत्रेयी पुष्पा ने चारित्रिक सृजन की दृष्टि से आभा दी के चरित्र को निखारने का भरसक प्रयास किया है। आभा दी में मंदाकिनी का कठोर परिश्रम, रेशमा की स्वतंत्र अस्मिता, भूरी बाई की कर्मठता, अल्मा की जिजीविषा और सारंग की जुझारू शक्ति का समवेत स्वरूप सृजित हुआ है और इसी से वह विजन में नई सदी की सशक्त नारी के रूप में उभरी है। पुरुष वर्चस्व के विरोध में आभा दी के विचार देखने योग्य हैं। 'कमाल है, अपनी शारीरिक ताकत के बल पर पुरुष हर अधिकार छीन लेना चाहता है। दुनिया का कर्त्ताधर्ता बना हुआ है। देख रहे हैं कि थोड़े से मेल डाक्टर्स ने औरतों की, मरीजों की और छोटे लोगों की दर चींटी जैसी कर दी है। ऐसा अब नहीं होता रहेगा।'[1] यहाँ प्रतिनायिका आभा दी का पितृ सत्तात्मक व्यवस्था के प्रति मुखर विरोध झलकता रहा है।

आभा दी नेहा के लिए प्रेरणा स्रोत का काम करती हैं। वे महादेवी वर्मा की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर डॉ0 नेहा को युगों–युगों से चली आ रही नारी की परवशता का बोध कराती है। 'न स्त्री को अपने जीवन का कोई लक्ष्य साधने का अधिकार है, न समाज द्वारा निर्धारित विधान के विरूद्ध कुछ कहने का। वातावरण भी धीरे–धीरे उसे ऐसे ही मूक आज्ञा पालन के लिए प्रस्तुत करता रहता है।'[2]

---

1. विजन, पृ0 44
2. उपरिवत्, पृ0 79

डॉ0 रोहिणी अग्रवाल आभा दी के प्रखर व्यक्तित्व और उनकी निर्णायक क्षमता की प्रशंसा करती हुई कहती हैं– 'आभा दी ..... दो टूक फैसला लेती हैं, इस पार या उस पार। मुकुल या अपना प्रोफेसनल कैरियर? भौतिक आनन्द या स्वाभिमान? सुरक्षित गृहस्थी या नीर व एकाकी तलाक?'[1] आभा दी का विचार है कि वे प्यार के तंतु जुड़ते ही क्यों हैं, जिन्हें टूटना होता है। पुरुष और स्त्री के मन की बनावट के पार्थक्य की घोषणा करती है। डॉ0 आभा दी– 'पुरुष का मन स्त्री के मन से अलग बनावट का होता है। अपने आप सम्बन्ध काट लिया तो खोज खबर तक नहीं, कोई दूसरा प्रगाढ़ता बढ़ाता, मुकुल से आभा नाम की स्त्री को दूर ले जाने लगता, तो वे उसका खून कर देते, अपनी स्त्री को वापस लेकर मानते। कैसा विरोधाभास है, कैसा अन्तर्विरोध?'[2] इस कथन से लेखिका का आशय है कि पुरुष पुरुष को तो चुनौती देता है किन्तु सम्बन्धों को नहीं। यदि वह ऐसा न करता तो नारी वर्ग पर अपना वर्चस्व स्थापित कर समाज का संचालक न बन पाता।

आभा दी और मुकुल के निजी सम्बन्ध वर्चस्व की होड़ में दिन–प्रतिदिन ह्रासोन्मुखी होते गये। आभा के मन का क्षोभ नितान्त अधैर्य और बेचैनी में बदलता गया। पत्र लिखने के लिए कागज–कलम उठाती, किन्तु प्रवाहित अश्रुधारा के कारण कागज इस लायक नहीं रहता। फोन पर हाथ जाता तो काँपने लगता। वह पश्चाताप करती और मुकुल के पास जाने की सोचते ही मुकुल की यंत्रणा की स्मृति अन्तर्मन को झकझोर देती है।

अन्त में निराश होकर आत्महत्या के तरीकों का चिन्तन करती हुई आभा दी मुकुल को तलाक से संदर्भित पत्र लिख देती है। 'तुम कह सकते हो, हमारे मुल्क में पति अपनी पत्नी को पीट देता है, तो नया क्या है? मानती हूँ, तमाम स्त्रियाँ मार खाते–खाते जीवन–यापन करती रहती हैं, मगर मुकुल, न तो तुम उन पतियों जैसे

---

1. विजन : सिक्स बाई सिक्स अन्तर्दृष्टि,डॉ0 रोहिणी अग्रवाल, हंस, अप्रैल 2002, पृ086
2. विजन, पृ0 121–122

जाहिल थे, न मैं ही उन पत्नियों जैसी लाचार।'[1] इस पत्र के उपरान्त दोनों में सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है।

आभा पशोपेश में पड़ी चिन्तित तो रही किन्तु अपने वर्चस्व तथा अहंकार को कम न कर पाई। सोचती है– 'आजीवन इस असभ्य अत्याचारी के साथ कैसे रहेगी। अच्छा हुआ सन्तान नहीं। नहीं तो उसका मुँह देखकर कैसे त्यागती।'[2] और त्याग–पत्र डाकघर की पत्र पेटी में डाल देती है।

सारांशतः कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने 'विजन' उपन्यास में आभा दी के चरित्र के माध्यम से पितृ सत्तात्मक व्यवस्था या पुरुष वादी वर्चस्व के विरोध में अपना अभिमत अभिव्यक्त किया है। सीमा से परे, पुरुषवादी अत्याचारों को सहने में आभा का धैर्य साथ नहीं देता और वह एकाकी रहने का निर्णय ले लेती है। वह साहसी, स्वाभिमानी, योग्य एवं कुशल पेशे के प्रति ईमानदार तथा कर्मठ होते हुए भी स्वभाव की मृदुता से शून्य है। वह पूर्णतः अनुशासित है, अपने विषय का परिपक्व ज्ञान एवं अनुभव है तथा उदारता, मानवीयता और सहनशीलता का पर्याप्त भाव उन्हें नेहा के समीप बनाए रखता है।

(ड़) कहानियों में नायक, प्रतिनायक, नायिका तथा प्रतिनायिका का स्वरुप:

चिह्नार

मैत्रेयी पुष्पा का 'चिह्नार' कहानी संग्रह समाज में व्याप्त कुरीतियों, राजनीतिक दाव–पेंचों, निम्न वर्ग के शोषण एवं नारी शोषण का जीता–जागता उदाहरण है। इन सभी कहानियों के पात्र जीवन के यथार्थ को भोगते हुए दिखलायी देते हैं। जीवन के इस यथार्थ में राग, रोष, सहानुभूति तथा ईर्ष्या साथ–साथ दिखलायी देती है। इन कहानियों का समाज न तो दीनता का प्रदर्शन करता है और न जीवन–संघर्ष से पलायन करता है।

1. विजन, पृ0 129
2. उपरिवत्, पृ0 129

'अपना–अपना आकाश' कहानी में लेखिका ने माता और पुत्रों के बीच अलगाव को स्पष्ट कर पुत्रवधुओं के दुर्व्यवहार का वर्णन किया है। नायिका अम्मा अपने पुत्र एवं पुत्रवधुओं के व्यवहार से संतुष्ट नहीं रहती।

कहानी की नायिका व्यवहार कुशलता, विनम्रता और उदारता की प्रतिमूर्ति है। ससुराल में सभी को अपने व्यवहार से प्रसन्न रखती है। ईश्वर में आस्था होने से तथा अपने व्यवहार का बदला मिलने पर भगवान से कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहती है "लखिया के बचपन को हाथ लगाकर जरा सा सगुना क्या दिया, मुझे बदले में ऐसी हिरदय की टूक सहोदरा बख्श दी।"[1]

कहानी का प्रतिनायक लखिया व प्रतिनायिका बिन्दो है। परिवार में उत्पन्न द्वेष एवं पुत्रों के लालच को इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने उजागर किया है।

'बेटी' कहानी के माध्यम से लेखिका ने समाज में स्त्री के साथ हो रहे सौतेलेपन के व्यवहार को उल्लखित किया है। कहानी की नायिका बसुधा पढ़ी–लिखी समझदार युवती है जो परिस्थितियों का सामना करते हुए भी उच्च शिक्षा प्राप्त करती है। कहानी की प्रतिनायिका मुन्नी है, जो गाँव में रहकर अपनी सहेली बसुधा की किताबें माँगकर पढ़ना–लिखना सीख लेती है, किन्तु अपनी माँ के व्यवहार से संतुष्ट नहीं रहती। भाइयों के बराबर कभी सम्मान नहीं पा पाती मुन्नी।

कहानी समाज में व्याप्त रूढ़ियों एवं कुरीतियों को दर्शाती है और स्त्री के साथ स्त्री द्वारा किये गये शोषण को भी प्रदर्शित करती है।

मैत्रेयी पुष्पा की 'सहचर' कहानी पति–पत्नी के आपसी प्रेम, त्याग और समर्पण की कहानी है, जो एक ओर प्रेम की पराकाष्ठा को व्यक्त करती है, तो दूसरी ओर दहेज लोलुपता की घृणित विचारधारा का रूप दिखलाती है।

कहानी का नायक बंशी अतिशय उदार हृदय का है, जो नायिका छबीली

---

1. कहानी, अपना–अपना आकाश, पृ0 13

(पत्नी) से अत्यधिक प्रेम करता है। छबीली की बीमारी और परिवार द्वारा छबीली का त्याग बंशी की पीड़ा का कारण बनते हैं। बंशी की पीड़ा को देखते हुए गाँव के मास्टर जी के मुख से अनायास ही यह शब्द निकल जाते हैं "होनी को यही मंजूर था, तुम दोनों ही नहीं रहे एक–दूसरे के लिए, एक अपंग तो दूसरा विक्षिप्त।"[1]

कहानी का प्रतिनायक लखन उच्चविचार सम्पन्न एवं विकासोन्मुखी युवक है, जो अपने माता–पिता के गलत निर्णय का शिकार हो जाता है "बंशी भइया की जगह मुझे हाजिर करना पड़ा। विवाह वेदी पर मैं मेमने की तरह जिबह हो गया।"[2] इस उदाहरण में प्रतिनायक की विवशता का वर्णन मिलता है।

'बहेलिये' कहानी की नायिका गिरजा विधवा है जिसने अपनी बहन की मृत्युपरांत उसके पुत्र सूरज को पाला है व पुलिस अफसर बनाने तक के कर्त्तव्य का निर्वहन किया है। यह कहानी समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, उच्चवर्गीय लोगों द्वारा निम्न वर्ग का शोषण एवं पुलिस विभाग के भ्रष्ट अधिकारियों का पर्दाफाश करती है। नायिका साहसी, कर्त्तव्यशील, न्यायप्रिय एवं समाज में व्याप्त कुरीतियों का विरोध करने वाली दृढ़ संकल्पशील नारी है। "उसी समय ठान लिया था मन में कि अब चाहे कुछ भी हो, सूरज को लाकर रहेगी। तबादला किसी भी कीमत पर अपने इसी थाने में कराकर दम लेंगी।"[3]

अंत में अपने पुत्र व कहानी के प्रतिनायक सूरज का जब असली रूप गिरजा के सामने आता है, तो उसके मुख से पश्चातापवश यही निकल पाता है– "ऐसे दृश्य देखने से तो वे अंधी हो जातीं तो अच्छा था।"[4]

'मन नाँहि दस बीस' कहानी में असफल प्रेम एवं नारी की विवशता का वर्णन मिलता है। कहानी की नायिका चंदना और नायक स्वराज वर्मा के माध्यम से लेखिका

---

1. कहानी, सहचर, पृ0 33
2. उपरिवत्, पृ0 34
3. कहानी, बहेलिये, पृ0 44
4. उपरिवत्, पृ0 44

ने पवित्र प्रेम को वर्णित किया है। समाज के जातीय भेदभाव के कारण दोनों को अलग कर दिया जाता है। नायक अपने प्रेम को ग़लत नहीं मानता पर समाज द्वारा खड़ी की गई दीवार के आगे विवश होकर कहता है "बचपन का साथ रहना जबानी में आकर गुनाह क्यों हो गया। जाति की दीवार पहले क्यों नहीं थी? केवल उम्र बदलने से पाप–पुण्य की परिभाषायें बदल गयीं या जाति के ऊँच–नीच होने से प्यार का औचित्य खंडित हो गया?"[1]

कहानी के नायक–नायिका दोनों ही संघर्षमय एवं वेदनापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। नायक साहसी एवं परिश्रमी युवक प्रशासनिक सेवा में चुन लिया जाता है किन्तु नायिका दुर्भाग्य का शिकार होकर पति और देवर की हत्या कर जेल पहुँच जाती है। चंदना को अपने किये पर पश्चाताप नहीं होता, पर अपने पति से असुरक्षित और देवर द्वारा प्रताड़ित होकर चंदना स्वराज से कहती है "स्वराज, मैं तुम्हारी न हो सकी, पति न अपना सके और न सुरक्षित रखने का कवच था उनके पास। फिर किसी तीसरे आदमी की कैसे हो जाती मैं?"[2]

इस उदाहरण से नायिका के व्यथित हृदय की वेदना व्यक्त होती है। प्रतिनायिका के रूप में समाज कल्याण सेविका कल्याणी को माना जा सकता है।

'हवा बदल चुकी है' कहानी के नायक है सुजान सिंह। न्यायप्रिय, कर्त्तव्यनिष्ठ और आदर्शवादी नायक है वह। कहानी की नायिका राजकुमारी है।

'आक्षेप' कहानी की नायिका सुन्दर, सुशील और परोपकारी नारी है। जो समाज द्वारा अपने विषय में लगे आक्षेपों पर ध्यान ही नहीं देती और उन्हीं लोगों का साथ देती रहती है, जो उसे बदनाम करने पर तुले हैं। उसके परोपकार से त्रस्त नायक विशाल उसे समझाता है तो रमिया कहती है "का करते हम? वे अकेले हैं, मर जाने देते उनें?"[3]

---

1. कहानी, मन नाँहि दस–बीस, पृ0 56
2. उपरिवत्, पृ0 64
3. कहानी, आक्षेप, पृ0 77

कहानी की नायिका समाज की परवाह न करते हुए चरित्रवान होने पर भी बदनाम बनी रहती है।

'कृतज्ञ' कहानी की नायिका बसुधा उदार हृदया, मानवतावादी, परोपकारी एवं सरल स्वभाव की है। नायक अनुपम उच्च वर्ग के प्रभाव में आकर निष्ठुर एवं स्वार्थी हो जाता है तथा माता–पिता समान चाचा एवं चाची जी का आदर नहीं कर पाता है। कहानी का प्रतिनायक मुरली है जो बसुधा के आत्मीय स्नेह एवं वात्सल्य प्रेम के कारण ही अनुपम के कटु व्यवहार को भुलाकर उनकी सहायता करता है।

कहानी में निःस्वार्थ प्रेम का रूप देखने को मिलता है।

'भँवर' कहानी का नायक केशव लालची, दुष्चरित्र एवं कठोर स्वभाव का है। नायिका विरमा सुशील एवं सरल स्वभाव की है। कहानी की प्रतिनायिका सुमन नायक की दूसरी पत्नी है।

कहानी में पुरुष द्वारा नारी शोषण एवं नारी की विवशता को प्रदर्शित किया गया है।

'सफर के बीच' कहानी का नायक गिरराज परिवार से दूर रहकर पढ़ाई करता है एवं अपने लक्ष्य को प्राप्त कर प्रशासनिक अधिकारी बन जाता है। नायिका हेमंती सुन्दर, सुशील एवं उच्च वर्गीय परिवार की युवती है, जो गिरराज से अलग होकर परिवार के दबाव में आकर विवाह नहीं करती पर आत्महत्या कर लेती है।

गिरराज उससे बिछुड़ कर परेशान रहता है, जिसका वर्णन लेखिका ने इस प्रकार किया है "किन्तु हेमंती की दूरी उसे हमेशा बेचैन करती रही – बिछड़ जाने की बेबशी रक्त धाराएं बनकर फूटती रही, बिखरती रही अंदर ही अंदर।"[1] इस कथन से नायक का नायिका के प्रति अतिशय प्रेम प्रकट होता है।

कहानी में नायक द्वारा भ्रष्टाचार का विरोध एवं पारिवारिक स्वार्थ के कारण

---

1. कहानी, सफर के बीच, पृ0 116

परिवार के विघटन एवं अलगाव को स्पष्ट रूप से वर्णित किया गया है।

'केतकी' कहानी समाज में महापुरूष का खोल पहनकर घूम रहे भेड़ियों का पर्दाफाश करती है। एक मित्र द्वारा मित्र की पुत्र वधु के साथ ही बलात्कार जैसे विश्वासघात को दर्शाती है यह कहानी। कहानी की नायिका है केतकी और नायक श्रीकान्त है। केतकी कर्त्तव्यनिष्ठ, साहसी एवं आदर्शवादी नारी है। बुरे समय में साहस का त्याग न कर वह अपने साथ बलात्कार करने वाले समाज के देवता गन्दर्भ सिंह को बे–नकाब करती है।

इस कहानी में नायिका के साहस एवं धैर्य का वर्णन किया गया है। केतकी का चरित्र प्रेरणा देने वाला है।

'चिह्नार' कहानी की नायिका सरजू नायक उसका पति एवं प्रतिनायिका के रूप में कनक को माना जा सकता है। कहानी में नारी शोषण, पुरुष वर्ग की व्यभिचारिता एवं नारी की पतिपरायणता का उल्लेख मिलता है। कहानी में माँ और पुत्री के असीम प्रेम को दर्शाया है लेखिका ने।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लेखिका ने इन कहानियों के नायक, नायिका, प्रतिनायक एवं प्रतिनायिका के माध्यम से समाज की समस्याओं एवं कुरीतियों पर विरोध प्रकट किया है। लेखिका पुरुषवादी व्यवस्था का विरोध करती है। नारी की निम्न दशा के बदलाव का प्रयास किया है मैत्रेयी पुष्पा ने नारी को साहस, धैर्य एवं विरोध की शक्ति देकर।

ललमनियाँ

ललमनियाँ कहानी संग्रह में संकलित कहानियों में मैत्रेयी पुष्पा ने बुन्देलखण्ड के ग्राम्यांचल के जनजीवन के विविध चित्रों को बड़ी मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। ग्रामीण अंचल की सहज अनुभूतियों को सरस और रोचक बनाकर प्रस्तुत करने में लेखिका को महारत हासिल है। यह तथ्य उनके सम्पूर्ण कथा साहित्य का अवगाहन करने पर स्वयं सिद्ध हो जाता है। इस कथा संग्रह की कहानियों में समागत नायक, प्रतिनायक,

नायिका तथा प्रतिनायिका का चारित्रिक दृष्टि से अनुशीलन निम्नवत् प्रस्तुत है।

'ललमनियाँ' कथा संग्रह की प्रथम कहानी 'फैसला' का नायक रनवीर है, जो परम्परावादी होने के साथ अहंवादी भी है। परिवार में सामन्तशाही रवैया अपनाते हुए पत्नी को ग्राम प्रधान निर्वाचित होने पर भी पंचायत के चबूतरे पर न जाने को बाध्य करता है।

कहानी की नायिका वसुमती (रनवीर की पत्नी) विकासोन्मुखी एवं प्रगतिवादी महिला है। पति के वर्चस्व तथा कठोर नियंत्रण को हृदय से स्वीकार नहीं करती। विरोधी मानसिकता अन्तर्मन में समुत्पन्न होकर मर्यादा के आवरण में दबकर रह जाती है। ''आक्रोश के सवाल की सीमा तक होंठ खुलते, मगर पत्नी होने के नाते सब कुछ सिराने लगता। दूध के झाग–सा बैठ जाता विरोध।''[1]

'ईसुरिया' प्रतिनायिका के रूप में चित्रित है, जो विरोध एवं स्वच्छन्दता की प्रतीक बनकर कहानी में उभरी है।

मैत्रेयी पुष्पा का सम्पूर्ण कथा–साहित्य, चाहे उपन्यास हो या कहानियाँ– नारी जागरण अथवा स्त्री सशक्तीकरण पर आधारित है। 'सिस्टर' कहानी का नायक सुरेश चन्द्र अस्वस्थता के बावजूद विनम्रता एवं उदारता की प्रतिमूर्ति है। सिस्टर डिसूजा की चिकित्सकीय मदद एवं स्नेहिल औदार्य से प्रभावित होकर उन्हें अपनी बहन मानने में कोई संकोच नहीं करता। वह स्वस्थ होने पर आभार व्यक्त करता हुआ कहता है। ''मन में बार–बार कसक–सी उठती है कि हम तुम्हारे लिए क्या–क्या न कर दें। लेकिन, बस यह हाथ है राखी बाँधवाने को, और माथा ..... कहकर उन्होंने सिर आगे कर दिया, टीका लगवाने के लिए।''[2]

कहानी की नायिका के स्थान पर लेखिका ने सुरेश चन्द की पत्नी को न रखकर सिस्टर डिसूजा को स्वीकार किया है। घटना संयोजन के आधार पर परोपकार एवं सेवा भावना की साक्षात् देवी सिस्टर डिसूजा ही कहानी की नायिका है।

1. ललमनियाँ – फैसला, पृ0 12
2. उपरिवत् – सिस्टर, पृ0 25

'सेंध' कहानी का नायक जोगी बोहरे अत्यन्त उदार, विनम्र, पारमार्थिक व्यक्तित्व तथा असहायों का शुभ–चिन्तक है। फिर भी उपन्यास की नायिका कलावती उसे 'मिट्‌टी का माधौ' कहती है। उसकी जन–हितैषी भावना पर आक्षेप लगाती है– "अपनी चादर की लम्बाई कभी नापी ही नहीं! दूसरों की भूख–प्यास से लिपटे रहे। परायों की मोह–माया बिछाते–ओढ़ते रहे। ऐसे ही मरते–खपते जिन्दगी निकाली।"[1]

कहानी की नायिका कलावती समाज कल्याण की नौकरी करते हुए गरीबों की मददगार है। मर्यादा के प्रति सावधान, सुसभ्य तथा युगानुरूप प्रगतिशील भावना से प्रेरित है। विधायक का संसर्ग पाकर राजनीति का ज्ञान एवं भाषण देने की कला–दोनों में पारंगत है।

जोगी बोहरे का मित्र गंगा सिंह कहानी का प्रतिनायक है। वह गरीबी से त्रस्त, ईमानदार, परिश्रमी तथा इज्जत–आबरू वाली मानसिकता रखता है तथा कलावती की अतिशयोक्तिपूर्ण चाटुकारिता करता है।

'अब फूल नहीं खिलते' चिन्तन प्रधान कहानी है। इसका नायक वरूण संवेदनशील स्वभाव, करुणा प्लावित हृदय एवं चिन्तनशील मानसिकता वाला तथा कर्त्तव्य–पथ पर अडिग रहने वाला पुलिस इंसपेक्टर है। अतीत के चिन्तन में व्यस्त रहकर स्वयं को किंकर्त्तव्यविमूढ़ अनुभव करता है।

कहानी की नायिका 'झरना' साहसी एवं कठोर व्यक्तित्व, सौम्य एवं आकर्षक छवि से युक्त तथा आत्मीय भाव से परिपूर्ण विद्यालय की एक अध्ययनशील छात्रा है। प्राचार्य द्वारा छेड़खानी करने पर वह अडिग रहकर भी मन ही मन घुटती रहती है– "अकेला ही विष पीने का संकल्प ले बैठी हूँ। इतना बड़ा हादसा ..... कभी–कभी नन्हा मन असह्य बोझ तले दबकर चीखने को हो आता है, पर प्रौढ़ परिपक्व स्त्री की तरह दबा जाती हूँ, छोटी नहीं रही अब।"[2] कथन से सिद्ध है कि नायिका ने यौवन में ही

---

1. ललमनियाँ – सेंध, पृ0 42
2. उपरिवत् – अब फूल नहीं खिलते, पृ0 62

पूर्ण वैचारिक क्षमता उपलब्ध कर ली है।

'रिजक' कहानी का नायक आशाराम को माना जा सकता है, किन्तु वह घटनाओं, संवादों एवं क्रियाओं में सीधे सम्मिलित न होकर अधिकतर अदृश्य ही रहता है। वह जातीय संगठन में सम्बद्ध होकर विकासोन्मुख होना चाहता है किन्तु इस अभियान में वह अपना पैतृक व्यवसाय चौपट कर भुखमरी के कगार पर पहुँच जाता है।

कहानी की नायिका आशाराम की पत्नी लल्लन है। वह पति के कारनामों से संत्रस्त होकर आर्थिक तंगी के कारण दयनीय स्थिति, सामाजिक अपयश एवं आन्तरिक घुटन तो झेलती ही है, कशमकश, ऊहापोह एवं मानसिक वेदना के कारण अहर्निश चिन्तातुर रहती है। प्रशिक्षित दाई होकर भी लल्लन जन-सेवा से विरत रहने के कारण आत्मग्लानि की शिकार है। उसका मन अन्तर्विरोध से ग्रसित है।

'बोझ' मैत्रेयी पुष्पा की पारिवारिक कहानी है। कहानी का नायक सुधीर नौकरी करते हुए अपने बेटे अक्षय को अच्छी शिक्षा एवं संस्कार दिलाने को प्रतिबद्ध है। बाल्यावस्था की स्वाभाविक गलतियों जैसे नल खुला छोड़ देना तथा कपड़ों में शू-शू करना आदि से परेशान होकर सुधीर अपनी पत्नी को दोष देता है। बेहतर पारिवारिक व्यवस्था के प्रति संकल्पित रहकर वह हर काम समय से करने का प्रयास करता है।

सुधीर की पत्नी कहानी की नायिका है, जो पति की योजनाओं में सहायक रहकर पुत्र के शैक्षिक विकास के स्वप्न देखती है। पति-पत्नी दोनों अक्षय के प्रति सावधान रहते हैं। सुनीता (अक्षय की बुआ) को प्रतिनायिका तथा बहादुर को प्रतिनायक माना जा सकता है। अक्षय मिन्नी का परांठा चुराकर खा लेता है, इसके लिए मैडम सुधीर को लांछित करती हुई डाँटती हैं। "उसके माता-पिता तो मेरे ऊपर चढ़कर आये कि कैसे-कैसे टुच्चे घरों के बच्चे रखती हैं आप। अब ऐसी आदतें हम तो सिखाते नहीं। जिस चीज का अभाव रहता होगा, उसी की चोरी करेगा न बच्चा।"[1]

1. ललमनियाँ — बोझ, पृ0 90

'पगला गई है भागवती' कहानी का नायक माधौसिंह है, जो ठकुराइस की ठसक में अपने को पुराना जागीरदार मानता है। किन्तु प्रगतिशील इतना है कि जमाने के साथ कदम मिलाकर चलने में अपने पुत्र की स्वेच्छा को ही प्रमुख मानकर पत्नी को फटकारते हुए कहता है। "मूरख हो तुम! बखत के संग बदलबौ सीखौ। नहीं तो कल्ल के दिना लड़का बुढ़ापे पै ठोकर मार जैहै। अकेलीं बैठीं बिसूरत रहियो।"[1]

नायक की दृष्टि से देखें तो भागवती की जिज्जी को ही नायिका मानना उचित होगा। किन्तु कहानी में दी गई वरीयता की दृष्टि से भागवती को नायिका मानना सर्वथोचित है। वह धार्मिक रुचिसम्पन्न, सादा जीवन व भोले स्वभाव वाली, दायित्व निर्वहन में पूर्ण कुशल व कर्मठ महिला है। उसकी वैचारिक गम्भीरता इन पंक्तियों में दृष्टव्य है– "होंस–हुलस, सोंख–मौज सब मन के खेल ठहरे। उमंग–उछाह, सुख–दुःख, जवानी–बुढ़ापा मन के भीतर उठती सोच की लकीरें ही तो हैं। अनुकूल पड़े तो बूढ़े शरीर में भी पंख लगा दें और विपरीत पड़ें तो गद्दर जवानी भी रोगिनी सी घिसटे।"[2] अन्त में वही भागवती पागल होकर पत्थर फेंकने लगती है तथा तमाम कही–अनकही बातें कहकर लोगों को प्रश्नाकुल कर देती है।

'छाँह' कहानी का नायक विश्वनाथ (ददुआ) जाति–पाँत से परे, दयावान, सुलझे विचारों वाला अपने समय का जमींदार है किन्तु वृद्धावस्था में मुस्लिम स्त्री बतासो के सान्निध्य से उनको लांछित एवं अपमानित होना पड़ता है। वे बतासो के प्रेम में विह्वल एवं अपने धेवता वेदू की चिन्ता में डूबे रहते हैं। लेखिका ने समय की बदलती रफ्तार को दर्शाया है।

'बतासो' कहानी की नायिका है जो विपन्नता से ग्रस्त, विधवा एवं बे–सहारा होकर ददुआ की सेवा करती है। वेदू के प्रति वात्सल्य भाव उसकी मानवीयता को उजागर करता है। इस कहानी में प्रतिनायक के स्थान पर ददुआ के लड़के चन्द्रभान

---

1. ललमनियाँ – पगला गई है भागवती, पृ0 101
2. उपरिवत्, पृ0 99

को स्वीकारा जा सकता है।

'तुम किसकी हो बिन्नी' कहानी सामान्य पारिवारिक कहानी है। इसका नायक गोपाल है, जो पुत्र प्राप्ति की लालसा अन्तर्मन में संजोये है। बच्चों की शिक्षा के प्रति सतर्क एवं सजग रहता है। कहानी की नायिका आरती गोपाल की पत्नी है। पुत्रियों के जन्म से चिन्तित, कन्या भ्रूण हनन में लिप्त तथा पुत्र न होने से हीनता की शिकार होती है। बुआ प्रतिनायिका के रूप में चित्रित है।

इस संग्रह की अन्तिम कहानी 'ललमनियाँ' की नायिका मौहरो है, जिसे 'ललमनियाँ नृत्य' से अटूट श्रद्धा है। मौहरो समर्पित नर्तकी है तथा प्राचीन संस्कृति की रक्षा के लिए तन–मन से न्यौछावर है। जोगेश परोक्ष रूप से कहानी का नायक दर्शाया गया है। नायक 'मौहरो' के लावण्य पर मुग्ध होकर उससे वैवाहिक सूत्र में बँध जाता है, परन्तु कुछ समय पश्चात् ही वह नायिका का परित्याग कर देता है।

गोमा हँसती है

' गोमा हँसती है' की कहानियों के केन्द्रिय भाव के रूप में नारी की सदियों से चली आ रही यंत्रणाएं और वेदनाएं हैं। जब नारी सचेत होकर अपने अधिकारों की माँग करती है तभी पुरुषवादी वर्चस्व डगमगाने लगता है। लेखिका ने इन कहानियों में नारी जगत की यातनाओं के समाधान का संकल्प दोहराया है तथा नारी को सम्मानपूर्वक जिन्दगी जीने के लिए सचेत किया है।

'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी में मैत्रेयी पुष्पा ने उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग के जातीय संघर्ष को रेखांकित करते हुए दूषित चुनाव प्रक्रिया का स्पष्ट विवेचन किया है। कहानी का नायक प्रीतम सिंह उच्च वर्ग का प्रतिनिधि है।

प्रतिनायक धनपाल व दुर्गी को हम प्रतिनायिका मानते हैं, जो निम्न वर्ग के हैं, फिर भी अपनी जाति पर उन्हें गर्व है। अपनी जाति पर व्यंग्य सुनकर प्रतिनायक होश खोकर कहता है ''क्या कहा? होश सँभालकर बात करना। यह हुक्का–फरसी धरी हैं न, गाँव के बसोर पियेंगे। चमारों से तुम्हारी चमड़ी नहीं, मूँछें नुचवाऊँगा।

हाँ।"[1] अंत में नायक और प्रतिनायक मरणासन्न स्थिति में पहुँच जाते हैं। नायिका सुशीला देवी को नाममात्र का दिखाया गया है।

'राय प्रवीण' कहानी की नायिका सावित्री है व नायक गोविन्द है। सावित्री लांछित और अपमानित होकर भी अपनी सेवा भावना एवं कर्त्तव्यनिष्ठा से स्वयं को एक आदर्श नारी सिद्ध कर देती है। पति द्वारा त्यागने के पश्चात् पिता का सहयोग न मिलना व पिता द्वारा आत्महत्या की बात सुनकर नायिका का मन आत्मग्लानि से भर जाता है "कौन सी बेटी चाहेगी कि उसका जन्मदाता, पालनकर्त्ता, दुनिया में सबसे बड़ा शुभचिन्तक, आत्महत्या ...... वह भी उसी के कारण। उसकी कल्पना थर्रा उठी।"[2]

नायक गोविन्द नायिका का साथ देता है वह साहसी युवक है जो ओरछा में गाइड का कार्य करके विदेशी पर्यटकों से खूब धन ऐंठता है। गाँव के लोग जानते हैं कि बेतवा में कूद कर प्राण दे दिये सावित्री ने, पर गोविन्द जानता है कि कहा है सावित्री "जेब भरते ही रात वाली मोटर में बैठकर एरच क्यों जा पहुँचता है? गोविन्द नहीं बताना चाहता कि कहाँ रहती है उसकी राय प्रवीण ....।"[3] कहानी में नायिका द्वारा साहस का परिचय व परोपकार का भाव एवं समाज के दरिन्दों की करतूतों पर प्रकाश डाला गया है।

'बिछड़े हुए' कहानी में सुग्रीव और शंकर नायक और प्रतिनायक के रूप में चित्रित हैं। सुग्रीव की पत्नी चंदा को नायिका माना जा सकता है। नायक नदी में डूबने का भ्रम पैदा कर घर छोड़कर चला जाता है और संन्यासी हो जाता है। नायिका साहसिकता की प्रतिमूर्ति पति को संन्यासी के रूप में सामने देख कर भी धैर्य नहीं खोती तथा अपनी पुत्री से घर चलने के लिए कहती है "मगना बेटी, तू यहाँ ... घर में कितना काम फैला है। इस गाँव के आदमी तो बाबरे ठहरे, जो भी साधु आता है,

---

1. कहानी – शतरंज के खिलाड़ी, पृ0 28
2. कहानी – राय प्रवीण, पृ0 47
3. उपरिवत्, पृ0 48

उसे ही तेरा पिता ....।''[1] कहानी में लेखिका ने नायक के सांसारिक माया मोह एवं विरक्ति के मध्य उथल–पुथल को रूपायित किया है।

'प्रेम माई एण्ड पार्टी' कहानी में नरेन्द्र को नायक एवं तारा को नायिका के रूप में सृजित किया है। कहानी में लेखिका ने दहेज की कुप्रथा का दुष्प्रभाव एवं पदाभिमान को विवेचित किया है। सौदान सिंह अभिमानी एवं भ्रष्ट नेता को इस कहानी का प्रतिनायक माना गया है।

'ताला खुला है पापा' में अरविन्द को नायक और विन्दो को नायिका के रूप में चित्रित किया गया है। जगदीश चौबे को प्रतिनायक तथा विन्दो की माँ को प्रतिनायिका मानना कथा संयोजन की दृष्टि से सर्वथा उचित होगा।

नायिका उच्च विचारों वाली एवं संस्कार सम्पन्न युवती है। विवाह में अत्यधिक व्यय के विषय में विचार करते हुए वह अपनी माँ से कहती है ''अम्मा तुम मेरे ब्याह की फिकर बिलकुल न करना। जो रुपया खर्च कराएगा मैं उससे ब्याह नहीं करूँगी। ओरछा के मंदिर में आदर्श विवाह होते हैं। वहीं करुगी। ठीक है न।''[2]

कहानी का नायक निम्न वर्ग का है जबकि नायिका उच्च वर्ग से है। इस प्रकार दोनों के बीच में समाज दीवार बनकर खड़ा हो जाता है। नायक पढ़ा–लिखा समझदार युवक है वह नायिका को समझाते हुए कहता है ''बिन्दो, डरकर बचकर चलने से बचाव तो हो जायेगा, लड़ाई जीतना असंभव है।''[3]

कहानी में उच्च एवं निम्न वर्ग के बीच की खाई को दर्शाया गया है। प्रतिनायक के सामने उसका अतीत उस समय आ खड़ा होता है, जब उसकी पुत्री एक निम्न जाति के युवक के साथ विवाह करने के लिए कहती है। समाज के दबाव में आकर जो उन्होंने स्वयं नहीं किया, वही पुत्री को करते हुए देखकर परेशान हो जाते हैं जगदीश चौबे। कहानी में पितृसत्तात्मक व्यवस्था को दर्शाया गया है।

---

1. कहानी – बिछड़े हुए, पृ0 50
2. कहानी – ताला खुला है पापा, पृ0 75
3. उपरिवत्, पृ0 78

'साँप–सीढ़ी' कहानी समाज में व्याप्त भ्रष्टाचारों का पर्दाफाश करती है। कहानी का नायक सुरजन सिंह तथा नायिका उसकी पत्नी है। प्रतिनायक राजन व सुमन प्रतिनायिका है। राजन का रिश्वत देकर नौकरी पाना सपना बन गया है। इसके लिए वह अपने पिता सुरजन सिंह से हाथापाई करने के लिए भी तैयार हो जाता है और खेत बेंचकर रिश्वत देने के लिए अपने पिता को विवश करता है। यहाँ पर नायक के मन की विवशता को दर्शाते हुए लेखिका ने लिखा है– ''दाऊ का मन हुआ, भाग जाएँ। दबे पाँव निकल जाएँ और फिर कभी न मिले किसी को। .... मगर फिर क्या होगा? बच जाएगा कुछ? पसीना आ गया उन्हें। तौलिये से पोंछ लिया। सिर पर तौलिया लपेट रहे हैं दाऊ कि कफन बाँधकर जा रहे हैं बेटे से यह कहने कि दस्तखत नहीं ....।''[1] और अंत में सुमन पति से झगड़कर चली जाती है तथा राजन क्रोधवश बैनामा के कागज फाड़ कर फेंक देता है। नायक इसे ईश्वर का चमत्कार मानता है और ईश्वर को धन्यवाद देता है। कहानी में समाज की अव्यवस्थाओं एवं कुरीतियों का उद्घाटन सफलता से किया गया है।

'उज्रदारी' कहानी का नायक श्याम नारायण अपने भाई के साथ सहृदयता एवं सम्मान, प्रेम एवं विश्वास का व्यवहार करता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। नायिका शान्ति अपने जेठ एवं जिठानी के व्यवहार से त्रस्त होकर पुत्र सहित मजदूरों जैसा दुर्व्यवहार सहन करती है तथा अपने पति की उदारता को कोसती रहती है– ''सोमू का बाप कुछ भी सोचे, मरे आदमी की इच्छा क्या, अनिच्छा क्या? सब हमारे ही मन के ढोंग हैं। नहीं तो आता न कभी रक्षा करने? आसमान में ही टँगा रहा जोरू की जाँच–पड़ताल को। भइया के पाप नहीं दिखे अंधे को।''[2] नायिका परिस्थितिवश पलायन कर जाती है व दूसरे गाँव में एक प्रधान के घर पर अज्ञातवास में रहती है तथा जब उसका जेठ कचहरी में अपने भाई के हिस्से की जमीन हथियाना चाहता है तो वह प्रधान के साथ मिलकर उज्रदारी लगा देती है।

---

1. कहानी – साँप–सीढ़ी, पृ0 94
2. कहानी – उज्रदारी, पृ0 116

पारिवारिक विघटन को दर्शाती इस कहानी के प्रतिनायक और प्रतिनायिका के रूप में प्रधान और प्रधानिन को माना जा सकता है।

'रास' कहानी में नारी की विवशता एवं उसके कुंठाग्रस्त जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गई है। ससुराल में प्रताड़ना का प्रतिरोध करती कहानी की नायिका जयमंती अपने मायके आ जाती है और दूसरा विवाह भी नहीं करती। गाँव में नाइन का कार्य करते हुए अपना भरण–पोषण करती है किन्तु लाला के यहाँ रासलीला का मंचन करने आए कहानी के नायक मनसुखा महाराज की कला के प्रति पूर्णतः आकर्षित होकर समर्पित हो जाती है। अंत में रास निर्धारित दिन के पहले ही उखड़ जाता है। जयमंती को अत्यधिक दुःख होता है पर वह कुछ नहीं कर सकती थी।

'बारहवी रात' कहानी कलह का चित्र उपस्थित करती है। सास बहू के मध्य उत्पन्न मतभेद बहू को आत्महत्या के लिए प्रेरित करते हैं। कहानी का नायक सुरेन्द्र का पिता एवं नायिका सुरेन्द्र की माँ है। इनके नाम लेखिका ने अस्पष्ट ही रखे हैं।

'गोमा हँसती है' कहानी की नायिका गोमा और नायक किड्डा है। नायिका सुन्दर, चतुर और स्वार्थी है। नायक सीधा–सादा, मेहनती और कुरूप है। कहानी का प्रतिनायक बलीसिंह और प्रतिनायिका कलावती है। गोमा अपनी सुन्दरता और कूटनीतिज्ञता से बलीसिंह को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है और अपने पति को भी वश में रखती है।

नायिका के प्रति नायक के प्रेम को दर्शाते हुए लेखिका ने लिखा है– "गरमी के मौसम में डबल काम। धुएँ में तप–तप कर जुन्हैया फीकी। गोमा का मुख मुरझा जाता है। यह सुख कहा जायेगा"?[1] वह गोमा के प्रति अतिशय उदारता का परिचय देता है तथा अपनी गलती मानते हुए कहता है– "खेत पर रहा करेगा आज से। बहुत ताका झाँकी करने लगा है – पाप संका। नरक होगा।"[2] नायिका पति की आँखों के आगे ही बलीसिंह को पति जैसा सम्मान देती है और उसका बच्चा पैदा

---

1. कहानी – गोमा हँसती है, पृ0 159
2. उपरिवत्, पृ0 167

करती है फिर भी उसे कोई अफसोस नहीं होता।

कहानी में पारिवारिक वैमनस्यता, शक और क्लेश का चित्र उपस्थित रहता है। नायिका गलत करके भी गर्व का अनुभव करती है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि 'गोमा हँसती है' कहानी संग्रह की कहानियों में मैत्रेयी पुष्पा ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर आक्षेप लगाते हुए नारी वर्ग के समर्थन में अपना अभिमत व्यक्त किया है। लेखिका ने सामाजिक एवं पारिवारिक कुरीतियों तथा अव्यवस्थाओं को निर्मूल करने के लिए अपनी लेखनी चलाई है। उन्होंने सदियों से चली आ रही रूढ़ियों एवं परम्पराओं का प्रबल विरोध करते हुए नारी संवर्ग को पुरुष की पराधीनता से मुक्त कराने का सफल प्रयास किया है।

षष्ठम् अध्याय

मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य का सांस्कृतिक अनुशीलन

मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में बुन्देलखण्ड के समाज की संस्कृति कदम–कदम पर झलकती दिखायी देती है। इस समाज की विशिष्ट संस्कृति ने लेखिका को अत्यधिक प्रभावित किया है। अपने अन्तर्मन के प्रभाव को उपन्यासों एवं कहानियों में रूपायित करने के लिए मैत्रेयी ने बुन्देलखण्ड के समाज व उसकी संस्कृति को विभिन्न रूपों में वर्णित किया है। मैत्रेयी के कथा–साहित्य में संस्कृति के विविध दृश्यों का अनुशीलन करने से पूर्व यह जानना अत्यावश्यक है कि संस्कृति का स्वरूप क्या है। संस्कृति समाज को किस तरह प्रभावित करती है।

(क) संस्कृति का स्वरूप :

डॉ0 विश्वम्भर दयाल अवस्थी के अनुसार ''संस्कृति शब्द 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'डुकृञकरणे' धातु से 'त्तिन' प्रत्यय का योग करने पर निष्पन्न होता है।''[1] 'सम' और 'परि' उपसर्ग पूर्वक 'डुकृञ' धातु से भूषण एवं संघात अर्थ अभीष्ट होने पर सुट् का आगम होता है।[2] इस प्रकार अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों में संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति विभिन्न प्रकार से बतलायी गयी है।

'इंसाइक्लोपीडिया' में कहा गया है कि संस्कृति मानव के सभी प्रकार के आन्तरिक जीवन–बौद्धिक, नैतिक और धार्मिक को व्यक्त करती है। उसमें यह भी कहा गया है कि संस्कृति भावनात्मक और क्रियात्मक पद्धतियों के द्वन्द्व के परिहार के प्रहार का प्रयत्न है। अर्थात् भावना और क्रिया के स्तर पर मानवीय विचारों में जो अन्तर्विरोध उपस्थित होता है, संस्कृति उसका परिहास करती है। कहीं–कहीं संस्कृति का अर्थ संशोधन करना, उत्तम बनाना तथा परिष्कृत करना बताया गया है।

डॉ0 बृजबिहारी निगम मानते हैं कि ''संस्कृति किसी भी देश की, किसी

---

1. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन, डॉ0 विश्वम्भर दयाल अवस्थी, पृ0 100
2. अष्टाध्यायी, पाणिनि, 6/1/138

विशिष्ट काल की जीवन पद्धति, उनके आदर्श तथा उनके प्राप्त करने की विधियाँ एवं इस प्रक्रिया में होने वाले बाह्य एवं आन्तरिक परिवर्तनों का लेखा–जोखा है।"[1] तात्पर्य यह है कि समाज की बदलती हुई जीवन पद्धति और उसमें होने वाले सभी परिवर्तनों का उल्लेख वहाँ की संस्कृति में समाहित रहता है। इस संसार में सभी कुछ परिवर्तनशील है, मनुष्य के विचार भी बदलते रहते हैं, क्रियायें बदलती हैं, अनुभूतियाँ बदलती हैं तथा अभिव्यक्तियाँ भी बदलती हैं। संस्कृति में इन सभी का प्रतिबिम्ब झलकता है।

जिस प्रकार विशाल भारत देश की संस्कृति को कुछ वाक्यों में प्रकट करना कठिन होता है, ठीक उसी प्रकार बुन्देलखण्ड की संस्कृति को भी कुछ शब्दों में परिभाषित नहीं किया जा सकता। मैत्रेयी पुष्पा के मन में रची–बसी बुन्देलखण्ड की प्रभावशाली संस्कृति को उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में भली–भांति उजागर करने का प्रयास किया है। प्रो0 इन्द्रविद्यावाचस्पति कहते हैं कि "किसी देश की आध्यात्मिक, सामाजिक और मानसिक विभूति को उस देश की संस्कृति कहते हैं। संस्कृति शब्द में देश के धर्म, साहित्य, रीति–रिवाज, परम्पराओं तथा सामाजिक संगठन आदि आध्यात्मिक एवं मानसिक तत्वों का समावेश होता है, इन सबके समुदाय का नाम संस्कृति है।"[2]

कथन का तात्पर्य यह है कि संस्कृति में कला, साहित्य, धर्म, प्रेम तथा सभ्यता की विस्तृत व्याख्या समाहित रहती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोच्च परिणति है। .... भारतीय जनता की विविध साधनाओं की सबसे सुन्दर परिणति को ही भारतीय संस्कृति कहा जा सकता है।"[3] उक्त परिभाषा में आचार्य द्विवेदी संस्कृति को साधना से उद्‌भूत मानते हैं, अर्थात् विविध साधनाओं का परिवर्तित स्वरूप संस्कृति नाम से अभिहित किया जा सकता है। जबकि डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्र कहते हैं कि "संस्कृति का अर्थ हुआ क्रिया अथवा वह

1. संस्कृति एवं सभ्यता : भारतीय दृष्टिकोण, डॉ0 बृजबिहारी निगम, स्मृति प्रकाशन इलाहाबाद, 1987 ई0, पृ0 9
2. भारतीय संस्कृति का प्रवाह, प्रो0 इन्द्रविद्यावाचस्पति, पृ0 1
3. अशोक के फूल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 63

अवस्था जो समूचे मानव जीवन को अपवित्रता की ओर से हटाकर पवित्रता की ओर तथा अशुद्धि की ओर से हटाकर शुद्धि की ओर ले जाती है।''[1] उक्त कथन में डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्र जीवन की शुद्धि एवं पवित्रता पर अधिक बल दे रहे हैं। वे परिमार्जित तथा परिष्कृत जीवनचर्या को संस्कृति के अन्तर्गत स्वीकार करते हैं।

डॉ0 रामजी उपाध्याय ने संस्कृति के स्वरूप को बताते हुए लिखा है कि ''प्राकृतिक जीवन को व्यवस्थित और शालीन बनाकर संवारना तथा जीवन में आध्यात्मिक, कलात्मक और सेवात्मक पक्ष की प्रतिष्ठा और विकास करना संस्कृति है।''[2] समीक्षात्मक रूप में हम कह सकते हैं कि डॉ0 उपाध्याय संस्कृति के अन्तर्गत व्यवस्थित जीवन को प्रमुखता प्रदान करते हैं और उसमें अध्यात्म, कला तथा सेवाभाव का समर्थन करते हैं।

वरेण्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत संस्कृति की परिभाषाओं का यही निष्कर्ष है कि संस्कृति में समाज की बौद्धिक एवं मानसिक प्रगति का सामंजस्य होना चाहिए तथा मानवीय जीवनवृत्ति परिमार्जित होनी चाहिए। कतिपय विद्वान विविध साधनाओं को भी संस्कृति में समाहित करते हैं, किन्तु यह निश्चित है कि सभ्यता और संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है और समाज ही इनका उद्‌गम स्थल है।

(ख) सभ्यता का स्वरूप :

मानव द्वारा अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को सभ्यता कहा जाता है। सभ्यता के अन्तर्गत मानव द्वारा अपनाये गये ढंग, उपकरण तथा साधन आदि भी आते हैं। इसमें विनयशीलता, शिष्टता, शालीनता और सुशीलता भी आती है। समाज में मनुष्य को मानवीय गुणों से सम्पन्न व संवेदनशील बनाना ही सभ्यता है। सामान्यतः सभ्यता का अर्थ सभा में बैठने की योग्यता से लिया जाता है। सभ्यता सामाजिक जीवन के विविध शिष्टाचारों पर बल देती है तथा सभ्यता में सामाजिक उत्तरदायित्व, प्रतिबंध तथा आचरण का निर्देश भी दिया जाता है।

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार ''समाज की विकसित और उन्नत अवस्था

---

1. भारतीय संस्कृति, डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्रा, पृ0 3
2. भारतीय संस्कृति का उत्थान, डॉ0 रामजी उपाध्याय, पृ0 4

को सभ्यता कहा जाता है।" विख्यात विद्वान मैकाइवर के मतानुसार "मनुष्य ने अपने जीवन की दशाओं को नियंत्रित करने के प्रयत्न में जिस सम्पूर्ण कला विन्यास और संगठन की रचना की है, उसे सभ्यता कहते हैं। मैथ्यू आर्नोल्ड के अनुसार "मनुष्य का समाज में मानवीकरण ही सभ्यता है।" तथा डॉ0 जॉन्सन ने स्वीकार किया है कि "सभ्यता बर्बरता के विरूद्ध जीने की दशा है"।

उक्त परिभाषाओं में मैथ्यू आर्नोल्ड तथा डॉ0 जॉन्सन की परिभाषायें एकांगी हैं। इनसे सभ्यता की सर्वांगीण व्याख्या नहीं हो पाती। मैथ्यू आर्नोल्ड ने समाज में मनुष्य के मानवीकरण को सभ्यता तो स्वीकार किया है किन्तु मानवीकरण के स्वरूप को स्पष्ट नहीं किया। डॉ0 जॉन्सन ने बर्बरता के विरूद्ध जीने की दशा को सभ्यता मानकर उसे एक पक्षीय बना दिया है। मैकाइवर की परिभाषा उन सभी पक्षों को समाहित किये हुए है, जिनसे सभ्यता का सम्पूर्ण स्वरूप स्पष्ट तो होता ही है, उसके अंग–प्रत्यंगों की विशद् विवेचना के संकेत भी मिलते हैं।

(ग) संस्कृति और सभ्यता :

सभ्यता और संस्कृति दोनों ही पक्ष अन्योन्याश्रित हैं। जिस प्रकार बिना समाज के सभ्यता का कोई अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार समाज के बिना संस्कृति का भी कोई अस्तित्व नहीं है। श्री रामचन्द्र वर्मा इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि– "सभ्यता मानव समाज की बाह्य और भौतिक सिद्धियों का मापदण्ड है और संस्कृति उसकी आन्तरिक तथा मानसिक शक्तियों का। ज्ञान और विद्या के उपार्जन, धार्मिक और नैतिक विचारों के विकास, कला–कौशल के क्षेत्र में उन्नति, सामाजिक रहन–सहन और परम्परागत योग्यताओं तथा विशिष्टताओं के विचार से किसी जाति या देश की जो पूर्व पीठिका होती है, वही उसकी संस्कृति होती है।"[1]

उक्त कथन से तात्पर्य है कि यदि सभ्यता सामाजिक विकास की सम्पूर्ण चेष्टाओं का बाह्य रूप है तो संस्कृति उसका आन्तरिक पक्ष है। संस्कृति का सम्बन्ध

1. शब्द साधना, श्री रामचन्द्र वर्मा, पृ0 343–344

मनुष्य के क्रिया–कलापों से माना जाता है। इस प्रकार देखें तो संस्कृति शब्द भौतिक विकास का पर्याय है। कहा जा सकता है कि सभ्यता और संस्कृति भौतिक तथा सांस्कृतिक विकास के प्रतिरूप ही हैं। डॉ0 कमला प्रसाद पाण्डेय का मत है– "संस्कृति जीवन–बोध का पर्याय और सभ्यता उनको कर्म रूप में परिणत करने का माध्यम।"[1]

संस्कृति और सभ्यता की तुलना करते समय हम संस्कृति को आत्मा और सभ्यता को शरीर कह सकते हैं। मानव के आत्मिक विकास का नाम संस्कृति व भौतिक विकास का नाम ही सभ्यता है। मनुष्य की सृजनात्मक क्रिया का ही परिणाम है संस्कृति और सभ्यता। सभ्यता के जन्म के समय क्रिया अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है तथा संस्कृति के उदय के समय क्रिया मूल्य–चेतना को प्रबुद्ध करने की ओर गतिमान होती है। शाब्दिक अर्थ भिन्न होने पर भी संस्कृति और सभ्यता का आपस में ऐसा मेल है कि देखने पर संस्कृति और सभ्यता एक ही सिक्के के दो पहलुओं के रूप में ही आते हैं। पर सभ्यता संस्कृति का ऊपरी आवरण है। संस्कृति आंतरिक रूप है तो सभ्यता बाह्य रूप। एक ओर जहाँ सभ्यता सामाजिक व आर्थिक रूप से बंधी होती है, वहीं संस्कृति का सम्बन्ध सिर्फ धार्मिक विश्वास से है। संस्कृति में देश, जाति और वर्ण सभी का समावेश होता है पर सभ्यता के अनुकरण में इनका कोई स्थान नहीं।

जब परम्पराओं का रूप लेकर संस्कृति समाज में विलय हो जाती है तो वही परम्परायें सभ्यता का अंग बन जाती हैं। इस प्रकार संस्कृति का विकसित रूप ही सभ्यता है। संस्कृति का सम्बन्ध मनुष्य के आचारों से होता है, वहीं सभ्यता का मनुष्य के विचारों से। संस्कृति को सभ्यता की सहभागिनी भी कहा जाता है। सभ्यता संस्कृति की वाहक है। सभ्यता संस्कृति की परम्पराओं को क्रियात्मक रूप देकर आगे बढ़ाती है। इस प्रकार संस्कृति और सभ्यता का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

संस्कृति और सभ्यता में अन्तर स्पष्ट करते हुए श्यामा चरण दुबे की परिभाषा– "अनेक समाज वैज्ञानिकों के मतानुसार 'संस्कृति' हमें मानवीय उद्‌देश्यों की

1. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ0 कमला प्रसाद पाण्डेय, पृ0 42

समष्टि को कहना चाहिए और सभ्यता मानवीय साधनों की समष्टि को।'' इसी प्रकार कतिपय अन्य समाज वैज्ञानिकों का मत है कि ''संस्कृति मानव के आन्तरिक गुणों की द्योतक है और सभ्यता से मानव के बाह्य निर्माण का बोध होता है।''[1] भारतीय संस्कृति के मूल तत्व में वीरेन्द्र चन्द्र सोती ने डॉ0 बैजनाथपुरी के कथन को उद्धृत किया है– ''संस्कृति आभ्यन्तर है सभ्यता बाह्य है। संस्कृति को अपनाने में देर लगती है, परन्तु सभ्यता का अनुसरण सफलता से किया जा सकता है। संस्कृति का सम्बन्ध निश्चय ही धार्मिक विश्वास से है, सभ्यता सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों से बंधी है।''[2]

डॉ0 रामधारी सिंह दिनकर ने संस्कृति और सभ्यता में अंतर स्पष्ट करते हुए लिखा है– ''सभ्यता हमारे पास होती है और संस्कृति हम स्वयं होते हैं। हमारी रुचि हमारी संस्कृति में आती है। सभ्यता को बनाने में हमारी जो रुचि रहती है, वह संस्कृति का अंग है। सभ्यता का अर्थ भौतिक पदार्थों से है, पर संस्कृति हृदय की चीज है। दया, माया, शील–सौजन्य एवं परोपकार की भावना संस्कृति का अंग है। जब सभ्यता, संस्कृति के पथ पर चढ़ जाती है तब कवि, साहित्यकार, कलाकार के लिए भी भौतिक वस्तुओं की अपेक्षा होने लगती है। भारत की परम्परा इसके विपरीत है। यहाँ राजाओं से अधिक सम्मान ऋषियों का होता है। वैभव से अधिक त्याग को महत्व दिया जाता है। सभ्यता बर्हिमुखी गुण है, संस्कृति आत्मा की चीज है। वह भीतर से कोमल, दयालु और विनम्र बनाती है।''[3]

संस्कृति को अहिंसा मानकर कुछ विद्वानों ने कहा है कि वह इस विश्व को, जो कि जल रहा है, अग्नि से बचाकर बाहर लाना चाहती है। सभ्यता को मानव के जन्म से लेकर उसके विकास तक परिलक्षित किया जाता है। इसके साथ संस्कृति मनुष्य के आत्मउत्थान व आचार संहिता का काम कर मनुष्य को सुसंस्कार सम्पन्न बनाती है। इस प्रकार संस्कृति का झुकाव मानव के जीवन कल्याण की ओर होता है।

---

1. श्यामाचरण दुबे, मानव और संस्कृति, पृ0 193
2. भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, सोती वीरेन्द्र चन्द्र, संस्करण– 1998, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, पृ0 7
3. उपरिवत्, पृ0 7

जहाँ सभ्यता सम्पन्नता व उन्नति का प्रतीक है, वहीं संस्कृति बौद्धिक उन्नति व बौद्धिक विकास की द्योतक है। संस्कृति और सभ्यता समानार्थी नहीं है।

(घ) भारतीय संस्कृति के तत्व :

भारतीय संस्कृति जैसे व्यापक विषय पर अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार से अपने विचार व्यक्त किये हैं। अधिकांश विद्वानों ने संस्कृति को संस्करण, परिमार्जन तथा परिष्करण का पर्याय माना है। कुछ विद्वानों ने जीवन को व्यवस्थित एवं शालीन बनाकर अपवित्रता से पवित्रता की ओर प्रस्थान को संस्कृति में समाहित किया है। जहाँ तक भारतीय संस्कृति के तत्वों का प्रश्न है, इस पर विद्वानों ने अनेक रूपों में विचार किया है। बाबू गुलाब राय[1], डॉ0 रामजी उपाध्याय[2], डॉ0 सत्य नारायण पाण्डेय[3], डॉ0 देवराज[4], डॉ0 मंगल देव शास्त्री[5], डॉ0 मदन लाल गुप्त[6] तथा डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्र[7] आदि विद्वानों ने भारतीय संस्कृति की विशेषताओं एवं तत्वों का उल्लेख अलग–अलग किया है।

1. आध्यात्मिकता

भारतवर्ष की भूमि अध्यात्म पर स्थित है। इसीलिए भारतभूमि को देवभूमि या धर्म भूमि कहा जाता है। भारतीय संस्कृति मानव को आध्यात्मिक उत्थान की ओर ले जाती है। आध्यात्मिक व नैतिक मान्यताओं की सुदृढ़ नींव पर स्थित भारतीय संस्कृति सहस्त्रों शताब्दियों से जनमानस में जीवित है। दिव्य गुणों पर आधारित महान आदर्शों का स्रोत है। भारतीय संस्कृति में शरीर को नाश्वर तथा आत्मा को अमर माना गया है। आत्मा को पहचानना ही भारतीय संस्कृति की धारणा रही है। इसके आध्यात्मिक गुणों के कारण ही भारतीय संस्कृति को अन्य देशों द्वारा प्राचीन काल से

---

1. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, बाबू गुलाब राय, पृ0 6–12
2. भारतीय संस्कृति का उत्थान, रामजी उपाध्याय, पृ0 11–13
3. भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, सोती वीरेन्द्र चन्द्र, पृ0 5–9
4. भारतीय संस्कृति (महाकाव्यों के आलोक में) डॉ0 देवराज, प्रस्तावना, पृ0 15
5. भारतीय संस्कृति का विकास, प्रथम खण्ड, मंगलदेव शास्त्री, पृ0 125
6. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति, पृ0 53–72
7. भारतीय संस्कृति, डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्र, पृ0 111–129

ही आदर की दृष्टि से देखा जाता रहा है।

वेद भारतीय धर्मशास्त्र में सबसे पहले और प्रमुख आधार ग्रंथ है। इन्हें भारतीय संस्कृति का आदि स्रोत माना जाता है। वेदों में विश्व की प्राचीनतम भाषा वैदिक संस्कृति में जीवन दर्शन से सम्बन्धित उपदेश निहित है। मनुष्य को उसके विकास के चरमोत्कर्ष पर पहुँचाकर जीवन मुक्ति की अवस्था में प्रतिष्ठित करा देना ही भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है।

दूसरी ओर "मनुष्य को पूर्ण स्वातंत्र्यमय अनन्त ज्ञान के क्षेत्र में समासीन कर परमानन्द का अनुभव करा देने का सामर्थ्य हिन्दू संस्कृति में ही है इसीलिए हिन्दू संस्कृति सर्व सामर्थ्यमय, सर्वांगीण पूर्ण संस्कृति है।"[1]

आध्यात्मिकता ज्ञान का वह स्तर है जो सबसे सूक्ष्म और गहन होता है। आध्यात्मिक ज्ञान को ही आत्मज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान कहा जाता है। आत्मज्ञान निरपेक्ष होता है। आध्यात्मिक साधना का पुरुषार्थ मोक्ष और फल ब्रह्मानन्द पड़ते हैं, जैसे– ज्ञान साधना, योग साधना, प्रेम साधना, स्मरण साधना, निर्वाण साधना, तंत्र साधना, भक्ति साधना, निष्काम कर्मसाधना, सहज साधना आदि। भारतवर्ष में शस्त्र बल की अपेक्षा तपस्या को, धूर्तता की अपेक्षा सत्य को तथा धन की अपेक्षा धर्म को अधिक श्रेयकर माना गया है। इसी आध्यात्म भावना के कारण यहाँ सामान्य प्रवृत्ति अन्तर्मुखी बनी और उसी वैशिष्टय से भारतीय संस्कृति में त्याग तथा परोपकार पर अधिक बल देने की प्रवृत्ति हुई। भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिकता गुण का ही यह एक रूप था कि भारत में सृष्टि, जीव, आत्मा आदि के सम्बन्ध में इतना वाद–विवाद हुआ कि इसके फलस्वरूप विभिन्न भारतीय दर्शनों का जन्म हुआ। यह हमारे देश की आध्यात्म भावना की ही देन है।

2. अवतारवाद

अवतारवाद की महत्वपूर्ण अवधारण शास्त्रों और पुराणों में प्रचुरता से

---

1. जगद्गुरु स्वामी श्री ब्रह्मानंद सरस्वती, कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, पृ0 24

उपलब्ध है। साधक अपने हृदय की श्रद्धा अपने इष्ट में केन्द्रित करता है। पौराणिक सन्दर्भों के अनुसार अधर्म का उन्मूलन एवं धर्म की स्थापना के लिए परब्रह्म परमेश्वर समय–समय पर अवतरित होते हैं। वह अवतार संसार में आकर परिस्थितिजन्य भयंकरता या विषम स्थिति का सामना कर शक्ति, शील और सौन्दर्य की स्थापना करते हैं।

वह श्रद्धा का केन्द्र बनकर साधकों के हृदय में विश्वास, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य तथा उपासना समुत्पन्न करके जन–सामान्य की भावनाओं को सम्बल प्रदान करता है। भारतीय धार्मिक साहित्य जैसे भागवत, गीता, महाभारत, रामायण तथा अन्यान्य धार्मिक ग्रन्थों में अवतारवाद की विभिन्न व्याख्यायें की गई हैं। वह परमेश्वर कभी मत्स्यावतार के रूप में तो कभी बाराह के रूप में प्रकट होता है और कभी नृसिंह के रूप में अवतरित होकर भक्तों की सहायता करता है।

इसी प्रकार गीता के प्रसिद्ध श्लोक में श्रीकृष्ण के वचनानुसार भी यही कहा गया है–

'परित्राणाम साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे–युगे।।'[1]

पृथ्वी पर अवतार लेकर ही प्रभु भक्तों के कष्टों का निराकरण कर उन्हें अभयदान देते हैं तथा धर्म की स्थापना कर असुरों का संहार करते हैं। भारतीय संस्कृति में अवतारों का उल्लेख अनेक वेद–पुराणों व अन्य पुस्तकों में मिलता है।

3. पुनर्जन्म एवं कर्मवाद

मृत्यु के उपरान्त व्यक्ति अपने कर्म के अनुकूल पुनः विभिन्न योनि में जन्म लेता है, पुनर्जन्म का यह सिद्धान्त भारतीय संस्कृति की एक और विशेषता है। 'अयमेव लोकः न पर! अपि' इस लोक के उपरांत फिर इसी लोक में आना सम्भव है और उस पुनर्जन्म में अपने पूर्व कर्मों के अनुसार ही सुख–दुख निश्चित होंगे– यह धारणा प्रत्येक

1. गीता (4/7) 4/8

भारतीय के हृदय में मूलबद्ध होती है। यह धारणा व्यक्ति को प्रायः ही यथासम्भव सदाचार के पालन में प्रवृत्त करा देती है। मनुष्य कदर्य आचरण को अनचाहे ही इसलिए भी त्याग देता है जिससे उसका अगला जीवन सुखमय व्यतीत हो सके।

कर्मवाद और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते हुए एस0एल0 नागोरी ने अपनी पुस्तक में लिखा है "भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य को कर्म के अनुसार फल मिलता है। अच्छे कर्म करने पर मोक्ष प्राप्त होता है, जबकि बुरे कर्म करने पर वह पुनर्जन्म के चक्कर में फँस जाता है। कर्म के आधार पर पुनर्जन्म का सिद्धान्त सभी भारतीय धर्म स्वीकार करते हैं। कर्म सिद्धान्त के कारण भारतीयों ने संयम, त्याग, प्रेम, अहिंसा, दान, दया, सहिष्णुता आदि पर बहुत बल दिया। इस सिद्धान्त के कारण वर्तमान जीवन के कष्टों को पिछले जन्म के कर्म का प्रतिफल माना जाता है। इससे सहनशीलता व संतोष जैसे गुण विकसित हुए।"[1]

जिस सिद्धान्त के द्वारा सृष्टि अनुशासित होती है, यह कर्म का सिद्धान्त है। कर्म का कर्ता के चरित्र, प्रवृत्ति, चित्त, विचार, भावनाओं आदि पर प्रभाव पड़ता है। कर्म का कर्मफल दो बार भुगतना पड़ता है– मृत्यु के पहले और मृत्यु के उपरांत।

4. वर्णाश्रम व्यवस्था

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। 'समाज' शब्द से मानवीय संगठन एवं उसके सांस्कृतिक विकास का अर्थ ध्वनित होता है। समाज में रहकर मनुष्य अपना सर्वतोंमुखी विकास करता है। साथ ही सभ्यता एवं सांस्कृतिक प्रगति की ओर अग्रसर होता है। डॉ0 मायारानी टंडन ने भारतीय सामाजिक संगठन के दो मूलाधार माने हैं– 1. वर्ण व्यवस्था 2. आश्रम व्यवस्था।[2]

---

1. प्राचीन भारतीय संस्कृति, एस0एल0 नागोरी, प्रथम संस्करण, 96, श्रीमती शशि जैन, पोईन्टर पब्लिशर्स, एस.एम.एस. हाइवे, जयपुर, पृ0 5
2. अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, संक्षिप्त विवरण, डॉ0 मायारानी टंडन, हिन्दी साहित्य भंडार, गंगा प्रसाद रोड, लखनऊ, पृ0 105

वर्ण व्यवस्था –

वैदिक साहित्य के अन्तर्गत जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था दोनों के समानान्तर प्रचलन का उल्लेख मिलता है किन्तु पुराण काल में दोनों व्यवस्थायें समानार्थी रूप में जानी जाने लगीं। वर्तमान में दोनों का पृथक विश्लेषण कठिन कार्य हो गया है। डॉ0 मंगलदेव शास्त्री जाति और वर्ण का पृथक अस्तित्व स्वीकारते हुए कहते हैं कि 'बहुत अंशों में जाति भेद और वर्ण भेद पृथक–पृथक हैं। ये दो स्वतंत्र धारायें हैं। जाति भेद की धारा को यदि ऐतिहासिक कहा जाय तो वर्ण भेद की धारा को हम रूढ़ या सांकेतिक कह सकते हैं। प्रथम का कारण यदि ऐतिहासिक अथवा वस्तुगत है तो दूसरी काल्पनिक या विचार मूलक।'[1]

उक्त सिद्धान्त का खण्डन करते हुए डॉ0 काणे अपना मत व्यक्त करते हैं कि 'वर्ण की धारणा वंश, संस्कृति, चरित्र (स्वभाव) एवं व्यवसाय पर मूलतः आधारित है। .... इसके विपरीत जाति व्यवस्था जन्म एवं आनुवंशिकता पर बल देती है, और बिना कर्त्तव्यों के आचरणों पर बल दिये, केवल विशेषाधिकारों पर ही आधारित है।'[2]

उक्त दोनों सिद्धान्तों में तात्विक अन्तर यह है कि डॉ0 शास्त्री जाति और वर्ण का पृथक अस्तित्व स्वीकार करते हैं, जबकि डॉ0 काणे दोनों धाराओं को आनुवंशिक मानकर समानार्थी प्रतिपादित करते हैं।

भारतीय समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों में विभक्त रहा है। श्रीमद् भगवत गीता में भगवान कृष्ण का कथन है– 'चातुवर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः'[3] तात्पर्य है कि गुण और कर्म के आधार पर चारों वर्णों की संरचना हुई है। ब्राह्मण के तीन कार्य– पुरोहिती, शिक्षण और मंत्र रचना थे। क्षत्रियों का कार्य सबलों के शोषण से निर्बलों की रक्षा करना था। वैश्य वर्ण व्यापार या वाणिज्य से सम्बन्ध रखकर वस्तुओं के क्रय–विक्रय का कार्य सम्पन्न करता तथा तथा शूद्र वर्ण उक्त तीनों

---

1. भारतीय संस्कृति का विकास, प्रथम खण्ड, डॉ0 मंगलदेव शास्त्री, पृ0 313
2. धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम खण्ड, डॉ0 काणे, पृ0 169
3. श्रीमद् भगवत गीता, अध्याय–4, श्लोक–13

वर्गों की सेवा–सुश्रूषा को आदर भाव से स्वीकार करता था। समय बीतने पर शूद्र वर्ग को अन्य तीनों वर्ग घृणित दृष्टि से देखने लगे जिससे समाज की व्यवस्था पूर्णरूपेण चरमरा गई। सभी वर्णों ने अपना धर्म एवं दायित्व भूलकर समाज को विकास मार्ग से अलग कर दिया।

डॉ0 कृष्णा अवस्थी के अनुसार– 'जाति–पांतिगत संकीर्णता और रूढ़िवादिता के विष ने भारतीय संस्कृति के वैज्ञानिक विभाजन के मौलिक सिद्धान्त को मध्य युग में पूर्णरूप से दूषित कर दिया। उदार समन्वय और विवेक सम्मत व्याख्या के अभाव में उसने भारत को असीम हानि पहुँचाई।'[1] उक्त मत से यह निष्कर्ष निकलता है कि संकीर्णता एवं उदार चिंतन के अभाव में प्राचीन काल से चला आ रहा वर्ण–विभाजन प्रदूषण का शिकार हो गया। रूढ़िवादिता से यह संकेत मिलता है कि पूर्व में वर्ण विभाजन कर्म मूलक था, किन्तु कालान्तर में यह व्यवस्था जन्म मूलक हो गई। परिणामस्वरूप वैज्ञानिक वर्ण व्यवस्था का स्वरूप विकृत होकर समाज के लिए अभिशाप बन गया।

आश्रम व्यवस्था –

भारतीय मनीषियों ने मनुष्य की शारीरिक और मानसिक शक्तियों को दृष्टि में रखते हुए मानव को शतायु मानकर उसके जीवन को चार आश्रमों में वर्णित किया है। मनुस्मृति में उल्लेख है–

'ब्रह्मचारी गृहस्थश्य वानप्रस्थो यतिस्तथा

एते गृहस्थ प्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ।'[2]

इस प्रकार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास आश्रमों में जीवन व्यतीत करते हुए मनुष्य जीवन के चारों पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सुलभ कर कल्याण की ओर अग्रसर होता है।

---

1. वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ0 कृष्णा अवस्थी, पुस्तक संस्थान, कानपुर, 1997, पृ0 217
2. मनुस्मृति, अध्याय–6, श्लोक 87

ब्रह्मचर्य आश्रम में बालक गुरु के समीप रहकर विद्याध्ययन करता था तथा पच्चीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुणों से दूर रहता था। स्त्री–प्रसंग तो दूर वह स्त्री दर्शन से भी परहेज करता था। 'मरणं विंदुपातेन जीवनं विन्दुरक्षणम्' को अपने जीवन का आधार मानता था। मांस, मदिरा, हिंसा, निन्दा तथा मिथ्या भाषण आदि उसके लिए सर्वथा त्याज्य थे।

पच्चीस वर्ष से पचास वर्ष की आयु गृहस्थ आश्रम की मानी गई है। इसमें विद्याध्ययन के उपरांत ब्रह्मचारी गुरु के आदेशानुसार अपने वर्ण एवं जाति के अनुकूल कन्या का पाणिग्रहण करके संतानोत्पादन करता था तथा सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में अपनी सहधर्मिणी का सहयोग प्राप्त करता था।

वानप्रस्थाश्रम की पचास वर्ष से पिचहत्तर वर्ष की आयु को जीवन के कठोर नियमों के परिपालनार्थ व्यतीत करने के निर्देश प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित हैं। मनुस्मृति के अनुसार–

"स्वाध्याये नित्य युक्तः स्याछान्तो मैत्रः समाहितः
दाता नित्यमनादाता सर्व भूतानुकम्पकः ।"[1]

तात्पर्य है कि वानप्रस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर व्यक्ति वैयक्तिक सुख का परित्याग करके नियमित रूप से यज्ञ व हवन करे। वह सदैव वेद–पुराण आदि धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करके स्वकल्याण हेतु तत्पर रहे तथा सभी प्राणियों के कल्याणार्थ अपने को समर्पित करते हुए दानशीलता के शुभ आचरण को स्वीकार करें।

वानप्रस्थ आश्रम में वन में विचरण करते हुए वेदों में निर्दिष्ट पंच महायज्ञों का पालन करना अनिवार्य तथा पंचाग्नि सेवन, फलमूल आदि से संतुष्टि, पक्वान्न ग्रहण न करना उसके लिए आवश्यक था।

अन्त में चौथा आश्रम सन्यास के लिए निश्चित था। इसमें सांसारिक पदार्थों

1. मनुस्मृति, अध्याय–6, श्लोक 8

से निरासक्त होकर हर्ष एवं शोकादि भावों का सर्वथा त्याग करना होता था। केशों का मुण्डन, विषयों का त्याग तथा वेदोक्त नियमों का पालन भी अनिवार्य था। इसकी आयु सीमा पिचहत्तर वर्ष से सौ वर्ष तक मानी जाती थी।

5. संस्कार

हिन्दुओं के सामाजिक व आध्यात्मिक जीवन में संस्कारों का अपना अलग ही महत्व है। सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप संस्कारों के माध्यम से ही समाज में व्यक्ति प्रविष्ट करता है। डॉ0 कृष्णा अवस्थी के मतानुसार 'संस्कार कार्यों की पूर्ति का गम्भीर और नैतिक दायित्व है जिसमें धार्मिकता और पवित्रता की भावना मिली रहती है। साहित्यिक दृष्टि से शिक्षा, शोभा, आभूषण, धार्मिक विधि–विधान आदि का सम्मिलित रूप ही संस्कार है।'[1] डॉ0 राजबली पाण्डेय[2] संस्कारों का अभिप्राय शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिए किये जाने वाले अनुष्ठानों से मानते हैं।' उक्त दोनों अभिमत भावनाओं के शारीरिक और मानसिक परिष्कार पर बल देते हैं। तात्पर्य यह है कि जिन कृत्यों से शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक शुद्धीकरण हो, उन्हें संस्कार नाम से अभिहित किया जा सकता है।

प्राचीन साहित्य में संस्कार की परिभाषायें विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से दी हैं। इनकी संख्या में भी मत वैभिन्नय है। मनुस्मृति में 13 संस्कारों का उल्लेख है, जबकि वैखानस गृह सूत्र में 18 तथा गौतम धर्म सूत्र में इनकी संख्या 40 बताई गई है। डॉ0 राजबली पाण्डेय[3], डॉ0 मुंशीराम शर्मा[4] तथा बाबू गुलाबराय[5] ने संस्कारों की संख्या 16 मानी है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि विधि पूर्वक मानव जीवन में जो कृत्य मनुष्य करता है उसे ही संस्कार कहते है। इसके द्वारा किसी भी व्यक्ति का शरीर, मन और

1. वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ0 कृष्णा अवस्थी, पृ022
2. हिन्दू संस्कार, डॉ0 राजबली पाण्डेय, पृ0 19
3. उपरिवत्, पृ0 26
4. वैदिक संस्कृति और सभ्यता, डॉ0 मुंशीराम शर्मा, पृ0 5
5. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, बाबू गुलाबराय, पृ0 187

ज्ञान शोधित होता है। व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न संस्कारों से गुजरता है। स्त्रियों के संस्कारों में वैदिक मंत्रों का उच्चारण नहीं होता है। विवाह को ही स्त्री जीवन का प्रथम संस्कार माना गया है।

विभिन्न विद्वानों के अनुसार माने गये 16 संस्कार इस प्रकार हैं–

1. गर्भाधान संस्कार
2. पुंसवन संस्कार
3. सीमान्तोन्नयन संस्कार
4. जातकर्म संस्कार
5. नामकरण संस्कार
6. निष्क्रमण संस्कार
7. अन्नप्राशन संस्कार
8. चूड़ाकरण संस्कार
9. कर्णभेद संस्कार
10. विद्यारम्भ संस्कार
11. उपनयन संस्कार
12. समावर्तन संस्कार
13. विवाह संस्कार
14. वानप्रस्थ संस्कार
15. संन्यास संस्कार
16. अन्त्येष्टि संस्कार

6. पर्व–त्यौहार

त्यौहार सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक हैं। जनजीवन में जागृति के प्रेरक हैं, उसके श्रृंगार हैं। समष्टिगत जीवन में राष्ट्र की आशा, आकांक्षा, उत्साह एवं उमंगों के प्रदाता हैं, राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता के द्योतक है। त्यौहारों की ही वह उत्तम प्रथा है, जिसने भारत को मानव भूमि से भी अधिक देवभूमि बना दिया है।

जीवन की एकरसता से ऊबे परिवार–समाज के लिए त्यौहार वर्ष की गति के पड़ाव हैं। वे भिन्न–भिन्न प्रकार के मनोरंजन, उल्लास और आनन्द प्रदान कर जीवन चक्र को सरस बनाते हैं।

भारतीय संस्कृति में त्यौहारों के स्वरूप का प्रकृतिमय वर्णन करते हुए तनसुखराम गुप्त ने लिखा है– "प्रकृति की सजीवता से मानव उल्लिसित हो उठा। प्रकृति ने संगिनी बनकर उसे सहारा दिया और सखी बनकर जीवन। प्रसन्न मानव ने धरती में बीज डाला। वर्षा ने उसे सींचा, सूर्य की गर्मी ने उसे पकाया। जल और सूर्य मानव के आराध्य बन गए। श्रम के पुरस्कार में जब खेती लहराई तो मानव का हृदय खिल उठा, उसके चरण थिरक उठे, वाणी मुखर हो गई। संगीत स्रोत फूट पड़े। वाणी ने उस आराध्य की वन्दना की, जिसने उसे सहारा दिया था। सभ्यता के विकास में मन की उमंग और प्रभु के प्रति आभार प्रकट करने के लिए यह अभ्यर्थना और नृत्य संगीत ही उसका माध्यम बने। यह वही परम्परा तो है, जो त्यौहारों के रूप में आज भी मुखरित है, जीवन्त है।"[1]

इस प्रकार त्यौहारों, पर्वों के मामले में भारत सम्पन्न देश है। इस भूमि में त्यौहार जिस उत्साह से आते हैं, वह कुछ समय के लिए प्राकृतिक कठिनाईयों से जूझते हुए यहाँ के जनमानस को नई स्फूर्ति और नई चेतना दे जाते हैं।

7. लोकगीत

बुन्देलखण्ड के सांस्कृतिक परिवेश को समझने के लिए आपको कहीं जाना नहीं पड़ेगा। यहाँ बुन्देली लोकगीतों का जो अक्षय भण्डार बिखरा पड़ा है उसमें यहाँ की संस्कृति का स्पष्ट चित्र मिलता है। यहाँ के जनजीवन, आचार–व्यवहार, धर्म, उपासना, रीति–रिवाज आदि का जो रूप लोकगीतों में अभिव्यक्त हुआ है। वही यहाँ का वास्तविक परिवेश है। अतीत काल में उन्हीं लोकगीतों की लय में यहाँ बुन्देली बालाओं ने अकती के ब्याह रचाये हैं, नैनों से नीर बहाकर बेतवा की जलधारा को

---

1. भारतीय संस्कृति की गौरवशाली परम्परा, तनसुखराम गुप्त, पृ0 141

प्रेयसी के अधरों से भी अधिक मधुर बनाकर महाकवि कालिदास की आँखों में अश्रु भर आये हैं, विरहणियों ने हृदय बहलाये हैं और बुन्देली रणबांकुरों ने अपने शौर्य से शत्रु के छक्के छुड़ायें हैं। गीतों की उसी स्वरबेला में, उसी लोकसंगीत की तरंगों में यहाँ की संस्कृति का रूप युगानुरूप परिवर्तित होता रहा है।

लोकगीतों के यही रूप सैरे, राछरे, मल्हारें, सावन, बिलयारी दिवारी, भजन, फागें, सोहरे, गारी, रसिया, सुआटा, मामुलिया, गोटें अचरी कहरवा, धुबियायी आदि के गीत बनकर जनमानस में बिखर गये हैं। यहाँ हर अवसर पर हर माह यही गीत अधरों पर थिरक कर जनमानस को उद्वेलित करते रहे हैं। इन्हीं गीतों के भाव लोक में यहाँ का सांस्कृतिक वैभव छिपा पड़ा है।'[1]

(ङ) मैत्रेयी पुष्पा के कथा-साहित्य का सांस्कृतिक स्वरूप :

1. आध्यात्मिकता

बुन्देलखण्ड के समाज में आध्यात्मिकता का महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ के व्यक्ति परम्परागत देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना करते हैं। यहाँ के समाज में धार्मिक व्यवस्था के विविध रूपों का चित्रण मिलता है। मैत्रेयी के कथा–साहित्य में ईश्वर–भक्ति का अपना अलग ही महत्व है। आपके उपन्यासों व कहानियों के पात्रों में धर्म के प्रति आस्था, देवदर्शन, धार्मिक स्नान, सन्यास व अनेक धार्मिक क्रियाएं देखने को मिलती हैं। पीपल–तुलसी जैसी वनस्पति, बेतवा आदि नदी तथा गौ माता को पूज्य माना गया है। सूर्य पूजन भी अनेक स्थानों पर देखने को मिलता है। ध्यान और पूजन को उपासना का साधन माना है, जिसके द्वारा मन, स्वभाव व जीवन में परिमार्जन तो आता ही है, विचार भी परिष्कृत हो जाते हैं।

मैत्रेयी के 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में उर्वशी, मन्दिर जाती है, माता के दर्शनार्थ।[2] बालकिशन भी देवी का अनन्य भक्त है। वह देवी की उपासना के लिए

---

1. सांस्कृतिक बुन्देलखण्ड, अयोध्या प्रसाद 'कुमुद', नमन प्रकाशन, संस्करण 2004, पृ0 88
2. बेतवा बहती रही, पृ0 18

किसी को बिना बताएं ही माँ भगवती के मन्दिर चला जाता है।[1] बालकिशन की माँ अपने बड़े बेटे के घर आने पर बहुत प्रसन्न होती है। उनके यह शब्द भगवान व पूर्वजों के प्रति असीम आस्था व विश्वास को दर्शाते हैं "बेटा जा, पहले महामाई ढार आ। शंकर महादेव पर पान, फूल और दूध चढ़ा आ। शुभ घड़ी कि डेढ़ साल बाद लौटा है मेरा सुमेर भूले–बिसरे देव–पितर तुम्हारी जै रहे।"[2]

मैत्रेयी के पात्र मन्दिर जाना पुण्य का कृत्य मानते हैं। माता से सुखी जीवन की कामना करते हैं।[3] माँ दुर्गा से भुवन की माँ अपनी व सर्वसुख की कामना करती है। भुवन माँ की पूजा–अर्चना के पश्चात् स्वयं भी देवी–पूजन का आग्रह करती है। चंदर भुवन की ससुराल जाता है। भुवन की सास द्वारा भुवन के मन्दिर जाने के विरोध की बावत् जब भुवन को बतलाता है, तब भुवन उसे समझाते हुए कहती है "मन्दिर जाना पूजा करना है चन्दर, किसी से मिलना–जुलना नहीं।"[4]

'इदन्नमम' उपन्यास में मंदाकिनी और मकरंद दोनों ही प्रातःकाल उठकर भगवान की आराधना करते हैं। जहाँ एक ओर मंदाकिनी सुबह स्नान कर पूजा करती है।[5] वहीं दूसरी ओर मकरंद चंदन का टीका लगाए पूजा पर बैठे हैं। अनन्य भक्त की तरह आँखें मूदें, हाथ जोड़ें।'[6]

मानव का मन जब संसार से विरक्त हो जाता है, तब उसके मन में ईश्वर के प्रति असीम आस्था का भाव जाग्रत हो जाता है और वह अदृश्य शक्तियों की शरण में चला जाता है। 'झूलानट' में बालकिशन की स्थिति भी कुछ इसी प्रकार है– "हारे को हरिनाम। बालकिशन देवताओं की सेवा में जुट गया। अपनी माता गले नहीं लगाती तो धरती माता हैं, देवी माता हैं। भाभी तुलसी का बिरवा सींचती थीं। शंकर भगवान

---

1. झूलानट, पृ0 25
2. उपरिवत्, पृ0 46
3. अगनपाखी, पृ0 100
4. उपरिवत्, पृ0 145
5. इदन्नमम, पृ0 47
6. उपरिवत्, पृ0 181

ढारती थीं। बालकिशन ने अपने जिम्मे ले लिया पूजा का काम।"[1]

'विजन' में विवाह के पश्चात् नेहा ससुराल जाकर वहाँ के वातावरण के अनुरूप अपने में परिवर्तन लाती है। पूजा–अर्चना में भी मन लगाती है। ससुराल में महात्मा आते हैं। प्रवचन, भजन तथा आरती होती है।[2] मंदिर में बैठकर नेहा भगवान से गृहस्थी का सुख तथा शक्ति का वरदान माँगती है– "सास के मन्दिर में भगवान की विभिन्न तस्वीरों के सामने बैठकर सिर पर पल्ला ढँककर आँखें मूँद ली और प्रार्थना की– 'भगवान वर दो, शक्ति दो, सहिष्णुता दो और साथ ही विस्मृति दो।[3] 'प्रभो, यह मेरे जीवन और गृहस्थ की सुख शान्ति का मूल मंत्र है।[4] 'इदन्नमम' में मंदाकिनी का घर ही मंदिर बन गया है। विभिन्न देवी–देवताओं की मूर्तियाँ रखी हैं। इसीलिए तो राउतों की महिलायें कहती हैं– 'बखरी तो तीरथधाम सी बना ली है। लो अब काऊ मंदिर, देवालय में जाने की जरूरत नहीं।'[5]

मैत्रेयी के कथा साहित्य में धार्मिक ग्रन्थों का पारायण भी देखने को मिलता है। मंदाकिनी नित्यप्रति रामायण का पाठ करती है व सभी को रामायण पढ़कर सुनाती है।[6] 'अल्मा कबूतरी' में पूजा–अर्चना – 'मंसाराम, भगवान की पूजा कर रहे थे। चौकी पर नया कपड़ा बिछाकर, चार पीतल की मूर्तियों को स्नान कराकर आनन्दी ने पधराया था। अगरबत्ती जल रही थी। सुगन्ध और पवित्रता चारों ओर व्याप्त हो गयी। रामायण में सुन्दर काण्ड का पाठ चल रहा था। पति–पत्नी बराबरी पर बैठे थे हाथ जोड़कर।'[7]

मैत्रेयी के साहित्य में हिन्दुओं के साथ–साथ मुसलमानों को भी स्थान मिला है। इदन्नमम में श्यामली के चीफ साहब अपने धर्म का निर्वाह करते हुए देखे जाते हैं।[8]

---

1. झूलानट, पृ0 67
2. विजन, पृ0 176
3. उपरिवत्, पृ0 54
4. उपरिवत्, पृ0 54
5. इदन्नमम, पृ0 249
6. उपरिवत्, पृ0 195
7. अल्मा कबूतरी, पृ0 152–153
8. इदन्नमम, पृ0 29

मुसलमान भी अपने धर्म के प्रति अनन्य आस्था व विश्वास रखते हैं। कुसुमा भी उन्हें खाना देकर अपनी भूल पर कहती हैं– "और लो, हमारी बुद्धि देखो, इतेक ख्याल नहीं किया कि चीफ साब बिना निमाज खाना नहीं खायेंगे।"[1]

भारतीय प्राचीन संस्कृति की परम्परागत देन या धार्मिक विश्वासों के अनुसार स्नान करके तुलसी, पीपल व सूर्य देवता पर जल अर्पण करना मनोरथों को पूर्ण करता है। तुलसी, पीपल के पास दीपक जलाना भी धार्मिक कृत्य माना जाता है। 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में उर्वशी अपने जेठ के पुत्र को अच्छे अंक दिलाने के लिए तुलसी माता से विनय करती है।[2] मीरा जब बहुत दिनों बाद अपने ननिहाल जाती है व अतीत की स्मृतियों में खोकर देखती है– 'घर वही है। तुलसी का चौरा वैसा ही है। नानी की ही तरह माँई नहा–धोकर सूरज के सामने लोटा भर पानी ढारती हैं। पानी से गीली हुई धरती को छूकर माथे से लगाती हैं। तुलसी के नीचे घी का दिया जलाकर धरती हैं और परिक्रमा करती हैं।[3]

'चाक' उपन्यास में रंजीत के पिता भी स्नान कर सूर्य देवता को जल चढ़ाते हैं।[4] देवीचरण की बहू नहाकर आई, सूरज को जल दिया।[5] झूलानट में शीलों का तुलसी पूजन, 'शीलो तुलसी का चौरा ढार रही है, पीले रंग की धोती का छोटा सा घूंघट करके गीत गा रही है – तुलसा महारानी नमो–नमो।'[6]

देवोपासना की विविध विधियों के उपरांत प्रसाद अर्पण करके भक्तों में वितरित किया जाता है। 'इदन्नमम' में 'राउतों' के बच्चे हो लिए साथ कि 'जिज्जी का ट्रैक्टर आ गया पूजा होगी। प्रसाद मिलेगा।'[7] मैत्रेयी के कुछ पात्र अत्यधिक श्रद्धालु हैं

---

1. इदन्नमम, पृ0 78
2. बेतवा बहती रही, पृ0 103
3. उपरिवत्, पृ0 12
4. चाक, पृ0 129
5. उपरिवत्, पृ0 246
6. झूलानट, पृ0 148
7. उपरिवत्, पृ0 217–331

तो कुछ अपनी चंचलता, किशोरावस्था की अल्हड़ता को प्रदर्शित करते हुए भगवान को पत्थर की मूर्ति कह देते हैं– 'चन्दर, मन्दिर के दिये में से तेल निकालकर मैं बालों में लगा लेती हूँ, देवी क्या कर लेगीं? देवी पर चढ़ा प्रसाद पुजारी से छिपकर चुरा लो और बरेदियों को दे दो, वे भूखे रहते हैं। पथरा प्रसाद खा सकते हैं?'[1]

मैत्रेयी ने अपने साहित्य में नदी पूजन व धार्मिक स्नान को धार्मिक क्रियाकलापों में सम्मिलित किया है। 'उर्वशी को याद हो आता है, इसी घाट पर। जब कार्तिक के महीने में बैरागी ने श्लोक पढ़कर पूजा कराई थी।'[2] बऊ मंदाकिनी को निद्रा से जगाते हुए कहती हैं– 'उठो, नहाओ–धोओ। आज संकरांत है, एरच वारे पुजारी जी आते होंगे।'[3] कार्तिक स्नान का भी वर्णन मिलता है, 'मोदी लल्ला की बाबड़ी पर जुड़ती हैं सब सखियाँ पूजा करती हैं। गनेश, तुलसी और गौरा–पार्वती के भजन गाती हैं। अपनी चादर के छोर में गीले चावल बाँधती है।'[4]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मैत्रेयी के सम्पूर्ण कथा साहित्य में परम्परागत आध्यात्मिकता अपने परिष्कृत रूप में विद्यमान है। मैत्रेयी ने जिस क्षेत्र को अपनी विषय सामग्री के लिए चयन किया है, वहाँ के कण–कण में धार्मिक आस्था का प्रतिबिम्ब झलकता है तथा उसी भावना के साथ तदाकार होकर लेखिका ने अपनी श्रद्धा समन्वित धारणा साकार की है, जिसे उनके सभी उपन्यासों व कहानियों में स्थान–स्थान पर देखा जा सकता है।

2. अवतारवाद

मानव का शरीर धारण कर ईश्वर या किसी देवता का पृथ्वी पर अवतरण ही अवतार कहलाता है। परमात्मा की विशेष शक्ति जब माया के द्वारा मनुष्य का रूप धारण कर कभी राम के रूप में, तो कभी कृष्ण के रूप में, कभी शंकर के रूप में, तो

---

1. अगनपाखी, पृ0 70
2. बेतवा बहती रही, पृ0 99
3. इदन्नमम, पृ0 200
4. उपरिवत्, पृ0 118

कभी माता दुर्गा के रूप को धारण कर पृथ्वी पर अवतार लेती है। कभी भक्तों पर प्रसन्न होकर, तो कभी दुष्टों के संहार के लिए प्रभु का पृथ्वी पर अवतरण हुआ है। साधुओं की रक्षा के लिए, अधर्म के विनाश के लिए ही भगवान ने अवतार लिए हैं। भगवत् पुराण में इसको स्वीकार किया गया है।

'संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ।

अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ।।'[1]

भगवान ने हर युग में अवतार लेकर समाज में नैतिकता, मर्यादा, श्रेष्ठ जीवन व आदर्शों को स्थापित किया है। मैत्रेयी ने भी इस ओर अपनी लेखनी को मोड़ा है। उनके साहित्य में ईश्वर के अवतारों के प्रति विशेष आस्था–विश्वास का रूप देखने को मिलता है। 'इदन्नमम' उपन्यास में दुष्टों के संहार के लिए ईश्वर के अवतरित रूपों से इस प्रकार प्रार्थना की जा रही है– 'हम तो कहते हैं कि हे मेरे महादेव, मोरी महामाई तुम सबसे बड़े देउता हो। सबके ऊपर। सबको एक आँख से हेरने वाले। जैसा फल उसको दिया वैसा हर राक्षस को देना।'[2]

आपके पात्र विपत्ति में अवश्य ही ईश्वर का स्मरण करते हैं और उन्हें विश्वास रहता है कि वह उन्हें दुःख के सागर से उबारने अवश्य आयेंगे। तभी तो रंजीत अपने ऊपर ईश्वर की कृपा दृष्टि मानकर खुश होता है[3] तथा सारंग अपने पुत्र की रक्षा के लिए देवताओं से विनय करती है– ''ओ मेरी देवी मइया। ओ इस गाँव के देव–पितरो, तुम्हारे पास चंदन की रक्षा की कोई असीस हो तो आज बरसा दो। जीवन भर कुछ न मागूँगी, ओ मेरे मियाँ मसानी .... जाहर पीर।''[4] 'चाक' उपन्यास में नायिका द्वारा मैत्रेयी जी ने ईश्वर से सर्वसुख की कामना को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते हुए कहा है, ओ मेरी देवी गाँव में फसलें उगें, बढ़ें, लहलहाएं और घर भर जाएँ हमारे।[5]

1. भागवत पुराण, 10/33/27
2. इदन्नमम, पृ0 273
3. चाक, पृ0 45
4. उपरिवत्, पृ0 61
5. उपरिवत्, पृ0 45

आपके पात्रों में ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति–भाव है। वे ईश्वर की पूजा–अर्चना करके अपने संकट के समय में ईश्वर के साथ होने पर विश्वास करते हैं। वे अपने मनोरथों को ईश्वर द्वारा पूर्ण कराना चाहते हैं। 'झूलानट' उपन्यास में पूजापाठ, भक्ति द्वारा आपने यही दर्शाया है– 'उन दिनों उसने देवी दुर्गा की भक्ति और हनुमान की उपासना कुछ ज्यादा सख्त कर दी। चार बजे से पहले ही उठ जाना, नहाना, धोना, हनुमान चालीसा का पाठ, देवी के मंदिर में जल–चढ़ाकर बैठ जाने के बाद दुर्गा सप्तशती के छंदों का गायन। सुधि–बुधि खोकर लीन हो जाना।'[1]

संसार की मोह माया से निराश होकर मनुष्य ईश्वर की शरण में जाना चाहता है। जब उसे कहीं से सहायता प्राप्त नहीं होती, तब वह ईश्वर से अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना करता है। ऐसा ही 'विजन' उपन्यास में नेहा द्वारा कहा गया है "धैर्य, धीरज, सब्र। इस तरह के शब्दों को जपती हुई अब मैं ईश्वर कही जाने वाली महाशक्ति के सामने अपने आपको समर्पित करने लगी। ईश्वर ही क्यों उसकी छोटी–छोटी ताकतों को भी याद किया। सभी देवी–देवता मेरी सहायता करें। मम्मी के सत्यनारायण स्वामी और वैष्णों देवी कोई चमत्कार दिखाएँ, माँ .... मेरी भक्ति दया शक्ति की दो बूँदों की याचक है।"[2]

अवतार धारण करके ही भगवान ने अपने भक्तों का सदैव कल्याण किया है। इसीलिए मैत्रेयी के पात्र भी विश्वास के साथ विश्व का कल्याण करने वाली उस परम शक्ति की कृपा दृष्टि की कामना करते हैं। पापों का नाश ईश्वर ने ही अनेक रूप धारण कर किया है और करते रहेंगे, तभी 'चिह्नार' में सुजान कहता है– 'इस घोर कलियुग को तुम भी पूरी दृष्टि गाड़े देख रहे हो चुपचाप। क्यों सूर्य देवता – क्यों नहीं भस्म कर डालते पापात्माओं को?'[3]

मैत्रेयी के उपन्यासों व कहानियों में धार्मिक पक्ष का अपना अलग स्थान है।

1. झूलानट, पृ0 29
2. विजन, पृ0 63–64
3. चिह्नार, कहानी – हवा बदल चुकी है, पृ0 70

अवतारवाद पग–पग पर मिलता है। कहीं सारंग का दुःख में साथ देते हुए, तो कहीं नेहा द्वारा अपने कष्टों को दूर करने की ईश्वर से विनय करते हुए, तो कहीं भक्तों की मदद करते हुए। तभी तो भक्त ईश्वर से सहायता के लिए प्रार्थना करते हुए कहता है– 'मेरे पिरभू, तू ही निकाल मुझे, तेरे सिवा और कौन यह उचित–अनुचित का फेर। मोह माया का जंजाल, अपने पराये की परिभाषा। इस भव सागर के झूठे बंधनों से एक बार फिर मुक्त कर मेरे परमात्मा।'[1]

3. परलोक व पुनर्जन्म

जन्म और मृत्यु दो निर्विवाद सत्य हैं, जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु भी अनिवार्य है। भारतीय लोक–मानस भाग्य को कर्म–रेखा मानकर परलोक की अवधारणा के सहारे मन को संतुष्टि प्रदान करता है और इसी अवधारणा को वह पुनर्जन्म की संकल्पना का मूलाधार मानता है। परलोक व पुनर्जन्म को कर्मफल का आधार मानते हुए ही तुलसीदास जी ने सत्य ही लिखा है–

'कर्म प्रधान विश्व करि राखा ।

जो जस करई, सो तस फल चाखा ।।'

मैत्रेयी ने भी प्रसंगतः इन धार्मिक मान्यताओं का उल्लेख अपने साहित्य में किया है। आपके कथा–साहित्य में भी लोक–परलोक सम्बन्धी जन विश्वास अभिव्यंजित है। उनके पात्रों का परलोक–पुनर्जन्म व स्वर्ग–नरक पर अटूट विश्वास है। वे कोई कार्य करने से पूर्व अपने अगले जन्म के विषय में अवश्य सोचते हैं। परिवार के किसी एक सदस्य द्वारा समाज के विपरीत कोई कार्य करने पर उस परिवार के पूर्वज भी नरक के भागी बनते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण आपके साहित्य में मिलते हैं। 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में वर्णित इसी प्रकार का उदाहरण– "पर बैन, आज अपनी देहरी पाप के नरवा में डूब गई। इतर–पितर, पुरखा सब नरक के भागी। ऐसौ अजस, अब जियत – मरत कितै ठौर मिलहै हमें।'[2] 'चाक' उपन्यास में रंजीत द्वारा मत्स्य पालन का

1. ललमनियाँ, कहानी – छाँह, पृ0 117
2. बेतवा बहती रही, पृ0 147

ग्रामवासियों द्वारा विरोध किया जाता है। मत्स्य पालन को उच्च जाति के लिए वर्जित कार्य मानकर वे कहते हैं कि– 'जिस ग्राम में मुसलमान भी अंडा प्याज छिपकर खाते हों, वहाँ पर रंजीत मांस–मछली के ढेर लगाए, कहाँ तक उचित है। इससे पुरखों का परलोक बिगड़ेगा।'[1]

'इदन्नमम' उपन्यास में कुसुमा व दाऊ के सम्बन्धों को लेकर सास उसे परलोक के प्रति सचेत करते हुए कहती है– 'कीरा परेंगे तेरे। परलोक बिगरेगा। रंडी जे जनम तो गया ही मुँह मारते अगला भी गाड़ दिया पाप में।'[2]

परलोक के दोनों लोकों का वर्णन मैत्रेयी ने अपने कथा साहित्य में किया है। एक स्वर्ग और दूसरा नरक। अगर व्यक्ति अच्छे कर्म करेगा तो उसे स्वर्ग की प्राप्ति होगी और यदि बुरे कर्म करेगा तो नरक का भागी बनेगा। आपके पात्रों का इस बात पर अटूट विश्वास है। अनेक स्थानों पर अपने कर्म के अनुसार पात्र अपने स्वर्ग और नरक के मिलने को व्यक्त करते हैं। जैसा कि झूलानट की शीलो के शब्दों में स्पष्ट होता है– 'अम्मा जी एक बार को तुम्हारा बेटा न खाए हमें मलाल नहीं, पर हमारी बूढ़ी पुरिखा भूखी प्यासी रहे। हाय! सच्ची नरक में ठौर न मिलेगा।'[3] इसी प्रकार 'इदन्नमम' में मंदाकिनी के शब्दों से स्पष्ट होता है कि जो अच्छे कर्म करेगा, उसे निश्चय ही स्वर्ग की प्राप्ति होगी– 'अब हेर लो अपने बेटे को, स्वर्ग में बैठी हेरो।'[4]

भँवर भी परलोक पर विश्वास करते हुए हास्य भाव से ही सही पर अपने भावों को प्रकट करता है– 'भइया दिखाना तो अपनी टोपी। साला दरोगाई में तो चुना नहीं गया। सिपाही बनकर ही अम्मा को दिखा आऊँ। नहीं तो यही इच्छा लिए परलोक सिधार जाएँगी।'[5]

मैत्रेयी जी का मन्तव्य है कि सती होकर कोई भी स्त्री स्वर्ग की अधिकारिणी

1. चाक, पृ0 53
2. इदन्नमम, पृ0 145
3. झूलानट, पृ0 95
4. इदन्नमम, पृ0 226
5. चाक, पृ0 163

हो जाती है। प्रमाण स्वरूप 'अगनपाखी' उपन्यास का कथन दृष्टव्य है– 'यह पाप माना जाता है शास्त्रों में। कोई पापी बनना चाहेगा? सती भी परलोकवासिनी होकर स्वर्ग की, मोक्ष की इच्छा रखती हुई प्राण त्यागती है।[1] 'विजन' में जब डॉ0 नेहा को अपना घर नरक व ससुराल स्वर्ग के समान लगती है, तब लगता है कि मानो परलोक पृथ्वी पर ही उपस्थित हो गया है।'[2]

मैत्रेयी ने अपने पात्रों के माध्यम से इस लोक को छोड़कर उस अदृश्य लोक की चिंता को व्यक्त किया है। ऐसा लगता है कि उनके प्रत्येक पात्र को अपना परलोक सुधारने की बहुत चिंता है। 'विजन' की नेहा कहती है– 'गंगा नहाने का महत्म्य है। आँख की रोशनी को कौन पूछता है? परलोक जरूरी है, संसार मोह–माया मिथ्या।'[3] 'कही ईसुरी फाग' में रुक्मिनी बिरतिया को परलोक सुधारने की शिक्षा देती है, तो वह उस बात को हँसी में उड़ाकर कहता है– 'हमें परलोक बिगाड़ने की दहशत दिखा रही तैं।'[4]

'ललमनियाँ' में जहाँ बेटी का एक पैर स्वर्ग में व एक पैर नरक में बतलाया गया है'[5], वहीं दूसरी ओर पत्नी को पति द्वारा पैर छूने पर नरक का अधिकारी बनना मंजूर नहीं।'[6] तो कहीं समाज की पुरुषवादी घृणित व्यवस्था पर करारा प्रहार करते हुए कहा है– 'अपने देवर को क्यों घसीटती हो इन दरिन्दों के बनाए नरक में।'[7]

हिन्दू धर्म में परलोक व पुनर्जन्म पर बहुत विश्वास किया जाता है। भारतीय धर्म ग्रन्थों में पुनर्जन्म की कई कथाओं का उल्लेख मिलता है। परलोक–पुनर्जन्म का विश्वास मनुष्य को सुपथ की ओर ले जाता है। मैत्रेयी ने इन धार्मिक विश्वासों को

---

1. अगनपाखी, पृ0 174
2. विजन, पृ0 138
3. उपरिवत्, पृ0 195
4. कही ईसुरी फाग, पृ0 170
5. ललमनियाँ, कहानी– रिजक, पृ0 67
6. चिह्नार, कहानी – भँवर, पृ0 103
7. उपरिवत्, कहानी – केतकी, पृ0 131

अपने साहित्य में स्थान प्रदान किया है। पुनर्जन्म के सम्बन्ध में 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में बैरागी की माँ का कथन– 'पुनर्जन्म पा गया बेटा। बहू का पति बनकर वह उनके आँगन में आ खड़ा हुआ।'[1] इसी कथन को सहमति प्रदान करते हुए 'इदन्नमम' उपन्यास में मैत्रेयी ने बऊ के माध्यम से कहा है– 'अब सात जनम धर ले तबहूँ नहीं हो सकती महेन्दर की चौखट जोग।'[2] झूलानट उपन्यास में बालकिशन अपने व शीलो के सम्बन्ध में कहता है– 'इस औरत को जिसको बालकिशन ने मन से अपनी अर्द्धांगिनी मान लिया है, जिसके साथ वह जीवन पर्यन्त रहना चाहता है कि अगले जन्मों में भी शीलो की कामना है बालकिशन को।'[3]

अगनपाखी उपन्यास में मैत्रेयी ने पुनर्जन्म का सजीव एवं सटीक चित्रण किया है। चित्रण देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि भुवन ने वास्तव में पुनर्जन्म धारण कर लिया है। ग्रामीण अपनी अन्तर्भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं– 'विजय सिंह की औरत ने देवी का अवतार ले लिया। कचहरी हिला दी। नहीं उसका पुनर्जन्म हुआ है। कैसा पुनर्जन्म, चुड़ैल योनि में आ गयी है।'[4]

उक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दू धर्म में परलोक एवं पुनर्जन्म की आस्था गहराई से परिव्याप्त है। बुन्देलखण्ड का सामान्य जनमानस इन मान्यताओं के प्रति अटूट विश्वास रखता है। इसी विश्वास को मैत्रेयी पुष्पा ने अपने साहित्य में सफलता से उकेरा है।

4. पर्व–त्यौहार

बुन्देलखण्ड की धरती को आनन्द की सरिता, उल्लास व मंगल–माधुर्य से ओत–प्रोत माना जाता है। यहाँ कदम–कदम पर व्रत, पर्व–त्यौहार तथा उत्सव मिलते हैं। कभी बसन्त पंचमी, होली, दशहरा तो कभी दीपावली, शिवरात्रि जैसे सांस्कृतिक

---

1. बेतवा बहती रही, पृ0 67
2. इदन्नमम, पृ0 57
3. झूलानट, पृ0 107
4. अगनपाखी, पृ0 7

एकता के सूत्रधार त्यौहार आते हैं। श्री अशोक कौशिक ने इस संदर्भ में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है– 'भारत सपेरों, जादूगरों और टोने–टोटकों का नहीं अपितु व्रत–पर्व–त्यौहार, मठ–मंदिरों, गुहा–गुरुद्वारों तथा संत–महात्माओं का देश है।'[1] पर्व त्यौहारों के विषय में तनसुखराम गुप्त ने भी इस कथन का समर्थन करते हुए लिखा है– 'भारत के पर्व देश की सभ्यता और संस्कृति के दर्पण हैं, जीवन के श्रृंगार हैं, राष्ट्रीय उल्लास, उमंग और उत्साह के प्राण हैं, विभिन्नता की इन्द्रधनुषी आभा में एकरूपता और अखण्डता के प्रतीक हैं, और हैं जीवन के अमृत उत्सव।'[2]

मैत्रेयी जी के साहित्य में भी पर्व–त्यौहारों, सांस्कृतिक परम्पराओं, विश्वासों और आदर्शों का साक्षात् एवं अन्तःस्पर्शी आत्मदर्शन मिलता है, तो कहीं त्यौहारों का मन को आह्लदित करने वाला वर्णन मिलता है। बसन्त पंचमी को ऋतु के आगमन का प्रतीक माना जाता है। मैत्रेयी ने भी अपने साहित्य में बसन्त पंचमी के उत्सव व मेलों का वर्णन किया है। 'चाक' उपन्यास में कहीं रंजीत सारंग से खुश होकर मेला ले जाने को कहता है तो कहीं 'नहा–धोकर बसंती पंचमी का मेला देखने जाती है।'[3]

मैत्रेयी पुष्पा ने भारतीय संस्कृति एवं धार्मिक उत्सवों के अनुरूप ही बुन्देलखण्ड की संस्कृति को रूपायित किया है। होली फाग एवं रंग का त्यौहार है। बुन्देलखण्ड के कृषक पके हुए अन्न को देवताओं को अर्पित करके इस उत्सव को हर्ष और उल्लास से मनाते हैं। इसे 'नवसयेष्टि' पर्व के रूप में भी मनाया जाता है। इसी परम्परा को स्वीकारते हुए मैत्रेयी ने होलिकोत्सव का वर्णन करते हुए लिखा है– 'पूरणमासी को होली पूजन और परमा को शोक दिवस। रंग न गुलाल। दौज को खेली जायेगी होली। मंदाकिनी क्या, सब जानते हैं यह बात, परमा के दिन झाँसी को अंग्रेज़ों ने हथिया लिया था और आक्रोश में रानी ने और प्रजा ने होली नहीं खेली थी। तब से द्वितीया

---

1. बारह महीने के व्रत, पर्व और त्यौहार, अशोक कौशिक, नई दिल्ली, डायमंड पॉकेट बुक्स, पृ0 11
2. भारतीय संस्कृति की गौरवशाली परम्परा, तनसुखराम गुप्त, पृ0 143
3. चाक, पृ0 250

को मनाई जाती है फाग।'[1] बुन्देलखण्ड की भूमि पर होली का उत्सव बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। फगवारे गली–गली फागें गाते दिखाई देते हैं। ऋतु परिवर्तन के साथ प्रकृति भी इस उत्सव में अपनी अहम् भूमिका के साथ उपस्थित होती है। तभी तो मंदाकिनी के मन का प्रकृतिमय वर्णन करते हुए मैत्रेयी पुष्पा ने लिखा है– 'मंदाकिनी के मन में सरसों फूल उठी है। तितलियाँ उड़ती हैं, चिड़ियाँ चहकती हैं। पौधे हरे रंग पर पीली चादर ओढ़े खड़े हैं। आकाश निर्मल–नीला। सूरज गुनगुनाता, चन्द्रमा शीतल। भोर सुनहरी, रातें श्यामा। होली है। फाग है। बसंत है।'[2]

होली के अवसर पर बुन्देलखण्ड अंचल में विशेष पकवान बनाए जाते हैं, जिनमें 'गुझियाँ' प्रमुख हैं।[3] होली को भाई–बहन के मिलन का त्यौहार भी माना गया है। भाई दौज पर बहनें भाई का टीका करती हैं।[4] 'ललमनियाँ' में सिस्टर डिसूजा को धर्म बहन मानते हुए कहा है– 'बहिन जी, अपने भाई साहब को टीका लगा दो।'[5]

बुन्देलखण्ड अंचल अपने पर्व त्यौहारों के द्वारा यहाँ की सांस्कृतिक परम्परा को अक्षुण्ण बनाये हुए है। बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक परम्परा में 'अक्षय तृतीया' का विशेष स्थान है। इसे बुन्देलखण्ड में 'अक्ती' के नाम से भी माना जाता है। यह त्यौहार बैशाख शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है। गुड्डा–गुड़िया के विवाह का त्यौहार, बालक–बालिकाओं का भावनात्मक उत्सव व कृषक जीवन में विशेष महत्व है 'अक्ती' का। कृषक खेतों पर पूजा करने जाते हैं। 'चाक' उपन्यास में कृषक जीवन में 'अक्षय तृतीया' का महत्व स्पष्ट करते हुए लिखा है– 'आज अखतीज है, 'अक्षय तृतीया'। श्रीधर मास्टर स्कूल में बालकों को बताशे बाँट रहे हैं।[6] बाबा मास्टर को 'अक्षय तृतीया' का महत्व बता रहे हैं– 'मास्टर जी, इन घड़ों में पानी भरा है। सबेरे ही सबेरे

---

1. इदन्नमम, पृ0 128–129
2. उपरिवत्, पृ0 128
3. चिह्नार, कहानी – कृतज्ञ, पृ0 93
4. गोमा हँसती है, कहानी – गोमा हँसती है, पृ0 150
5. ललमनियाँ, कहानी – सिस्टर, पृ0 25
6. चाक, पृ0 389

भरे होंगे सारंग ने। चार घड़े। मुट्ठी–मुट्ठी भर चने डाले होंगे पानी में। बाबा बता रहे थे कि चंदन अपनी महीन आवाज में चहक उठा 'इन घड़ों के नाम रखे हैं मास्साब–असाढ़, सावन, भादों, क्वार। वर्सा के महीनों पर नाम रखे जाते हैं मास्टर जी। जिसमें चने जल्दी उगेंगे, उस महीने ज्यादा बर्सा का जोग माना जाता है।'[1] बाबा अपने अनुभव बता रहे हैं मास्टर को।

रक्षाबंधन को बुन्देलखण्ड अंचल में 'साउन' कहा जाता है। यह त्यौहार भाई–बहन के पवित्र रिश्ते का प्रतीक पर्व है। बहन–भाई को राखी बाँधकर रक्षा का वचन लेती है। मंदाकिनी भी शकील को राखी बांधकर रक्षाबंधन का त्यौहार मनाती है।[2] सावन के त्यौहार के साथ भुजरियों का भी उत्सव मनाया जाता है। भुजरियों का वर्णन करते हुए 'इदन्नमम' उपन्यास में लिखा है– 'रक्षाबंधन है आज। राखी और भुजरियों का त्यौहार।'[3] धानी रंग की भुजरियाँ हैं मंदाकिनी की। खूब लम्बी। खूब घनी। जैसे खेत में एक फुट लम्बे गेहूँ के घने पौधे खड़े हों।[4] कहीं सावन पर विवाहित युवतियों की ससुराल से सावनी आने का वर्णन मिलता है'[5] तो कहीं सावन के एक दिन पहले 'खजुरियाई' के पूजन में बनाए जाने वाले पकवानों का। सारंग कहती है– 'सनूना, स्त्री पुरुषों का मिला–जुला उत्सव बरखा पर्व।'[6]

'सुआटा' बुन्देलखण्ड के अंचल विशेष का त्यौहार है। यहाँ का ग्रामीण समाज बड़े ही लगन व उल्लास पूर्वक इस उत्सव को मनाता है। 'अगनपाखी' उपन्यास में 'भुवन' सुआटा का त्यौहार मनाती है, व मिट्टी का सुआटा दीवाल पर बनाकर उसे पुष्पों से सज्जित करती है।[7] 'इदन्नमम' उपन्यास में मंदाकिनी भी सुआटा का उत्सव बहुत धूमधाम से मनाती है।[8]

---

1. चाक, पृ0 389
2. इदन्नमम, पृ0 39
3. उपरिवत्, पृ0 38
4. उपरिवत्, पृ0 39
5. चाक, पृ0 96
6. उपरिवत्, पृ0 105
7. अगनपाखी, पृ0 24
8. इदन्नमम, पृ0 116

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में नवदुर्गा के नवों स्वरूपों के पूजन के पश्चात् दशमी को मनाया जाता है 'दशहरा', जिसे 'विजयदशमी' भी कहा जाता है। भगवान राम ने 'दशहरा' के दिन ही रावण का वध किया था। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने साहित्य में दशहरे का वर्णन करते हुए, दशहरे की उमंग में रंगे हुए बालक को चेतावनी देते हुए लिखा है– 'तुम पइसा सँभालकर ले जाना, कहीं गैल में ही गिरा जाओ, काहे को तुम्हारा ध्यान दशहरा के तीर–कमानों में लगा हुआ है।[1] विजयादशमी को विजय–पर्व के रूप में मनाया जाता है। क्षत्रिय वर्ग इस दिन अस्त्रों–शस्त्रों की पूजा करते हैं। सारंग भी अपने क्षत्रिय होने को प्रमाणित करते हुए कहती है– 'मैं दुश्मनों को दिखा दूँगी कि मेरा बेटा कायर नहीं। मेरी कोख से जनमने वाला दशहरे की पूजा में हथियार संभालेगा, हम क्षत्रिय हैं।'[2]

दीपावली को प्रकाश पर्व माना जाता है। दीपावली पर धन–सम्पत्ति, सौभाग्य एवं सत्वगुण की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी व गणेश जी का पूजन होता है। जनमानस में प्रसन्नता, हर्ष–उल्लास व उमंग का संचार होता है। दीपावली श्री सम्पन्नता की कामना का महापर्व है। बुन्देलखण्ड में दीपावली के त्यौहार पर साफ–सफाई की जाती है, जैसाकि 'इदन्नमम' उपन्यास में वर्णित है– 'त्यौहार का अवसर है, जिससे जैसा बन पड़ा लीप–पोत लिया, किसी ने गोबर से तो किसी ने पोतनी मिट्‌टी से। किसी–किसी ने सफेदी में नीला थोथा मिलाकर पोती है बखरी।'[3]

दीपावली का त्यौहार लोग मिल–जुलकर मनाते हैं। यह सामाजिक एकता का प्रतीक है। दीपावली पर दीपक जलाना एक सांस्कृतिक परम्परा है, जिसे मैत्रेयी पुष्पा के 'चाक' उपन्यास में देखा जा सकता है– 'रात के समय काँसे की थाली में दिवला उजियार कर सजा लिए सारंग ने।'[4] अमावस की अँधियारी रात। सास के थान

---

1. इदन्नमम, पृ0 318
2. चाक, पृ0 128
3. इदन्नमम, पृ0 310
4. चाक, पृ0 196

पर दिया धरने जाना है।'[1]

मैत्रेयी के उपन्यासों में लोक–संस्कृति का यथार्थ रूप अभिव्यंजित हुआ है। कहीं 'सुआटा' की आकर्षक झाँकी है तो कहीं रक्षाबंधन में भाई–बहिन के पवित्र प्रेम का प्रदर्शन। कहीं जगमगाती दीपावली है तो कहीं युवकों की वीरोचित भावना को उकसाता दशहरा पर्व। कहीं 'झिझिंया' नृत्य में युवतियों की अठखेलियाँ साकार हैं, तो कहीं होलिकोत्सव का रंगारंग आयोजन। अतः कहा जा सकता है कि मैत्रेयी के कथा–साहित्य में बुन्देली संस्कृति पग–पग पर थिरकती हुई अपनी व्यापकता एवं मोहकता को समेटे हुए है।

5. संस्कार

मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य में संस्कारों का सटीक वर्णन उपलब्ध होता है। इन संस्कारों के रूप में बुन्देलखण्ड की संस्कृति का साकार वर्णन हुआ है। लेखिका ने जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त घटित सोलह संस्कारों को प्रसंगानुसार अभिव्यक्त किया है। इन वर्णनों में मैत्रेयी को न तो कथाक्रम में कोई परिवर्तन करना पड़ा है और न भावाभिव्यंजना में कोई व्यतिक्रम उपस्थित हुआ है। संस्कारों के चित्रण में स्वाभाविकता के साथ प्राचीन वैदिक संस्कृति की प्रतिच्छवि दृष्टिगोचर होती है। उनके उपन्यासों एवं कहानियों में आगत संस्कारों का वर्णन निम्नप्रकार है।

गर्भाधान संस्कार –

मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य में गर्भावस्था के चित्रण भी उपलब्ध हैं। माँ बनना स्त्री जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है, इसे पारिवारिक पदोन्नति कहें तो अत्युक्ति न होगी। स्त्री से ही मानुषी सृष्टि का निर्माण होता है। बिना स्त्री के संसार में यह सृष्टि असम्भव है। मैत्रेयी ने 'कस्तूरी कुण्डल बसै' उपन्यास में इस संदर्भ को व्यक्त करते हुए लिखा है– 'कस्तूरी गर्भवती हुई। विवाह के बाद जैसे हर स्त्री माता बनती है। माता बनना उसके पद में बढ़ोत्तरी होना है, बड़ी–बूढ़ियों का ही नहीं, पूरे

1. चाक, पृ0 197

समाज का यही मानना है, कस्तूरी इस बात को रस्म की तरह मानती है।'[1]

चरुआ –

गर्भाधान के उपरान्त माँ को जननी बनने का दायित्व निर्वाह करना पड़ता है। बच्चे के जन्मोपरांत कुछ स्थानीय संस्कार बुन्देलखण्डी समाज में निम्नवत् उपलब्ध हैं। शिशु जन्म के दो दिन बाद चरुआ रखा जाता है। बुन्देलखण्ड में यह संस्कार हर जगह सम्पन्न होता है। ग्राम की औरतों को आमंत्रित करके घर में उत्सव मनाया जाता है। ग्रामीण औरतें सोहर गीत गाती हैं तथा शिशु और उसकी माँ के स्वास्थ्य की भगवान से प्रार्थना करती हैं। गाय के गोबर से दीवाल पर (साँतिया) बनाए जाते हैं। 'चाक' उपन्यास में इस प्रकार चरुए का उल्लेख मिलता है– 'लाला भवानीदास के पोते के चरुए (चरुआ) चढ़ेंगे आज। चरुए का मतलब बालक के जन्म के दो दिन बाद का उत्सव। जच्चा चलकर आँगन में आती है। चौक पर थोड़ी देर खड़ी रहती है।'[2]

'औरतें कटोरी–बिलियों में अनाज ले–ले कर जुड़ने लगीं। चौक पर अन्न इकट्ठा होने लगा। नाइन के सारे नेग बड़ी बहू खुद कर रही हैं। चौक पूरा, कोरी कल्सिया गोबर की अल्पना से चीती। कोठे के द्वार के दोनों ओर लौंगसिरी बीबी ने सींकें लगाकर गोबर के सतिए धरे।'[3]

छटीं – दस्टौन

शिशु के जन्म से छठवें दिन का उत्सव अर्थात् 'छटी' और दसवें दिन का उत्सव 'दस्टौन', जिसमें ग्रामवासियों को आमंत्रित करके भोजन कराया जाता है। अपनी–अपनी सामर्थ्य से मनाए जाते हैं यह संस्कार। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में कदमबाई जब पुत्र को जन्म देती है तब कबूतरा बस्ती में खुशी की लहर आ जाती है। अकेली कदमबाई क्या–क्या करे, इसलिए सब मिलकर राणा की छटी का इंतजाम करते हैं। मैत्रेयी ने लिखा है– 'बच्चे की छटी थी। गुली और दाल–भात की पंगत

1. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 19
2. चाक, पृ0 372
3. उपरिवत्, पृ0 373

बैठने लगी।[1] दस्टौन का वर्णन भी आपके 'ललमनियाँ' कहानी संग्रह में मिलता है।'[2]

नामकरण संस्कार –

हिन्दू संस्कारों में प्राचीन समय से ही व्यक्तिगत नाम का महत्व रहा है, और इस संस्कार को धार्मिक संस्कार के रूप में मनाया जाता है। नामकरण संस्कार के इस अवसर पर परिवार में एक उत्सव होता है। विवाह के समान ही इसमें भी आमंत्रण पत्र भेजे जाते हैं, नाच–गाना व खाना–पीना होता है। ब्राह्मण के द्वारा पूजा–पाठ कराया जाता है तथा मंत्रों–हवन आदि के बाद शिशु का नामकरण किया जाता है। नामकरण संस्कार शिशु जन्म के दस दिन से लेकर एक वर्ष के अन्दर ही किया जाता है। इस संदर्भ में मैत्रेयी जी के उपन्यास 'बेतवा बहती रही' का उदाहरण दृष्टव्य है– "नामकरण संस्कार दाऊ ने ऐसे ही सादा–सा किया था, पर जब देवेश सवा महीने का हुआ, तब उसकी बुआ पलना लेकर आयी थी और तभी दाऊ ने दावत का बड़ा आयोजन किया था। निमंत्रण पत्र छपे थे, लिबउआ भेजे गये।"[3]

'कस्तूरी कुण्डल बसै' उपन्यास में भी मैत्रेयी के नामकरण के समय ब्राह्मण ने कहा था "कि यह कन्या ज्ञानवान बनेगी।"[4]

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में मैत्रेयी पुष्पा ने माना है कि नामरकण ब्राह्मण के अलावा कोई परिवार का बुजुर्ग सदस्य भी कर सकता है। कबूतरा समाज में जब कदमबाई के घर पुत्र का जन्म होता है, तब नामकरण की समस्या उत्पन्न होती है– "नाम क्या धरा जाएगा? मलिया जैसे बूड़े ही नामकरण कर देते हैं। नाम धरने का हक किसी को भी हो सकता है।"[5]

पछ –

बुन्देलखण्ड के समाज में जब किसी के घर में बच्चा होता है, तब जच्चा के

---

1. अल्मा कबूतरी, पृ0 33, 36
2. ललमनियाँ, कहानी – तुम किसकी हो बिन्नी, पृ0 127
3. बेतवा बहती रही, पृ0 59
4. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 36
5. अल्मा कबूतरी, पृ0 36

मायके पक्ष से पछ भेजा जाता है, जिसमें जच्चा व नवजात शिशु के लिए सोने–चाँदी के आभूषण व कपड़े आते हैं। परिवार के लोगों के लिए भी यथासम्भव वस्तुएं भेजी जाती हैं। 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में पछ भेजे जाने का चित्रण– 'नाना और उर्वशी के दादा ने यथाशक्ति 'पछ' भेजा था– देवेश के लिए सोने के कड़े, जंजीर, कपड़े। उर्वशी को साड़ी, कान के झुमके। सबके लिए रुपये–पैसे। आटा–चावल, घी–चीनी, दाल, सूप–चलनी और भी तमाम चीजें।'[1]

मुण्डन संस्कार –

बच्चे के जन्म के कुछ समय पश्चात् उसका मुण्डन संस्कार सम्पन्न होता है। इस संस्कार में नवजात शिशु के बालों को कटवाया जाता है। इस संस्कार को किसी नदी किनारे, मंदिर में या किसी धार्मिक स्थान पर सम्पन्न किया जाता है। 'इदन्नमम' उपन्यास में जब कुसुमा भाभी अपने पुत्र का मुंडन करवाने जाती हैं तो मंदाकिनी से कहती हैं– 'इसका ही मुंडन करवाना था। सो बिन्नू हम चाहते थे कि एरच घाट पर तुम और बऊ उस बखत हमारे साथ रहो। आसीरवाद दो।'[2]

रक्कस –

बुन्देलखण्ड अंचल विशेष में 'रक्कस' संस्कार का भी संस्कारों में एक अलग स्थान है। बुन्देली माएँ अपने पुत्रों को वीरता के लिए प्रेरित करती हैं, उन्हें यह बताती हैं कि पुरखों की सम्पत्ति पर उनका जो अधिकार आएगा, उसकी रक्षा उन्हें किस प्रकार करनी होगी– 'अगनपाखी' उपन्यास का उदाहरण– ''दोनों की माँ ने बचपन में रक्कस दिया था। दोनों माँओं ने गाँव की, खेतों की सीमा दिखाकर कहा था –यह धरती तेरी है, इसको कोई नुकसान न पहुँचाए। यह गाँव तुम्हारा है, इसकी सीमा की रक्षा तुम करोगे। यह कहकर बुन्देली माँए अपने लड़कों की कमर में रक्कस का काला डोरा बाँधती हैं। धागे के जरिए लकड़ी की नन्हीं तलवार लटकाती हैं। पूरी–पपरिया और

---

1. बेतवा बहती रही, पृ0 59
2. इदन्नमम, पृ0 248

गुलगुला की पूजा देती हैं और बेटों को जंग के लिए ललकारती हैं।"[1]

कुआँ पूजन –

बच्चे के जन्म के कुछ समय पश्चात कुआँ पूजन संस्कार मनाया जाता है, जिसमें जच्चा ग्रामीण औरतों के साथ कुआँ का पूजन करने जाती है। किसी शुभ तिथि में यह उत्सव मनाया जाता है। मैत्रेयी के उपन्यासों में भी इस संस्कार का उल्लेख मिलता है– 'बिन्दो–बिन्नू, कुआँ पूजन का बुलउआ है माते के घर का।'[2]

विवाह संस्कार –

विवाह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत लगभग सभी को गुजरना पड़ता है। विवाह स्त्रियों का प्रथम संस्कार होता है। हमारे समाज में विवाह एक अति आवश्यक संस्कार माना जाता है, जिसमें लड़की का पिता लड़के के घर जाकर विवाह की चर्चा करता है व विवाह तय करता है। विवाह के माध्यम से ही व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। मजूमदार एवं मदान ने विवाह संस्कार के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है– "विवाह न केवल जैवकीय आवश्यकताओं की पूर्ति का ही माध्यम है बल्कि धार्मिक अनुष्ठानों एवं पितृ ऋण से उऋण होने का भी माध्यम है। पत्नी के अभाव में व्यक्ति को अपूर्ण माना जाता है। पत्नी प्राप्त करके ही व्यक्ति, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करता है।"[3]

मैत्रेयी के कथा–साहित्य में भी विवाह संस्कार का बहुत स्थानों पर वर्णन मिलता है। कहीं सगाई का, कहीं फेरों का, कहीं जुगिया का, कहीं भाँवर व पाँव पखराई का, तो कहीं कन्यादान, कलेऊ, देवी–देवताओं के पूजने का तो कहीं गौने का वर्णन मिलता है।

'इदन्नमम' उपन्यास में मंदाकिनी व मकरंद के सम्बन्ध में मैत्रेयी ने लिखा

---

1. अगनपाखी, पृ0 13
2. गोमा हँसती है, कहानी– ताला खुला है पापा, पृ0 70
3. नरेश मेहता के उपन्यासों में सांस्कृतिक अनुशीलन, प्रेमलता गांधी, पृ0 35

है– 'मंदाकिनी की पक्यात है। मकरंद की सगाई है आज।'[1]

जुगिया –

बुन्देलखण्ड के समाज की अपनी अलग संस्कृति है तथा अलग पहचान भी। यहाँ के समाज का व्यक्ति अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए बहुत से उत्सव मनाता है। जैसे विवाह संस्कार का एक उत्सव 'जुगिया'। बारात के चले जाने पर विवाह वाले घर की औरतें जुगिया खेलती हैं। इसमें औरतें पुरुष का रूप बनाकर बहुत से खेल करती हैं। 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में जुगिया का चित्रण– "मीरा, बिन्नू, सोउतीं हौ कि जुगिया करबे को इन्तजाम करौ। मूसर कितै–धरौ हमें दै जाओ। चलो तुम और उरवसी दूला–दुलइया बन जाओ।"[2]

भाँवर व पाँव पखराई –

विवाह संस्कार में भाँवर (फेरों) का विशेष महत्व है। यहाँ की संस्कृति में यह परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। वर और वधु की गाँठ बाँधकर सात फेरे लिए जाते हैं व सात–पाँच वचन कहे जाते हैं, जिन्हें वर और वधु दोनों स्वीकार करते हैं। मैत्रेयी ने फेरों का वर्णन अनेक स्थानों पर किया है। 'विजन' उपन्यास में– "वह अग्नि उत्सव, ईश्वर को साक्षी मानकर सात फेरे लिए थे। वे वचन ...... जो एक दूसरे के सुख दुख में साथ निभाने के लिए भरे थे याद आए।'[3] वहीं दूसरी ओर– 'भाँवर और पाँव पखराई हुई।'[4] मंदाकिनी भी गई थी कम उम्र के बालक–बालिका का विवाह देखने।

कन्यादान –

धर्मशास्त्रों के अनुसार कन्यादान को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। इसमें कन्या का पिता धार्मिक अनुष्ठान के साथ पवित्र भाव से अपनी पुत्री वर को दान करता है।

---

1. इदन्नमम, पृ0 106
2. बेतवा बहती रही, पृ0 91
3. विजन, पृ0 121
4. इदन्नमम, पृ0 66

मैत्रेयी पुष्पा ने 'चिह्नार' में लिखा है– "शुभ घड़ी में कन्यादान का पुण्य कमाने विक्रम सिंह गाँव आया हुआ था।'[1] बुन्देलखण्ड अंचल में कन्यादान कन्या के पिता के अलावा और भी कोई रिश्तेदार या समाज का प्रतिष्ठित व्यक्ति कर सकता है। इसीलिए चिह्नार में पिता के न होने पर विक्रम सिंह कन्यादान करता है।

कलेऊ (कलेवा) –

विवाह के समय कन्यादान व फेरों के पश्चात् कलेऊ कराया जाता है, जिसमें कन्या पक्ष की स्त्रियां वर को मिठाई खिलाती हैं व उपहार प्रदान करती हैं। जिसे वर सहर्ष स्वीकार करता है। 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में मीरा की शादी के समय जब कलेऊ का समय आता है तो स्त्रियाँ उर्वशी को पुकारती हैं– 'अरी ओ राजगिरि वारी बहू। ओ उरवसी। अरी सगे को टीका तौ कर दो। कलेऊ को लरका आ गयौ है। काय, सास तौ तुम ही हो बेटी।'[2]

विदा –

विवाह संस्कार का सबसे मार्मिक प्रसंग होता है विदा। विदा के समय सभी की आँखों में आँसू होते हैं, बड़ा ही ह्रदय विदारक दृश्य होता है। विदा सभी के लिए थोड़ी देर की भावुकता, कौतूहल और उत्सव से अधिक कुछ नहीं होता, पर विदा होने वाली कन्या के मन पर क्या प्रतिक्रिया होती है, उसे भला और कोई कैसे समझ सकता है, मैत्रेयी ने लिखा है–

"चार कहार जब खेपी रे पालकी,

बिटिया ने रुदन मचाए मोरे लाल।'[3]

इस समय कोई कैसे धैर्य धारण कर सकता है।

विजन व अन्य उपन्यासों में भी मैत्रेयी ने विदा के समय का वर्णन किया है।

---

1. चिह्नार, कहानी– सहचर, पृ0 34
2. बेतवा बहती रही, पृ0 132
3. इदन्नमम, पृ0 108

'कार आगे बढ़ रही है। फूलों से सजी पुष्पक विमान जैसी।'[1] 'सूरज के क्षितिज से उतरते ही शादी में आयी रिश्तेदारनी तथा पड़ोस की महिलाएँ मंगल गीत करतीं, केतकी के पास तक पहुँचीं बिहारीपुर वाली बुआ ने ट्रैक्टर की ही पूजा कर दी, रथ की तरह। बहू को सहारा देकर नाइन ने उतारा था।'[2]

सरबत पिलाना –

बुन्देलखण्ड की अपनी एक प्रथा व परम्परा है कि जब प्रथम बार नववधु घर में प्रवेश करती है जब उसे घर के बाहर ही ननद द्वारा सरबत पिलाया जाता है। नववधु नेग स्वरूप ननद को पैसे या कोई उपहार भेंट करती है। 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में ''कपड़े गहनों में लदी कोठरी में बैठी रही। पसीने से भीगीं एक जोड़ी चूड़ी भरे हाथ उसे सरबत पिलाने आगे बढ़े, उसने गिलास थाम लिया। प्यास लगी थी बड़ी भारी। घूँघट के अन्दर गिलास से सरबत पी लिया। एक रुपये का सिक्का गिलास में डाल दिया तो खन्न की आवाज हुई।''[3]

गौना –

बुन्देलखण्ड अंचल में छोटी अवस्था में ही विवाह का प्रचलन था। अल्पायु के कारण विवाह में वधु की विदा नहीं होती थी। गौना होने का चलन समाज में था। मैत्रेयी ने 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में गौने का दृश्य बड़ी मार्मिकता से चित्रित किया है।[4]

देवी–देवता पूजन

विवाह उत्सव के उपरांत जब विदा होकर लड़की अपनी ससुराल जाती है, तब सर्वप्रथम देवी–देवताओं की पूजा करने मंदिर व ग्राम देवताओं पर जाती है। नववधु, सास–ससुर के दाह संस्कार वाले स्थानों पर भी पूजा करने जाती है। 'बेतवा बहती

---

1. विजन, पृ0 136
2. चिह्नार, कहानी– केतकी, पृ0 123
3. बेतवा बहती रही, पृ0 47
4. उपरिवत्, पृ0 20

निमंत्रण पत्र भेजे जाते हैं, विविध पकवान बनाए जाते हैं, तथा भोज की भी व्यवस्था रहती है।

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा–साहित्य में मृत्यु संस्कार से सम्बन्धित कम ही लिखा है, यहाँ पर उपन्यासों व कहानियों में दिये गये मृत्यु से सम्बन्धित कुछ कथन दृष्टव्य हैं– 'बेतवा बहती रही' उपन्यास में जब मीरा को अपनी अभिन्न सखी उर्वशी के पति की मृत्यु का संदेश मिलता है– 'सर्वदमन इज नो मोर'[1] तो वह सकते में आ जाती है। उर्वशी की मृत्यु हो जाने पर उसके दाह संस्कार का दृश्य "लाल लोहित सूर्य। साँझ का झुलसा आसमान। बेतवा का सुनसान किनारा। चिता जल उठी। धीरे–धीरे लपटें धुंए के साथ आकाश को छूने लगीं। चंदन और आग की मिली–जुली गंध बेतवा के पाट पर फैल गयी।"[2]

'चाक' उपन्यास में गुलकंदी उसकी माँ और बिसुनदेवा घर में आग लग जाने के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, तब गुलकंदी का चचेरा भाई हरप्रसाद उनका क्रियाकर्म करता है। हरप्रसाद ने क्रिया–कर्म किया है। बाल मुड़वाए हैं।[3] 'मेरी माता की तेरहीं (त्रियोदशा) खुलकर करना। मेरी बहन, हिचकियाँ बँध गई हरप्रसाद की।'[4]

'अल्मा कबूतरी' और 'कस्तूरी कुण्डल बसै' उपन्यासों में मैत्रेयी पुष्पा ने इस प्रकार दर्शाया है– "स्वर्गीय छोटे भाई की बेटी जमुनी भतीजी, जिसके पाँव पूजने का विधान है, ताऊ के पाँवों में पड़ी दाह–संस्कार की बाट देख रही है।"[5] मैत्रेयी के परिवार में एक वृद्ध अपाहिज बाबा को छोड़कर घर में कोई पुरुष सदस्य नहीं, मैत्रेयी ही उनकी सम्पत्ति की वारिस। वह चाहते हैं कि उनका दाह संस्कार मैत्रेयी ही करे तभी तो कहा है– 'मेरा क्रिया–कर्म, मेरा श्राद्ध कर्म मेरी पोती करेगी, क्योंकि वही

---

1. बेतवा बहती रही, पृ0 62
2. उपरिवत्, पृ0 150
3. चाक, पृ0 368
4. उपरिवत्, पृ0 368
5. अल्मा कबूतरी, पृ0 47

हमारी जायदाद की वारिस होगी, गजाधर समझा तू?'[1]

हमारी भारतीय संस्कृति में स्त्रियों को दाह-संस्कार करने का अधिकार नहीं है, यहाँ पर पुरुष ही मृत्यु संस्कार का सारा क्रिया-कर्म करते हैं। स्त्री द्वारा दाह-संस्कार करने से उस व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, ऐसी धारणा है। इसीलिए मैत्रेयी ने बाबा के शब्दों पर आपत्ति करते हुए स्वयं लिखा है- 'पांडे, तू कुलीन बाहमन, जनम-मरन के संस्कार जानने, समझने वाला। नाती-पोते, भाई-बन्धु के अलावा किरिया करम करता है कोई? और यह लड़की। अरे, जीते जी जो नहीं कर सका, मौत के आसपास हिम्मत की। बता, तेरी बिरादरी के लोग हमें ऐसा करने की हिम्मत करने देंगे।'[2]

6. वर्णाश्रम व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था -

बुन्देलखण्ड के समाज में वर्ण व्यवस्था का विधान सदियों पुराना है। सामाजिक सम्बन्धों, रीति-रिवाजों तथा आचारों-विचारों में इसकी जड़ें पर्याप्त गहरी हैं। आधुनिक प्रगतिशील समाज में वैज्ञानिक प्रभावों एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावों के कारण वर्ण व्यवस्था का अनुपालन यद्यपि पूर्व की अपेक्षा शिथिल हो गया है, फिर भी बुन्देलखण्ड के पिछड़े अविकसित क्षेत्रों में अद्यतन वर्ण व्यवस्था की गहरी पैठ है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा-साहित्य की अधिकांश विषय सामग्री का चयन बुन्देलखण्ड के उसी क्षेत्र से किया है, जहाँ आज भी उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के लोगों को हेय दृष्टि से देखते हैं तथा परस्पर समान स्तर भी स्वीकारने में विरोध प्रदर्शित करते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में जातिगत भेदभाव को प्रधानता देकर शिक्षक के व्यवहार में भी परिवर्तन दिखाया है। 'स्कूल में खिलते फूलों के रंगों में उतरने वाला राणा बदरंग हो गया। माँ को कैसे बताए, वह पीपल पर चढ़ने लगा

1. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 44
2. उपरिवत्, पृ0 44

था, मास्टर जी ने आकर कमर पर कोड़ा मारा– साले, यह नहीं देखता कि पीपल पर देवताओं का वास होता है। स्कूल जैसी पवित्र जगह में बैठ जाने दिया तो तू हमारे देवताओं के मूँड पर नाचेगा।'[1] एक विद्यार्थी को निम्न वर्ण में जन्म लेने के क्या परिणाम भुगतने पड़ते हैं, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास का उक्त उदाहरण है। ठीक इसी तरह मैत्रेयी के आत्म–कथात्मक उपन्यास 'कस्तूरी कुण्डल बसै' की वर्ण व्यवस्था बुन्देलखण्ड के पिछड़ेपन को अभिव्यक्ति करती है। 'अगर एदल्ला ऊँचे लोगों का बोझ ढोने और गन्दगी साफ करने को तैयार रहे, तो समाज की मार से बच सकता है। ऐसे ही मैत्रेयी उस लड़के का विरोध न करती तो साइकिल की सवारी के साथ सुरक्षा भी पा सकती थी। एदल्ला और मैत्रेयी के साथ ऐसा क्या हुआ कि दोनों बच्चे उस रस्म को नहीं निभा पा रहे, जिससे ऊँचे पुरुषों का अहंकार तुष्ट हो।'[2] यहाँ पर चमार जाति के घर जन्मे एदल्ला को मैत्रेयी से मित्रता करने का भयंकर दुष्परिणाम भोगना पड़ता है और उसका मुख्य कारण प्रदूषित वर्ण व्यवस्था ही है।

'चाक' उपन्यास में भी ऊँच–नीच और भेदभाव का रूप देखने को मिलता है। उच्च वर्ण का अभियान निम्न उदाहरण से स्पष्ट होता है– 'सारंग के प्राणों से एक करुण पुकार निकलती है – हहराती हुई। मैं दुश्मनों को दिखा दूँगी कि मेरा बेटा कायर नहीं। मेरी कोख से जनमने वाला दशहरे की पूजा में हथियार संभालेगा। हम क्षत्रिय हैं। जाति–पांति नहीं होती, आदमी का कर्म क्षत्रिय होता है।'[3] इसी प्रकार 'झूलानट' में जातिगत अनुभव उजागर करता यह उदाहरण प्रस्तुत है। ''मौत से भी कठोर सजा है, जो बालकिशन ने महसूस की। अपमान ही अपमान ...... अवज्ञा ही अवज्ञा ..... मैतर, बसोर, चमारों को अब तक कैसा लगता रहा होगा, बालकिशन ने कुछ ही दिनों में जान लिया।''[4]

'इदन्नमम' उपन्यास में मैत्रेयी ने लोकोक्ति के माध्यम से जनसमाज में

1. अल्मा कबूतरी, पृ0 81
2. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, पृ0 41
3. चाक, पृ0 128
4. झूलानट, पृ0 84

प्रचलित दुर्भावना को अभिव्यक्त किया है निम्न पंक्तियों में। 'यशपाल डबल के ऊपर चढ़ बैठा, ''हम देखें तुम्हारा विरोध। ज्यादा मुँह लग गये हों। चमरिया से चाची कही चौका में चली आई।''[1] बुन्देलखण्ड के पिछड़े भू–भाग में वर्ण भेद अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा कुछ अधिक ही है। 'शतरंज के खिलाड़ी' नामक कहानी की इन पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है 'उस साले धनपाल को भंगी बनाकर छोडूँगा। किसने कुर्मियों में पैदा कर दिया? चमार–बसोरो से भी बदतर निकला। हरामी मेहतर का जायंदा लगता है।'[2]

आश्रम व्यवस्था –

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों एवं कहानियों में मनुस्मृति के निर्देशानुसार उम्र के आधार पर आश्रमों की व्यवस्था का स्वरूप तो नहीं मिलता, किन्तु त्याग पूर्ण साधना एवं संयम के स्फुट उदाहरण यत्र–तत्र अवश्य मिल जाते हैं। 'इदन्नमम' उपन्यास में आश्रम में ब्रह्मचर्य साधना की अनिवार्यता तथा स्त्री–प्रसंग को हानिकारक सिद्ध किया गया है। 'स्त्री तो यहाँ कोई नहीं। भृगुदेव कहते हैं आश्रम पर स्त्रियों का क्या काम? मन चलायमान कर देती है पुरुष का। तपस्या भंग होने का भय रहता है। सन्यासियों का इतिहास उठाकर देख लो, नारी ही शत्रु है तप की, ब्रह्मचर्य की, साधना की।'[3]

उक्त पंक्तियों में सन्यास आश्रम की गरिमा एवं तपस्या भंग होने के भय को रेखांकित किया गया है। इसी तरह 'गोमा हँसती है' कहानी संकलन में तप–साधना की कठोरता को प्रतिबिम्बित किया गया है। 'नादान! पंच खप्पर पंचाग्नि तप भूल गया। पाँच स्थानों पर प्रज्जंवलित लपटों के बीच आसनी लगाकर नंगी देह बैठा रहा था पूरे तीस बरस। सप्ताग्नि, सप्त खप्पर तप, प्रचंड गर्मी, कड़कती ठंड और मूसलाधार वारिस में सात जगह अग्नि प्रदीप्त करके तीन वर्ष। द्वादश चौरासी पुनः तीन–तीन वर्ष।'[4]

मैत्रेयी ने यहाँ उम्र के विभाजन को प्रमुखता देकर कठोर तप–साधना की

---

1. इदन्नमम, पृ0 142
2. गोमा हँसती है, शतरंज के खिलाड़ी, पृ0 20
3. इदन्नमम, पृ0 186
4. गोमा हँसती है, पृ0 52

प्रक्रिया को रूपायित किया है, जिस प्रकार ब्रह्मचर्य आश्रम में शिष्य गुरु के पास रहकर कठोर साधना का प्रशिक्षण प्राप्त करता था, ठीक वैसी ही हठयोग–साधना की कठोरता को लेखिका ने प्रसंगानुसार उक्त पंक्तियों में चित्रित किया है।

ब्रह्मचारी के लक्षणों को स्पष्ट किया गया है निम्न पंक्तियों में– 'न बालों में तेल लगवाएँ, न नहाते समय पीठ मलवाऐं। औरतों का परस मंजूर नहीं महाराज को। बाल ब्रह्मचारी हैं।'[1]

यहाँ स्त्री–विमर्श को त्याज्य बतलाते हुए ब्रह्मचर्य व्रत के कठोर अनुपालन पर प्रकाश डाला गया है।

7. लोकगीत

मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य की भाषा सरस बुन्देली है। बुन्देली की खनक तथा मिठास इनके उपन्यासों एवं कहानियों का विशिष्ट आकर्षण है। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड सांस्कृतिक परम्पराओं एवं रीति–रिवाजों को अपने अन्तर में समेटे है। बुन्देलखण्ड के ग्रामीण अंचलों में उपलब्ध लोकगीत, लोकनाट्य तथा लोक नृत्यों में लोकमंगल की भावना समाहित है। जिन अंचलों को मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा–साहित्य के लिए चुना है, उनमें ऋतुओं, त्यौहारों, पर्वों तथा विविध अवसरों पर गाये जाने वाले विविध गीत इनके कथा–साहित्य में यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं। इनमें भक्तिगीत, लोक कल्याण की भावना से सम्पृक्त हैं। अतः कहा जा सकता है कि आपके कथा–साहित्य में प्रयुक्त भावनात्मक एवं माधुर्यपूर्ण लोकगीत आपकी भाषा एवं शिल्प में अभूतपूर्व सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं।

'जन–मानस अपना उल्लास और कसक लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त करता है। सौन्दर्य, मधुरता, करुणा और वेदना से सराबोर ये गीत सैकड़ों वर्षों की परम्परा में जनमन में इतने बस गये हैं कि किसी को इन गीतों के 'उत्स' का पता नहीं होता है।'[2]

---

1. गोमा हँसती है, पृ0 123
2. बुन्देलखण्ड का लोक जीवन, अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद', नमन प्रकाशन, मण्डपम, राठ रोड, उरई (उ0प्र0), पृ0 1

मैत्रेयी जी के उपन्यासों एवं कहानियों में धार्मिक गीतों का वर्णन बहुलता के साथ मिलता है। धार्मिक गीतों में गणेश जी, देवी शारदा, माँ दुर्गा, राधा–कृष्ण, रामचन्द्र जी तथा वीर हरदौल के गीतों का वर्णन पग–पग पर मिलता है। परम्परागत गीतों में ईश्वर की स्तुति व उपासना की गई है। 'इदन्नमम' उपन्यास में भक्तगण गणेश जी की आरती प्रस्तुत करते हैं–

"मैं सुमिरों सिरी गणराज,
मेरे कीरतन में विघन परै ना ऽ ऽ।"[1]

ओरछा के मंदिर में विराजमान रामलला के लिए गाया जाने वाला गीत–

"विन्ध्य प्रदेश, जिला टीकमगढ़
नगर ओरछा ग्राम,
कि जहँ पर राजे ऽ ऽ सिरी भगवान।"[2]

देवी विषयक गीतों में शारदा व माँ दुर्गा का वर्णन भी मैत्रेयी पुष्पा की धार्मिकता को प्रदर्शित करता है–

"कैसे मैं दरसन पाऊँ री
माई तेरी सकरी दुअरिया।"[3]

X X X

'मोरी खबर सारदा लइए
कंठ बिराजी रइए।[4]

रामचन्द्र जी व सीता जी के मिलन, सौन्दर्य, वेशभूषा तथा सूर्योपासना का सुन्दर चित्रण करते हुए मैत्रेयी पुष्पा ने 'इदन्नमम' और 'चाक' उपन्यासों में लिखा है–

---

1. इदन्नमम, पृ0 34
2. उपरिवत्, पृ0 34
3. बेतवा बहती रही, पृ0 48
4. कही ईसुरी फाग, पृ0 19

"सखि आज दोपहरी में रामचंद्र जी सीता जी के भवन विराज रहे।

मुख में पान, नैन में सुरमा, केसर तिलक लगाय रहे।

माथे मुकट, अंग पीताम्बर, हाथ में धनुष उठाय रहे।'[1]

X X X

'सीता ठाड़ी जनक दरबार, सुरिज जल दै रही ऽ ऽ ।[2]

मैत्रेयी पुष्पा ने बुन्देलखण्ड के समाज का मानो सचित्र वर्णन कर दिया है। हिन्दुओं के साथ–साथ उन्होंने यहाँ पर रहने वाली जनजातियों का भी वर्णन किया है, तथा उनकी पूजा–अर्चना को भी जैसा देखा वैसा ही लिखा है। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में 'कबूतरियों' द्वारा गाया गया धार्मिक गीत–

"आजो तो जाजो तो रे पनफुटो मत जातो रे

घोड़ो–घोड़ो घूमती, मोर आवती/फुलवादी केवड़ा

आवतीं, आवतीं हमीर दे, वीर दे .... ।[3]

राधा–कृष्ण के गीतों को भक्त बड़ी आस्था व भक्ति के साथ गाते हैं। 'गोमा हँसती है' में जब सेठ कृष्ण–लीला करने वालों को बुलाता है, उस समय के गीत–

"कान्हाँ बरसाने में आ जइयो, बुला रही राधा प्यारी।'[4]

X X X

'राधा लाड़ करें गिरधर सें,

रुपें न अपने घर पें।[5]

---

1. इदन्नमम, पृ0 164
2. चाक, पृ0 429
3. अल्मा कबूतरी, पृ0 26
4. गोमा हँसती है, कहानी– रास, पृ0 119
5. कही ईसुरी फाग, पृ0 85

मैत्रेयी जी ने भजन के साथ–साथ अपने साहित्य में राधा–कृष्ण की ठुमरियों का भी मनभावन चित्रण किया है–

"मोहे छेड़ो नहिं श्याम

गुजरिया मैं घर में अकेली।"[1]

मैत्रेयी ने अपने उपन्यासों व कहानियों में कार्तिक स्नान और मकर संक्रान्ति का विशेष महात्म्य वर्णन किया है। इस अवसर पर दान–पुण्य, शुभ व कल्याणकारी माना जाता है। 'इदन्नमम' उपन्यास में ग्रामीण स्त्रियाँ कार्तिक स्नान करते समय भावुक होकर गीत गाती हैं–

"कन्हैया माँगत दान दही कौ,

नहात में चीर हरें सब ही कौ,

गोपियाँ क्यों इतरानी रे।"[2]

बुन्देलखण्ड में 'सुआटा' बालक–बालिकाओं के आह्लाद पूर्ण उत्सव के रूप में मनाया जाता है। दीवाल पर संलग्न मिट्टी का सुआटा (कल्पित मूर्ति) बनाकर पुष्पों से सज्जित करके युवतियाँ भावनात्मक पारम्परिक गीत गाती हैं–

"तिन के फूल तिन्हीं के दाने,

चंदा उगे बड़े भुनसारे।"[3]

X X X

'उठो–उठो सूरजमल भइया, भोर भए,

उठो–उठो चन्दरमल भइया, भोर भए,

ना रे सुआटा, मालिनी खड़ी तेरे द्वार।[4]

---

1. कही ईसुरी फाग, पृ0 266
2. इदन्नमम, पृ0 118
3. उपरिवत्, पृ0 116
4. अगनपाखी, पृ0 24–25

हिन्दुओं में वैवाहिक संस्कार कई चरणों में सम्पन्न होते हैं। इन सभी संस्कारों के समय विभिन्न गीत गाये जाते हैं। मैत्रेयी ने विवाह विषयक गीतों को अपने कथा–साहित्य में बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णित किया है। 'इदन्नमम' व 'कस्तूरी कुण्डल बसै' उपन्यासों में बन्नी, आरते तथा विदाई गीतों का वर्णन निम्न प्रकार मिलता है–

"छोटी–छोटी बनरी के लम्बे–लम्बे केश,

सो खेलें बबुल दरबार भलें जू ।"[1]

X X X

'मैं तोय पूछूँ वारी बनरी, तेरे माथे मरुअट किन्ने दे दई ।[2]

बुन्देलखण्ड के इन गीतों में चरम रसमयता विद्यमान है। मैत्रेयी के विवाह के समय गाया गया आरते का गीत–

"बुँदबुँदियन बरसैगो मेह

झमकारेन भीजैगो मड़यौ,

तुम बैठो लढ़लढ़ी हो चौक

तिहारी बुआ करेगी आरतौ ।'[3]

विदा विवाह का सबसे करुणापूर्ण प्रसंग माना जाता है। विदाई गीतों को सुनकर सभी की आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में गाया गया विदाई गीत देखिये–

"कोरे कागद लाढ़ी

भई हैं पराई,

पंडित के वचनन

लाढ़ी मई हैं पराई ।'[4]

---

1. इदन्नमम, पृ0 108
2. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 224
3. उपरिवत्, पृ0 224
4. उपरिवत्, पृ0 213

विदाई के समय ग्रामीण स्त्रियाँ कन्या को सुखी जीवन का आशीर्वाद देते हुए करुणार्द्र गीत दोहराती हैं–

''चार कहार जब खेपी रे पालकी,
बिटिया ने रुदन मचाये मेरे लाल ।''[1]

X X X

'बिटिया भली जो अपने घर की, सुख–दुख पेट पचाय भलें जू।
अँसुअन–अँसुअन विदा करी थी, हँस–हँस लौट के आए भलें जू।[2]

ऋतु विषयक गीतों का वर्णन मैत्रेयी जी ने अपने साहित्य में बुन्देलखण्ड की संस्कृति के अनुरूप ही किया है। सावन में गाए जाने वाले चंदना के गीत, होली के समय की फागें बरबस ही मन को मोह लेती हैं। बैलगाड़ी में यात्रा करते समय महिलाओं का रसमय गीत श्रोताओं को विभोर कर देता है–

''गाड़ी वाले मसक दै बैल, इतै पुरवइया के बादर झुकि आए।''[3]

'कस्तूरी कुण्डल बसै' और 'चाक' उपन्यासों में मैत्रेयी ने चंदना के गीतों का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। ग्रामीण स्त्रियों द्वारा गाये गये चंदना के गीतों के उदाहरण निम्न प्रकार से हैं–

'अब के जो बिछुड़े पाखी पंछी कब मिले जी,
ए जी कोई हुए री कलेजा के टूक
जतन बता जा चंदना अपने मिलन कौ जी।[4]

X X X

'माइल जाने चंदना सासुरे जी
ए कोई ससुराल जाने प्यौसार
चंदना की चिता चिनी वनखण्ड में जी ऽ ऽ ऽ ।[5]

1. इदन्नमम, पृ0 108
2. अगनपाखी, पृ0 79
3. उपरिवत्, पृ0 12
4. कस्तूरी कुण्डल बसै, पृ0 35
5. चाक, पृ0 14

श्रावण मास में गाये जाने वाले झूलागीत के मधुर बोल अत्यन्त आकर्षक लगते हैं, जब ग्रामीण स्त्रियां झूला झूलते हुए मधुर स्वर व लय के साथ गाती हैं–

'हरी री रँगाय दै अम्मा मेरी डोरिया जी,

ए जी कोई हरी ही है, भइया जी की पाग,

झूला तो झूलूँ हरियल बाग में जी ऽ ऽ ऽ ।'[1]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मैत्रेयी के कथा–साहित्य में ग्रामीण अंचल में व्यवहृत लोकगीतों की सरस मंदाकिनी प्रवाहित हुई है। इन गीतों में प्रसंगानुकूल कहीं हर्षातिरेक है, तो कहीं करुण वेदना की आर्द्रता। परम्पराओं और रूढ़ियों के प्रति आश्चर्य है, तो कहीं मादकतापूरित क्षणों का आनन्द। मैत्रेयी के उपन्यासों में संस्कारों का भरपूर विवेचन है तथा संस्कारों के अन्तर्गत आयोजित लोकगीतों में लोकमंगल की भावना सन्निहित है।

---

1. चाक, पृ0 107

सप्तम् अध्याय

मैत्रेयी पुष्पा के कथा-साहित्य में भाषा और शिल्प

(क) भाषा :

'भाषा केवल शब्दों का जमघट नहीं और न मात्र शब्दों की गुम्फित कुंजिका है। वह सार्थक शब्दों की व्यवस्थित कड़ी है। उसका स्वरूप निरन्तर बदलता रहता है।[1] एक भाषाशास्त्री भाषा में व्याकरणिक नियमों का परिपालन करता है, तो उपन्यासकार मनुष्य की युगानुकूल परिस्थितियों के अनुसार भाषा के स्वरूप में संशोधन और विकास करता है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों और कहानियों में भाषागत बिम्बों और दृश्यों को सजीवता के साथ उकेरा गया है। लेखिका का भाषा सामर्थ्य इस बात से स्वतः सिद्ध है कि जिन स्त्रियों को उन्होंने अपने उपन्यासों एवं कहानियों का मूलाधार बनाया है, वे परिस्थितिगत गम्भीर करुणाभाव से पाठक के मन में गहरे उतर जाती हैं।

प्रायः ऐसा कहा जाता है कि कथा–साहित्य में आंचलिक शब्दावली का प्रयोग रसास्वादन में व्याघात उपस्थित करता है, किन्तु मैत्रेयी ने जिस अद्भुत क्षमता से ग्राम्य शब्दों के अन्तर में पैठकर प्रयोग किये हैं, उनके अभाव में वास्तविक परिवेश मूर्त ही नहीं हो सकता था। आंचलिक शब्दों के स्वाभाविक प्रयोग इनके उपन्यासों के कथानक को गति एवं सौन्दर्य प्रदान करने में समर्थ हैं तथा वर्णन और विश्लेषण करते समय भाषा और शैली दोनों की संवेदना जाग्रत करने में सक्षम हैं। आपके कथा–साहित्य में आंचलिक शब्दावली का प्रयोग कृति के कथा–रस के आस्वादन में कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं करता। कथा और शिल्प की सहज संश्लिष्टता ने इसकी सम्प्रेषण शक्ति को निश्चय ही बढ़ाया है।

मैत्रेयी के समस्त उपन्यासों एवं कहानी संग्रहों के सम्यक अध्ययन एवं मनन से यह सुनिश्चित होता है कि इनकी भाषा में आदि से लेकर अंत तक कहीं भी शैथिल्य नहीं है। बुन्देली की खनक ने इनकी भाषा को सजाया, संवारा है तथा बुन्देली कहावतों

---

1. जिन्दगी की आँच और रंग, सम्पादक – गुरुचरण सिंह, आलेख– कविता का रचनात्मक विश्लेषण, डॉ0 राहुल, मंजूषा प्रकाशन, उत्तम नगर, नई दिल्ली, 2002, पृ0185

और मुहावरों ने अर्थ गाम्भीर्य की सृष्टि की है। भाषा सुधी पाठक को विशिष्ट रागात्मकता से अभिभूत तो करती ही है, अन्तर्मन तक अपनी गहरी पैठ बना लेती है।

आपके कथा–साहित्य में चमत्कारिक भाषायी प्रयोगों के स्थान पर सहजता एवं स्वाभाविकता है, जो समकालीन उपन्यासकारों में बहुत कम देखने को मिलता है। यहाँ विविध स्तरीय भाषा वैविध्य का आयोजन है। लोक भाषा जैसी सरल तथा आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग इतने स्तरों पर हिन्दी में जो कतिपय लेखक कर पाते हैं, निश्चय ही मैत्रेयी जी उनमें से एक हैं।

समकालीन कथा–लेखन में सक्रिय मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यास 'इदन्नमम' में व्याप्त विरोधाभास की प्रतीति को सक्षमता, सूक्ष्मता और पारदर्शी भाषा जाल से बुना है, जो अत्यन्त पठनीय और अपने स्वर में मौलिक भी है। बुन्देली तथा ब्रज की सरसता उपन्यास को चारु बना देती है। साहित्य क्षेत्र में 'इदन्नमम' की लोकप्रियता उसकी जीवंत भाषा, परिष्कृत संवादों के कारण ही है। मैत्रेयी की संवेदनशील ग्राम्य भाषा से प्रभावित हुई है। विष्णु प्रभाकर का मत है कि मैत्रेयी ने एक अंचल विशेष की उसी की भाषा में कथा उकेरी है, वह अत्यन्त सजीव, सही हो उठी है और मन को व्यथित कर देती है।[1]

मैत्रेयी के आत्म कथानक उपन्यास 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में भाषा का साझा स्वरूप व्यवहृत है, जिसमें हिन्दी के साथ ग्राम्यांचल शब्दावली का अद्‌भुत सम्मिश्रण उपलब्ध होता है। हिन्दी का यह नवीन लोकतांत्रिक भाषा स्वरूप कथा साहित्य में अपना अस्तित्व सुदृढ़ कर चुका है। इस सम्बन्ध में कांति कुमार जैन लिखते हैं कि– हिन्दी के स्वतंत्रता परवर्ती उपन्यासकार जिस जनपद से आये, अपने उपन्यासों मे वहाँ की अभिव्यक्ति शैली भी साथ लाये। वे उस मिट्‌टी को नहीं भूल पाये, जहाँ उनका बचपन बीता। हिन्दी की बोलियों में जीवनानुभवों का जो रस है, उनमें कहने–सुनने का जो अद्वितीय सामर्थ्य है, वह परिनिष्ठित कही जाने वाली हिन्दी में नहीं है।[2] इस प्रकार की

---

1. इदन्नमम, फ्लेप पर अंकित – विष्णु प्रभाकर की टिप्पणी
2. साक्षात्कार, अगस्त 2003, कान्ति कुमार जैन, पृ0 48

सहज, सरल और संवेदनशील भाषा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' उपन्यास में सरलता से उपलब्ध है।

आपकी भाषा भावानुकूल रूप ग्रहण करने में सक्षम है। यदि भाव कोमल और मधुर है, तो भाषा भी तद्नुकूल होती है और भावों के परुष या कठोर होने पर भाषा भी उग्र तथा कठोर हो जाती है। 'इदन्नमम' में प्रेम की कोमल भावाभिव्यंजना का एक उदाहरण देखिये– 'दाऊ जू, तुमने तो पूरे सुख–सागर का सत्त निचोर कर घट भर दिया। मरम छू लिया दाऊ जू। यह ककरा भरी छत नरम गदेला हो गई। पोर–पोर से नेह निचुरता है। कुसुमा भाभी नाजुक बेल सी लिपटी है।'[1]

ठीक इसी प्रकार कठोर भावों की व्यंजना में भाषा भी उग्र रूप ग्रहण कर लेती है। 'अल्मा कबूतरी' का एक उदाहरण मैत्रेयी के भाषाधिकार का एक उत्कृष्ट नमूना है– 'मंसा और केहर। सुन लो, कि तुम आदमी के कटे धड़ के अलावा कुछ नहीं। तुम्हारे पास आँखें नहीं, कान नहीं, बुद्धि नहीं, क्योंकि सिर नहीं। तुम्हें हाथ–पांवों पर घमण्ड है, जोड़ी हुई भीड़ के हाथ पांवों की ताकत का घमण्ड।'[2]

इसी तरह मैत्रेयी के अन्य उपन्यासों जैसे विजन, झूलानट तथा चाक में बुन्देली मिश्रित हिन्दी का प्रयोग अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है। ग्राम्य जीवन के यथार्थ को भोगते हुए उनके पात्र ग्राम्यांचल की बोली का प्रयोग करके शैली को प्रभाव पूर्ण बनाते हैं तथा पाठक पर स्थायी प्रभाव छोड़ते हैं। मैत्रेयी के कहानी संकलनों चिह्नार, गोमा हँसती है तथा ललमनियाँ में भी भावानुकूल भाषा प्रयुक्त है। बुन्देली शब्दों की सरसता पाठक से लेखिका को आत्मीयता के साथ जोड़ती है तथा ग्रामीण जनजीवन की समस्याओं एवं सरोकारों से रू–ब–रू कराती है।

मैत्रेयी के कथा–साहित्य में व्यवहृत कतिपय रूपक भावाभिव्यंजना में सहायक होकर भावों की समानता प्रकट करते हैं। जैसे– मौत का तूफान, फूलों की दुनिया, मन

---

1. इदन्नमम, पृ0 76
2. अल्मा कबूतरी, पृ0 232

के रेशे, जिन्दगी की चादर, देह का खजाना, विद्या का दामन आदि। राजेन्द्र यादव के अनुसार 'मुहावरेदार, जीवन्त और खुरदरी लगने वाली भाषा की 'गवई ऊर्जा' मैत्रेयी का ऐसा हथियार है जो उन्हें अपने समकालीनों में सबसे अलग और विशिष्ट बनाता है।'[1]

मैत्रेयी पुष्पा की कथा–साहित्य में व्यवहृत भाषा की कतिपय विशिष्टतायें निम्न प्रकार हैं–

1. प्रतीकात्मकता

मन की सूक्ष्म संवेदनायें और भावनायें, जो सामान्य वार्तालाप में अभिव्यक्त नहीं हो पातीं, कुछ प्रतीकों के माध्यम से सजीव हो उठती हैं। मैत्रेयी के कथा–साहित्य में व्यवहृत प्रतीक अन्तर्भावनाओं के प्रकाशन के सबल माध्यम हैं। लेखिका ने सादृश्य योजना के आधार पर प्रतीकों का चयन करके कथनों को सम्प्रेषणीय बनाया है। वस्तुतः प्रतीकों में साम्यभाव अन्तर्निहित होता है, इस कारण पाठक निहितार्थ को सरलता से ग्रहण कर लेता है। इस तथ्य की पुष्टि कतिपय संदर्भों द्वारा की जा सकती है। इदन्नमम की कुसुमा मंदाकिनी से कहती है– 'आँखें लाल गुड़हल हो गई। ज्यों रकत भरा हो कोयों में'[2] यहाँ आँखों का लाल गुड़हल होना तथा कोयों में रक्त भरना अतिशय एवं गम्भीर वेदना का प्रतीक है और ये प्रतीक अन्तःकरण की खिन्नता तथा अपराध बोध की आशंका को जीवन्त करते हैं। 'काश संतोले की बहू पढ़ी–लिखी भी होती तो पी0ए0 जैसे खटमलों को चुटकी में मसोस देती'[3] यहाँ खटमल दगाबाज का प्रतीक है, यह प्रतीक पी0ए0 के विश्वासघात को व्यंजित करता है। 'विधानसभा का भवन सूलीघर मालूम देता, जहाँ आदमी के सहूलियतों का गला घोंटा जाता है।'[4] उक्त उदाहरण में 'सूलीघर' विधानसभा में होने वाले दमनचक्र का प्रतीक है, जहाँ सुविधाओं के स्थान पर असुविधायें आवंटित होती हैं।

---

1. झूलानट की भूमिका, राजेन्द्र यादव
2. इदन्नमम, पृ0 94
3. अल्मा कबूतरी, पृ0 354
4. उपरिवत्, पृ0 355

प्रतीकात्मकता के कुछ अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं–

'इसी वित्तेभर खेती में इतना कमा लेता है कि सारा टब्बर खा–पीकर साल भर मजे से गुजारा करता रहता है।'[1]

'बेटे तो बुढ़ापे की लाठी हैं हमारी।'[2]

'और ऐसा ही तू कुत्ता की जात, जीभ लपलपाकर पिछियाने लगा।'[3]

'नाइन मस्खरी में प्रताप से रात की बातें पूछतीं, लड़का खील–मखाने हो जाता।'[4]

'ईसुरी भी समझ गये कि प्रताप की बहू रूप का नगीना है।'[5]

'ब्रह्म की राह में काँटेदार झाड़।'[6]

उपरोक्त उदाहरणों में वित्तेभर अल्प मात्रा का, टब्बर परिवार का, लाठी सहारा का, कुत्ता कामुक व्यक्ति का, खील मखाने प्रसन्नता का तथा नगीना, अतिशय सौन्दर्य का प्रतीक है। ये प्रतीक लेखक के मन्तव्य को व्यक्त करने में पूर्ण सफल हैं।

2. चित्रात्मकता

जिस प्रकार चित्रकला में चित्रकार अपनी तूलिका एवं रंगों को व्यवस्थित ढंग से प्रयुक्त कर चित्र का निर्माण करता है, उसी प्रकार लेखक या कवि अपने सृजन में शब्दों को आकर्षक ढंग से इस प्रकार जड़ता है कि एक चित्र सा उपस्थित हो जाता है। मैत्रेयी के कथा–साहित्य में निर्मित कुछ शब्द चित्र देखिये– 'टीकम सिंह की वेशभूषा देखकर अचरज करते थे लोग कि यह आदमी घुटनों तक की मटमैली धोती, बिना बटन का कुर्ता, कंधे पर मैला सा पंचा, निहायत भोलाभाला किसान, सरकार से लड़ने चला है।[7]

---

1. ललमनियां, सेंध कहानी, पृ0 41
2. चिह्मार, बेटी कहानी, पृ0 21
3. झूलानट, पृ0 124
4. कही ईसुरी फाग, पृ0 68
5. उपरिवत् पृ069
6. झूलानट, पृ0 157
7. इदन्नमम, पृ0190

"गेहूँ के पौधे हरे थे और घने भी, एक–दूसरे से भिड़े हुए। कदम की छातियों से ओढ़नी की तरह लिपट गये। वह जहाँ खड़ी थी, पौधे भी खड़े थे। लेट गई तो संग बिछ गये। ठंडे और नरम .... कदमबाई सुख–सेज पर पौढ़ी थी। चन्द्रमा माथे पर था। सारा रंग सुनहरा हो चला। सरग से उझकती तरइयाँ, कदमबाई लजा गई। झींगुर शोर मचाने पर तुले थे।"[1]

"बालकिशन के आगे सुमेर भइया का भूत खड़ा रहता है, जो डराता रहता है हर मुहाने पर। उनका तगड़ा शरीर, ऊँचा कद, रोबीला चेहरा। बालकिशन उनका पासंग भी नहीं। कमजोर सा, नाटा, लड़कानुमा आदमी। मूँछें बिर्री सी। बकरे जैसी दाढ़ी इक्का–दुक्का बाल हाँ रग जरूर गोरा है।"[2]

बसंती साड़ी पहने हुए कमनीय स्त्री चेहरा खोले सामने खड़ी थी। गोरे मुँह पर गुलाबी होंठो की कलियाँ आपस में सटी हुईं और उजले माथे पर लाल गोल बिन्दी, इतना ही देख सका प्रताप। आँखे मींचकर उसका हाथ पकड़ा और रज्जो को पास खींच लिया।[3]

"वेदू कोने में बैठा रोटी खाने में लगा था। उसके गालों पर आँसुओं के लम्बे–लम्बे पनियाये चिन्ह बतासो ने अपनी धोती के छोर से पोंछ डाले। उस पल उन्हें वेदू की निरीह, खिलती पुतलियां देखकर लगा जैसे उनकी अपनी आँखों से चाँदनी झर रही हो।"[4]

उपर्युक्त उदाहरणों में आयोजित शब्द चित्रों से पाठक का मस्तिष्क एक बिम्ब ग्रहण करता है। उसकी दृष्टि में आद्योपान्त एक दृश्य उपस्थित हो जाता है। प्रथम उदाहरण में टीकम सिंह की वेशभूषा से भोले–भाले किसान का चित्र निर्मित होता है। दूसरे उदाहरण में अभिसारोत्सुक कदमबाई का प्राकृतिक सौन्दर्य सापेक्ष

---

1. अल्मा कबूतरी, पृ0 22
2. झूलानट, पृ0 89
3. कही ईसुरी फाग, पृ0 105–106
4. ललमनियां, कहानी छाँह, पृ0 112

चित्र प्रस्तुत है। तीसरे उदाहरण में सुमेर और बालकिशन का शारीरिक गठन चित्रित है। चौथा उदाहरण पूर्ण यौवना रज्जो के सौन्दर्याकर्षण में आबद्ध प्रताप और उसकी प्रेमिका का मिलन चित्र प्रस्तुत किया गया है। अन्तिम पांचवें उदाहरण में वेदू का दैन्य दर्शन तथा बतासो की हार्दिक सहानुभूति का दृश्य उपस्थित किया गया है।

3. अन्तर्द्वन्द्व निरूपण

"अन्तर्द्वन्द्व की भाषा प्रश्नात्मक होती है। अनिर्णय, अनिश्चय व्यक्ति को तनाव की मनोदशा में ले जाता है। उसे चिन्तन की पीड़ादायी स्थिति से गुजरना पड़ता है। सोच तथा चिन्तन व्यक्ति को उलझन में डाल देता है। उसके मन में अनेक प्रश्न उठते हैं और उनका उत्तर न मिल पाने की दशा में वह अन्तर्द्वन्द्व की पीड़ा से गुजरता है।"[1] इदन्नमम में मंदाकिनी डॉ0 इन्द्रनील के स्थानान्तरण से चिंतित है। क्षेत्रीय जनता इस विश्वास में है कि मंदाकिनी स्थानान्तरण निरस्त करा सकती है। मंदाकिनी का कोई वश नहीं चलता और इस उलझन में वह अन्तर्द्वन्द्व की पीड़ा का अनुभव करती है।

"गोंती के पंचायती चबूतरे पर ग्रामीणों ने घेर लिया उसे। क्या उत्तर दे उनकी बातों का, सटीक सवालों का, अभी तक हुए सुख आनन्द का ...... अंधेरे घिर आये भरी दोपहरी में। दीखती नहीं कोई आशा की किरण। मौन बनी बैठी रही मंदाकिनी। अपनी ओर से कौन सा आश्वासन?[2] उक्त उद्धरण में मंदाकिनी की मनः स्थिति का चित्रण है। एक अन्तर्द्वन्द्व अनेक प्रश्नों के रूप में उसके मन को मथ रहा है। मैत्रेयी ने उसकी अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति को अपनी भाषा के माध्यम से सजीवता से उभारने का सफल प्रयास किया है।

'कही ईसुरी फाग' में 'ईसुरी' का मनोद्वन्द्व दृष्टव्य है– "किसी ने दिल दुखाया है? मर्द ने या जनीं ने?" ईसुरी ने अनुमान लगाया, जरूर मुसाहिब जू की रात खराब हुई है। दरबारी आदमी ठहरे, क्या पता राग अनुराग को ठेस लगी हो। क्या

---

1. साहित्य और मनोभाषा शास्त्र, डॉ0 श्याम सनेही लाल शर्मा, ब्रजांचल शोध संस्थान, फिरोजाबाद, 2002, पृ0 136
2. इदन्नमम, पृ0 352

सोचें, क्या कहें और किस तरह की फाग सुनायें? अजब दुविधा है।[1] यहाँ ईसुरी की मानसिक स्थिति का चित्रण है। वे मुसाहिब की स्थिति का आकलन करने में असमर्थ हैं। उनका मन प्रश्नाकुल है तथा अनिर्णय की स्थिति बनी हुई है। लेखिका ने अन्तर्द्वन्द्व का सफल चित्रण किया है।

'यह वही आदमी है, जो जंगलिया के मरण के दिन थाने पर मिला था और आँखों ही आँखों में धमका रहा था। .... अब यह राणा को लेने चला आया कि मेरी बेटी के संग इसकी जिन्दगी बाँध दो। कब से पीछा कर रहा है यह आदमी? क्यों कर रहा है? आखिर यह हमारा है कौन? यह मेरे बेटे को जीने तों देगा?'[2]

उक्त उदाहरण में कदमबाई रामसिंह के कारनामों के कारण चिन्तित है। उसके मन में अनेक प्रश्न उठकर उसे चिन्तातुर करते हैं तथा तनाव का भारी बोझ उसके अन्तःकरण को आवृत्त कर लेता है। वह अपने बेटे राणा की जिन्दगी को लेकर दुविधा में है। यहाँ कदमबाई के मन का अन्तर्द्वन्द्व मैत्रेयी ने बड़ी गहराई से व्यंजित किया है।

निष्कर्ष यह है कि मानसिक वेदना एवं संत्रास को जीवन्त अभिव्यक्ति देने के लिए उपन्यास लेखिका मैत्रेयी ने अनेक नवीन प्रयोग किये हैं। पात्र को प्रश्नानुकूल बनाकर अनिर्णीत स्थिति में ला देना उनकी सशक्त भाषा का ही परिणाम है। अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण में उनकी भाषा पूर्णरूपेण समर्थ एवं सफल है।

4. संवेगों का चित्रण

भाषा का संवेग से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब अन्तर्जगत की दबी–घुटी संवेदनाएँ कुछ शब्दों में व्यक्त होकर भी मनुष्य को अभिव्यक्ति का संतोष नहीं दे पातीं, तो रचनाकार का अवचेतन सादृश्य धर्म के आधार पर किसी बाह्य उपकरण से तादात्म्य स्थापित कर उसे सजीवता से उभारने का यत्न करता है।[3] मैत्रेयी ने अपने

---

1. कही ईसुरी फाग, पृ0 161
2. अल्मा कबूतरी, पृ0 109
3. साहित्य और मनोभाषा शास्त्र, पृ0 107

कथा साहित्य में ऐसी अनेक स्थितियाँ निर्मित की हैं, जहाँ पात्र अपनी अन्तर्व्यथा को शब्दों के माध्यम से पूर्णतः व्यक्त नहीं कर पाते। वहाँ लेखिका अपने भाषा सौष्ठव से आंगिक चेष्टाओं द्वारा अन्तः संवेगों को वाणी देने का उपक्रम करती दिखाई देती है। 'इदन्नमम' का एक उद्धरण देखें– "बऊ की घायल कोरें भीगी हुई थीं। पुतलियों के आस–पास रक्त सा जुड़ आया। जलती हुई निगाह लपटें छूने लगी। नाक ऐसे तन गई, ज्यों चुनौती धरने की बेजा हिम्मत की हो किसी ने। होंठ इस तरह विद्रूप हो गये जैसे कच्चा करेला चबा लिया हो बऊ ने। झुर्रियों की गहराई ऐसी कि खाल को गहरे तक पैने औजार से खरोंच डाला हो अजस ने। पीड़ा बह रही हो बऊ के रोम–रोम में।'[1]

यहाँ मंदाकिनी के प्रस्ताव से खिन्न तथा सामाजिक अपयश से अवसन्नमना बऊ की अन्तर्वेदना वाणी द्वारा अव्यक्त होने के कारण चेष्टाओं द्वारा व्यक्त है। आँख की पुतलियाँ, निगाह, नाक, होंठ तथा झुर्रियों की गहराई से बऊ के व्याकुल हृदय के अन्तर्भाव स्पष्ट रेखांकित हुए हैं।

मैत्रेयी के उपन्यासों एवं कहानियों की भाषा संवेगों के चित्रण में पूर्ण सफल है। अन्तःकरण के संवेग, जिन्हें सामान्य भाषा में व्यक्त करना असम्भव होता है, उन्हें प्रतीकों का सहारा लेकर व्यक्त किया जाता है। 'अल्मा कबूतरी' में कदमबाई के आन्तरिक संवेगों का चित्रण दृष्टव्य है।

'कहाँ मंसाराम और कहाँ खील–मखानों भरा चौक? कहाँ खुशियों की बाढ़, कहाँ प्यार? न किसी ने छुआ न गले लगाया। इतने करीब आने के सपने ने फासला और चौड़ा कर दिया।[2] उक्त पंक्तियों में मंसाराम की प्रिया कदमबाई के आन्तरिक संवेगों की अभिव्यक्ति है। वह मंसाराम के प्रेम सम्बन्धों में दूरी की संभावना से बैचेन और व्याकुल है।

इस प्रकार लेखिका के सभी उपन्यासों और कहानियों में संवेग चित्रण के

---

1. इदन्नमम, पृ0 266
2. अल्मा कबूतरी, पृ0 80

विभिन्न उदाहरण उपलब्ध हैं। इनकी भाषा में संवेग चित्रण के लिए संक्षिप्तता, सांकेतिकता, प्रतीक विधान तथा सादृश्य योजना का सहारा लिया गया है।

5. अपशब्दों का प्रयोग

मैत्रेयी के कथा–साहित्य में अपशब्दों के प्रयोग से अन्तःकरण के आवेग, घृणा, कटुता तथा आक्रोश को तीव्रता से अभिव्यक्त करने के विविध उदाहरण उपलब्ध हैं। ये अपशब्द कहीं अपमानजनक तथा घृणा सूचक होते हैं तथा कहीं खीज और झुंझलाहट को भी व्यक्त करते हैं। कतिपय उदाहरणों से इस तथ्य की पुष्टि की जा सकती है–

– तनक देर पहलें और आ जाते हम, तो खसिया बना देते नास मिटे कों।[1]

– साला अहीर की जात होकर पुखरिया में मुँह मार रहा है।[2]

– कुतिया कहीं की।[3]

– साले मादरचोद मंसाराम और केहर, सुन लो कि तुम आदमी के कटे धड़ के अलावा कुछ नहीं।[4]

– साले पी0ए0 की ऐसी–तैसी कर दें।[5]

– तू बूढ़ी न समझ पाई मुझे और न यह साली बुलडोजर की औलाद।[6]

– सिपाही नासपीटा जिद्द बाँध गया।[7]

– उस नठुआ से कल्ल कर लेंगे अपना हिसाब–किताब।[8]

---

1. इदन्नमम, पृ0 94
2. उपरिवत्, पृ0 230
3. उपरिवत्, पृ0 230
4. अल्मा कबूतरी, पृ0 232
5. उपरिवत्, पृ0 353
6. झूलानट, पृ0 150
7. अल्मा कबूतरी, पृ0 354
8. इदन्नमम, पृ0 94

– हम दें ससुर में दो लप्पड़।[1]

– कलाकार कह, सिर्री, कलाकार।[2]

– क्या कहती मिट्टी के माधो से।[3]

उपरोक्त उदाहरणों में नासमिटे, साला, कुतिया, साले मादरचोद, साले, साली, बुलडोजर की औलाद, नासपीटा, नठुआ, मिट्टी के माधो, ससुर और सिर्री अपशब्दों के प्रयोग क्रोध, कटुता, आक्रोश तथा अपमान की स्थिति में हुए हैं। जब किसी के कार्य, आचरण और व्यवहार से वक्ता को आघात लगता है, तो वह अपने क्रोध व घृणा को अपशब्दों के प्रयोग द्वारा व्यक्त करता है। चूँकि, मैत्रेयी के कथा–साहित्य का विषय–क्षेत्र ग्राम्यांचल है और वहाँ की संस्कृति में दुर्वचनों या अपशब्दों का प्रयोग घुला मिला है, इसलिए इनके उपन्यासों एवं कहानियों में अपशब्दों के विपुल प्रयोग उपलब्ध होते हैं।

6. अन्य भाषायी प्रयोग

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों एवं कहानियों की भाषा भावानुगामिनी तो है ही, साथ ही बुन्देली खनक वाली शब्दावली के कारण उसमें एक लोच और सहजता आ गई है। उनकी भाषा में प्रतीक योजना तथा चित्रमयता का आकर्षक आयोजन है, तो संवेगों तथा अन्तर्द्वन्द्व का मनोहारी चित्रण भी है। कहीं–कहीं क्षेत्रीयता के प्रभाव स्वरूप अपशब्दों के प्रयोग भी किये गये हैं, किन्तु वे सहज और स्वाभाविक रूप से भाषा को गति प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त लेखिका के कथा साहित्य में कतिपय अन्य भाषायी प्रयोग भी हैं, जो वक्ता के अन्तःकरण में घुमड़ने वाली भावनाओं को जीवन्त बनाते हैं। उन भाषायी प्रयोगों में कुछ प्रयोग निम्नांकित हैं–

असम्बद्ध वाक्य प्रयोग या पद–क्रम परिवर्तन :

अतिशय भावुकता या भावावेग के कारण वक्ता की भाषा अस्त–व्यस्त हो

1. कही ईसुरी फाग, पृ0 135
2. उपरिवत्, पृ0 144
3. ललमनियाँ, सेंध कहानी, पृ0 104

जाती है। उस स्थिति में वह व्याकरणिक नियमों का परिपालन नहीं कर पाता। कभी–कभी अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में भी भाषा का स्वरूप अव्यवस्थित हो जाता है और वाक्यों के पद–क्रम में व्यवधान की स्थिति आ जाती है। कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं–

– हम तो छाती से लगाकर रखते है अपनी बाखर को। अरे, इसी के मोह से मुकत नहीं हो पाये। कितनी रातों जगे हैं इस आँगन के बिछोह में। लगता था, पलकों में पराये आसमान की तरइयाँ करकती हैं, पिराती हैं आँखें।[1]

– काहे आपको क्या मालुम नहीं है उनके बारे में। बऊ ने स्वीकृति में सिर हिलाया, जैसे सब कुछ जानती हों, आदि से अन्त तक। ये कह रहे थे कि कल उनके चेला आने वाले हैं – भिरगुदेव। तुम कहो तो उनके हाथ दे देंगे सन्देश।[2]

– मलिया काका की उनहार का आदमी मोघिया गुरू। बूढ़ा दुबला दाढ़ी वाला। पीला बाना पहनता है – धोती कुर्ता। गले में बड़े–बड़े मनकों की माला। जड़ी–बूटियों का जानकार मोघिया गुरू रात के समय अक्सर यहीं रहता है।[3]

– उसे हँसी सी आई – शहर का पक्का मकान अंधेरे से लबालब। यहीं रहना होगा। आँखे धुँधलके की अभ्यस्त हुईं तो नायलोन के बान की खटिया पर मरी बकरी सा पड़ा बिस्तर।[4]

– शीलो चिंघाड़ी अब की बार। खूब चिंघाड़। हमारी सुनने वाला कोई नहीं तो तुझे बचाने वाला भी कौन है? क्योंकि बहला–फुसलाकर तू खत्म कर रही है हमें। नहीं छोड़ेगा वह। जोंक की तरह चिपक गया, जो भीतर ही भीतर खून पी जाए।[5]

– तुम तो अपना कुछ भी नहीं छोड़ पाईं, गंगिया का स्वर कान के पर्दों से बार–बार टकराता है और फगवारे की आवाज में बदल जाता है। दुविधा, उलफत और कशमकश।[6]

---

1. इदन्नमम, पृ0 157
2. उपरिवत्, पृ0 179
3. अल्मा कबूतरी, पृ0 133
4. उपरिवत्, पृ0 270
5. झूलानट, पृ0 132
6. कही ईसुरी फाग, पृ0 235

– इतने लोग चुप्पी बेहिसाब। घर में उसके साथ अकेली सास थी दिन भर बक–झक होती थी, जैसे घर भरा हो। आदमी लोग चुप्पी में रहकर रहस्य पैदा करते रहते हैं क्या?[1]

उपर्युक्त सभी संदर्भों में वाक्यों की असम्बद्धता तथा पद–क्रम परिवर्तन देखा जा सकता है। लेखिका ने भावावेश या मस्तिष्क में विचारों की उथल–पुथल को अव्यवस्थित वाक्यों द्वारा अभिव्यक्त किया है। कहीं–कहीं परिस्थिति–जन्य अशांति, अपने निवास से अतिशय मोह, पारिवारिक कलह तथा जीने की समस्या ने भावावेश की स्थिति उत्पन्न की है और उसे पद–क्रम परिवर्तन द्वारा लेखिका ने व्यक्त करने का प्रयास किया है।

शब्दावृत्ति –

– जिज्जी, लठैत–लठैत कर कुछ बोल रहा था।[2]

– हँसते–हँसते बोली।[3]

– खत्म होते सम्बन्धों को छटपटा–छटपटा कर ही सही।[4]

– बालकिशन का रोम–रोम झन्ना उठा।[5]

– धीरज की खाली–खाली आँखों के पीछे दर्द है।[6]

– चोली दो–दो बार निचोड़ी और हिलक–हिलक कर सेज पर पड़ी रही।[7]

– पेड़ों का खोखा छोटे–छोटे हाथों में थमा दिया।[8]

– जुग–जुग जियो लला पाहुने। बनी रहे दूल्हा–दुल्लइया की जोड़ी।[9]

---

1. कही ईसुरी फाग, पृ0 241
2. इदन्नमम, पृ0 201
3. उपरिवत्, पृ0 194
4. झूलानट, पृ0 63
5. उपरिवत्, पृ0 72
6. अल्मा कबूतरी, पृ0 325
7. कही ईसुरी फाग, पृ0 155
8. ललमनियाँ, पृ0 139
9. बेतवा बहती रही, पृ0 50

– घुटुर–घुटुर की आवाज करते हुए नाक से धुंआ फेंक रहे थे।[1]

उपरोक्त उदाहरणों में लठैत–लठैत, हँसते–हँसते, छटपटा–छटपटा, रोम–रोम, खाली–खाली, दो–दो, हिलक–हिलक, छोटे–छोटे, जुग–जुग, घुटुर–घुटुर आदि शब्दावृत्तियाँ प्रयुक्त होकर अर्थाभिव्यक्ति को गम्भीर एवं त्वरित सम्प्रेषणीय बनाती हैं। लेखिका ने भावाभिव्यक्ति पर बल देने तथा चिन्तातुर स्थिति को व्यक्त करने के उद्देश्य से शब्दावृत्तियों के सफल प्रयोग किये हैं।

प्लुत स्वर का उच्चारण –

मैत्रेयी ने अपने कथा–साहित्य में प्लुत स्वरों का उच्चारण निम्न प्रकार से किया है–

– ऐ ऽ ऽ, चेत में आओ, ऊँ ऽ ऽ वह ठुनका।[2]

– तकलीफ में सनी आवाज .... ओ ऽ ऽ ओ ऽ ऽ दइऽऽया।[3]

– लेकिन उसके कंठ से बराबर यही नाम फूटा अल्मा ऽ ऽ ऽ .... अल्मा ऽ ऽ ऽ।[4]

– ओ ऽ ऽ, अपने कुकरम अपने संग ही बाँधे रह।[5]

– ओ ..... मीरा ऽ ऽ मोंड़ी, उठी नहीं अबै तक। अई उठिजा बिटिया ऽ ऽ आ ..।[6]

– अरी विरमा बीबी ऽ ऽ ई ऽ ऽ ।[7]

लेखिका के कथा–साहित्य में उपलब्ध प्लुत स्वरों के उक्त प्रयोग पात्रों की उत्तेजित और आवेशित अवस्था में किये गये हैं। इन प्रयोगों से मैत्रेयी की भाषा समृद्ध हुई। इन प्रयोगों से लेखिका ने पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व, मानसिक संघर्ष तथा आन्तरिक उथल–पुथल को सहजता से समायोजित कर सम्प्रेषणीय बनाया है।

---

1. गोमा हँसती है, कहानी – शतरंज के खिलाड़ी, पृ0 22
2. झूलानट, पृ0 118
3. उपरिवत्, पृ0 64
4. अल्मा कबूतरी, पृ0 261
5. इदन्नमम, पृ0 146
6. बेतवा बहती रही, पृ0 12
7. चिह्नार, कहानी भँवर, पृ0 99

शब्द – युग्म

मीन–मेख, हौंस–फूल, सखी–सहेली, बड़ी–बूढ़ी, इज्जित–आबरू, कपड़े–लत्ते, हक्की–बक्की, आस–उम्मीद, अपमान–अवज्ञा, चेंचें–केंकें, भालू–बंदर, जड़ी–बूटियाँ, पूछती–टोकती, बोलता–बतियाता, डर–भय, रंग–रेशों, कुटते–मरते, जमीन–आसमान, कूड़ा–करकट, राजी–खुशी, कहना–सुनना, मर–पिट, टूटे–बिखरे, हक्का–बक्का, आस–पास, हाल–चाल, गुप–चुप, तन–बदन, हाड़–मांस, प्यार–प्रीत, खरीद–फरोख्त, अता–पता, गुड़–गोबर, आना–जाना, भक्ति–पूजा, पंडित–पुजारी, फूल–पान, कच्ची–पक्की, ऊँचा–नीचा, भूले–बिसरे, देव–पितर, बेटा–बहू, अगले–पिछले, दवा–पट्टी, खून–खच्चर, रौब–रुतबा, पढ़ा–लिखा, जूठे–मीठे।

मैत्रेयी के कथा–साहित्य में ऐसे शब्द–युग्म अर्थाभिव्यक्ति एवं सम्प्रेषणीयता में सहायक हैं। इनकी भाषा शब्द–युग्मों एवं पुनरुक्त शब्दों के प्रयोग के माध्यम से पाठक से सीधा संवाद बनाने में सफल है।

(ख) शिल्प :

भाषा को प्रभावी बनाने के लिए आधुनिक साहित्य की नवीन विधाओं में शैली तत्व का महत्व सर्वाधिक है। 'यह तत्व भाषा के आधार पर विश्लेष्य है। कृति की साहित्यिकता इस तत्व के आधार पर परिभाषित की जा सकती है। इसका अन्वेषण और निरूपण भाषा विज्ञान की पद्धति को अपनाकर चलता है।[1] उपन्यास में यह तत्व और अधिक वैशिष्ट्य इस कारण रखता है क्योंकि उपन्यास को रोचक और आकर्षक बनाने में इसी तत्व की अहम् भूमिका रहती है।

मैत्रेयी पुष्पा के कथा–साहित्य की भाषा जितनी लोचदार, प्रवाह युक्त, सहज और सरल है, शैली भी उतनी सजीव एवं आकर्षक है। प्रवाह, ओज और सजीवता इनकी शैली के मुख्य आकर्षण हैं। आपकी वाक्य योजना प्रवाह–युक्त है। वाक्य स्वाभाविक रूप से परस्पर सम्बद्ध हैं। आपके उपन्यासों में आयोजित ओजपूर्ण

1. भूमिका : शैली तत्व : सिद्धान्त और व्यवहार, डॉ0 चन्द्रभान रावत, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 1988, पृ0 175

प्रसंगों में चुस्ती, संक्षिप्तता तथा भावानुकूल चयनित शब्दावली का प्रयोग उपलब्ध है तथा वक्तृत्व का अवांछित आवेश अनुपलब्ध है। कथा प्रसंग सांगोपांग होकर भी ऊबाने वाले नहीं हैं। मैत्रेयी के कथा–प्रसंगों की चित्रात्मक विशेषताएं तथा बारीकियाँ पाठक की कल्पना में सजीव एवं साकार हो उठती हैं।

आपके उपन्यासों एवं कहानियों की भाषा अपनी शैली के माध्यम से बौद्धिक आस्वाद का आनन्द प्रदान करती है, जो विषयवस्तु के सौन्दर्य से पृथक होता है। जब इनके समग्र रचना संसार को एक–साथ लेकर चलते हैं तो इनकी शैली की प्रभावोत्पादकता इन्हें अन्य समकालीन उपन्यासकारों में वरेण्य सिद्ध करती है। आपका अलंकार विधान आपके जीवनानुभव और जगत को देखने की नवीन दृष्टि का ही परिणाम है। उपमा और उत्प्रेक्षाओं का व्यवस्थित प्रयोग ग्राम्यांचल से सम्बद्ध होने के कारण और भी आकर्षक हो गया है। इनके कथा–साहित्य में उपमाओं के अनगिनत प्रयोग उपलब्ध हैं। 'झूलानट' का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

''वह छम–छम करती आंगन में उतर रही थी। बालू के कानों में गाय के गले में बँधी घंटरियां झुन–झुनाई, वैसी ही लय, उसी तरह की ताल।''[1]

ग्राम्य जीवन से ग्रहीत उपरोक्त उपमा सर्वथा नवीन एवं प्रभावपूर्ण है। उपमा का एक और आकर्षक उदाहरण ''तू खूँखार कुत्ते से ऐसे लड़ लिया रे जैसे कोई देवता शेर से लड़े।''[2]

मैत्रेयी की उपमायें सर्वथा नवीन एवं मौलिक हैं। लेखिका ने इन्हें बुन्देलखण्ड के आंचलिक परिवेश से चुनकर हृदयस्पर्शी अभिव्यंजना को उत्कर्ष प्रदान किया है।

मैत्रेयी के कथा–साहित्य में जीवन के सहज एवं नैसर्गिक पक्ष को इतनी जीवन्तता एवं प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है कि पूरे मानव जीवन की चेष्टायें, देश की ज्वलन्त समस्यायें तथा वास्तविक स्थितियाँ, मानवीय दुःख दर्द और हर्ष–विषाद सभी कुछ सीधे अवतरित हुआ है। इनकी रचनाओं में किंचिन्मात्र भी

---

1. झूलानट, पृ0 20
2. अल्मा कबूतरी, पृ0 233

सम्प्रेषणीयता का अभाव नहीं है।

आपके उपन्यासों एवं कहानी संग्रहों में कथ्य एवं शिल्प इतना गहरा एवं मजबूत है कि पाठक सहज ही अभिभूत हो जाता है। औपन्यासिक परम्परा का सुन्दर एवं संश्लिष्ट विकास इनके उपन्यासों में सहज रूप से रेखांकित किया जा सकता है। इनके सम्पूर्ण सृजन में समाज की जीवन्त समस्याओं तथा नारी वर्ग की घुटन, उत्पीड़न एवं शोषण के ज्वलन्त पक्षों को समग्र जीवन दृष्टि के साथ भाषा एवं शिल्प के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

(ग) भाषा-शैली - अभिव्यक्ति का माध्यम :

मैत्रेयी समकालीन कथा–रचना में महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उनके उपन्यासों एवं कहानियों में बुन्देलखण्ड का एक उपेक्षित भू–भाग अपने जीवित रूप में देखा जा सकता है। बुन्देलखण्डी जनजीवन और जनमानस को जीवंत रूप प्रदान करने का सर्वाधिक श्रेय उनकी विषयोचित अभिव्यंजना–शिल्प को जाता है। यदि इनकी भाषा शैली इतनी जीवन्त और समर्थ न होती, तो इन्हें समकालीन कथाकारों में स्पृहणीय लोकप्रियता प्राप्त न होती।

वस्तुतः भाषा चिन्तन और अभिव्यक्ति का माध्यम है तथा विचार–विनिमय का साधन भी है। पारस्परिक विचार–विनिमय के आधार पर ही समाज का निर्माण होता है। बिना समाज के संस्कृति की सत्ता असम्भव है। इस प्रकार किसी संस्कृति के लिए समाज एक अनिवार्यता है, तो समाज के लिए भाषा की अनिवार्यता है। भाषा के प्रयोग की रीति या विधि शैली है। शैली उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। सामान्य कथानक में भी कुशल लेखक अपनी प्रभावपूर्ण शैली से प्राण प्रतिष्ठा कर देता है। मैत्रेयी पुष्पा ने भी अपने उपन्यासों एवं कहानियों में बुन्देलखण्ड के समाज की ज्वलंत समस्याओं एवं परिस्थितियों को अपनी भाषा शैली के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है तथा पूर्ण आश्वस्त होकर कहा जा सकता है कि लेखिका अपने मन्तव्य में पूर्ण सफल हुई है।

मैत्रेयी अपने कथा–साहित्य में एक खास विचारधारा से प्रतिबद्ध हैं और वह है नारी उत्थान। संघर्ष, चेतना उनकी मूलधारणा है। समाज, राजनीति तथा धर्म की गहराई से विवेचना करके उनके मूलभूत अभावों को उजागर करने का उनका ध्येय रहा है। अपने उपन्यासों एवं कहानियों में उन्होंनें सदियों से उपेक्षित खानाबदोष जन–जातियों के बिखराव, तनाव एवं बुन्देलखण्ड के समाज की टूटन, विचलन तथा विश्रंखलित रीति–रिवाजों को रोचक भाषा एवं आकर्षक शैली के माध्यम से स्पष्ट रेखांकित किया है। उनके नारी सम्बन्धी दृष्टिकोंण एवं नारी वर्ग की वकालत से प्रतीत होता है कि मैत्रेयी का उद्देश्य ही नारी चेतना को ऊर्ध्वोन्मुख करने का रहा है।

मैत्रेयी ने अपने कहानी संग्रहों में मानवीय संवेदना को अभिव्यक्त किया है तथा भाव चेतना को विस्तार प्रदान किया है। वस्तु और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से आपकी कहानियाँ श्रेष्ठ हैं तथा आंचलिक अनुभवों की ठोस एवं गम्भीर रूपरेखा प्रस्तुत करती हैं। उनके कथा–प्रसंगों में कोरा आदर्शवाद नहीं है बल्कि यथार्थ को जीवन्त रूप में प्रस्तुत करने का विकट आग्रह है। उनमें समस्याओं का यथार्थ रूप भी अभिव्यंजित हुआ है।

उनके 'इदन्नमम', 'चाक', 'अल्मा कबूतरी', 'बेतवा बहती रही', 'अगनपाखी' तथा 'झूलानट' उपन्यासों को पढ़कर ऐसा लगता है कि बुन्देलखण्ड के गाँवों का गहरा रंग उनकी भाव–चेतना से मिलकर एकाकार हो गया है। उनके कथानकों में आहत नारी की अन्तर्वेदना की अनुगूँज सर्वत्र सुनाई पड़ती है। मैत्रेयी के पात्र पलायनवादी नहीं हैं। वे समस्याओं के रू–ब–रू होकर उनका हल खोजने में संलग्न दिखाई देते हैं। लेखिका ने अपने पात्रों के हृदयों में अपनी भाषा शैली एवं शब्द संयोजन के माध्यम से वह स्फूर्तिदायक चेतना भर दी है, जिससे कि उनका नारी वर्ग साहस पूर्वक आपत्तियों का सामना करने को सन्नद्ध दिखाई देता है।

(घ) लोक-भाषा के शब्दों का प्रयोग :

मैत्रेयी पुष्पा का कथा–साहित्य जनजीवन के अधिक समीप है। उपन्यासों

एवं कहानियों में आंचलिक समाज एवं उसकी संस्कृति का स्वरूप साकार हुआ है। बुन्देली समाज की संस्कृति स्थान–स्थान पर झलकती है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक अनुभवों को अत्यन्त सहजता के साथ समावेशित किया गया है। पात्र जीवन के यथार्थ को भोगते हुए दिखलाई देते हैं। जीवन के इस यथार्थ में राग–रोष, सहानुभूति तथा ईर्ष्या संश्लिष्ट रूप में अभिव्यक्त हैं। पात्रानुकूल तथा विशिष्ट वातावरण निर्माण के लिए लोकभाषा के शब्दों का प्रयोग आवश्यक होता है। भाषा को सुबोध और सरल बनाने के उद्देश्य से मैत्रेयी ने अपने कथा–साहित्य में आंचलिक शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है। ''सामाजिक दृष्टि से लिखने वाला कोई भी कवि अपने काव्य में लोकजीवन तथा अंचल से सम्बन्धित भाषा शैली को त्याग नहीं सकता है। अपने काव्य की सामाजिक चेतना को सशक्त करने के लिए उसे लोक भाषा के शब्दों का प्रयोग करना ही पड़ेगा।''[1]

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में बुन्देलखण्ड के अंचल में व्यवहृत लोकजीवन की शब्दावली को प्रमुखता दी है तथा प्रचलित शब्दावली को जीवन्त स्वरूप प्रदान किया है। इन शब्दों के प्रयोग से कथा–साहित्य की भाषा सुन्दर, मधुर, सशक्त और समर्थ हुई है तथा लेखिका के कलात्मक और शिल्पगत वैभव में वृद्धि हुई है। शब्द सौन्दर्य की दृष्टि से आपकी भाषा आकर्षक एवं प्रभावपूर्ण है।

अपने कथा–साहित्य में लेखिका की दृष्टि अभिव्यक्ति की सामर्थ्य बढ़ाने पर रही है। भाषा को स्वाभाविक बनाने के उद्देश्य से आंचलिक एवं लोकभाषा के जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, उन्हें निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. उपन्यास

बेतवा बहती रही : बिट्टी, माँई, आंझना, कौंड़े, कसैंड़िया, हिलकी, धनबाद, आले, बकसिया, खटिया, घड़ौंची, पेंजना, मड़ैया, लरका, पनइयाँ, टाठी, घाम, अंगोछा, जिन्नगी, कचारा, चूरा, हँसली, नीरे, खसिया,

1. छायावादी काव्य में सामाजिक चेतना, डॉ0 डी0पी0 बरनवाल, पृ0 268

ततैया–बर्र, काँदी, लौरी, पाँत, पछ, अकारथ, लरका–बिटिया, जगवौ, कने, ग्योंड़ें, राछरी, रमतूला, कलछौंही, बखरी, कछोटा, भौजी, गौना, विरथा, आजी, पौर, लोटा, मोरी, ओंजा, ढोर, गिरास, टिपनियाँ, गुइयाँ, छिमा, गोखरू, गोड़, की कौ, पुतरिया, इरां, खबा, कोऊ, हुड़क, डुकइया, खवास, हड़ा, बौंड़ारें, टरो, निराट, सिर्रिन, मताई, सगिहा, बक्कारौ, दिनारी।

इदन्नमम् : सतबुँदियाँ, खोंसा, कथरी, उमाना, बुढ़ौती, लडुआ, निचुरी, अजान, ररूल, हिना, खँगार, गुइयाँ, उपास, कितेक, निगाई, हुलकी, कचुल्ला, लूहर, थरप, हेठा, ओली, अन्हालो, सरग, हिरकॉय, सेंत–मेंत, छोछक, पूतरा, विरथा, नौंने, उनत्तर, विदवान, रेडुआ, भीत, कोरिया, टपरिया, करमेंथा, सुदकरा, बिजना, साँची, ऐन, गदबद, हट्‌ट, लाट–साब, बिलइया, दबड़ों, पिड़वा, सिट्‌टी–पिट्‌टी, दुसमुस, माछी, खूँटा–जोरा, मूढ़ा, सपरने, रमतूला, अतीचाल, पुटियाते, चक्काबू, खैयड़, भाँस, चिरनामिरत, छुट्‌टल, साफिया, नासमिटा, खटका, पिछौरा।

चाक : बिटौरा, पक्खा, पछीत, गवरई, बैयर, सेंठा, झमा, अर्रा, त्वार, नार, दुबारी, जौरें, नौहरे, घंटरिया, टुकरी, बनवारी, सीरक, चिकाटा, लौहरे, हींसबारे, मांदी, सनूना, मुस, रठुली, काढ़न, पल्लौ, मेहमन्टा, सास्तरों, अखत्तल, पोच, कुढैला, भाभई, सल, कलामुंडी, बिछइया, कॉटी, घिग्घी, हेज, चोट्‌टा, न्हों, झालों, औटपाई, मूसटा, ऐना, भोरें, छाक, मुतमुन्ना, तिलबच्चा, बीजना, भूमर, गडुआ, चेंदी, बैना, बर्त, रई, सतनूजी, छन्ना, जने, जैमा, दुम्हैती, गूँजा, कर्री, पमाड़े, लौदें, थरपी, उरी, मझोली, कौमरी, चपटिया, सीरा, फेरे।

झूलानट : झींका, गमछा, झाँझ, लुखरा, दइया, लाधिन, पाजी, पुल्टिस, नुगरिया डोंडी, अठैन, बोरड, पोसना, पतुरिया, नगाली, बैसांदुर, पिछौरिया, चौतरा, लिड़इया, ब्यारू, अफारा, मस्खरी, भपारे, मढ़िया,, टीसाट, उमेठा, झर्रा, बिलो, मतारी, कथरी, भोंपा, बूड़ने, काय, पौढ़ते, छीजें, टोला, कोंडुआ, ठौर, ठेंठर, ऐनरी, चिरौटा, निरनै, लुचई, मड़ेली, डुकरो, बेंड़े, करभुंजी, चाखी, कोरट, मोमिया, डिंगरिया, बिलात, हड़िया, कुदका, कुप्पी, तरइयां, चाकर, अघा, सलूका, मलीदा, बकसुआ, जनी, बरोसी, चिराइंध, लुखरा, उचक्का।

अल्मा कबूतरी : बउनी, च्छोरा, डिंगरी, सलीता, लिथड़ा, गुली, लुकाछिपी, खटिया, सुलगा, भौजाई, कौल, किरिया, कडुआ, अकारथ, खरा, बतियां, छटी, सदरी, लुगाई, राई, छेक, चकारी, उनहार, पुसाती, मड़इया, चौहद्दी, स्याने, दाँती, झोंटा, बखरी, गुदड़ियों, बेड़िनी, घुट्टी, उकडूं, ठौर, निखालिस, पौर, ब्यौरा, चिरांइध, लिड़ौरी, मड़वार, बिछौना, बाँहजोटी, नकचढ़, निमोघिया, वोदापन, पधराया, लूगड़ी, पगहा, दुमछल्ला, बूचड़खाने, चोट्टा, अंटचमंट, काँती, हौलदिली, औंझा, रीती, चेले–चिंडारे, पुतरिया, सन्निपात।

अगनपाखी : पैनिया, लरका, पाहुनों, कुट्टी, सिर्री, लड़कौरी, टठुलिया, तरकारी, मैतर, परजा, कंचे, बहनौता, भट्टी, टौरिया, मढ़िया, भूसा, चैतुआ, चीकट, पुटरिया, कथूले–कथरिया, मोड़ी, कटनई, दुफरिया, दरॉत, काए, बिजना, खटियाँ, बिरिया, कढ़इया, पालथी, मौर, गुइयाँ, दायजा, खक्कासाय, बलैया, राई–नौन, गोरस, जिंवाना, सूधरे, मोड़ी, ड्योढ़ी, डुकइया, ठाड़ी, सीरनी, मामुलिया, झकरा, घड़ौची, धुतिया, सलूका, चौका–बासन, सुरग, हींसा, सुदकरा,

सिरमौर, कचरिया, न्यारे–माझे, सासरे, सिराता, तरइयां, कारज, लोआ, टहलुआ।

कस्तूरी कुण्डल बसै: पायताने, नठिया, जूड़ी, पढ़ैली, महतारी, परात, छोछक, पंत, दूजिहा, बाय, गवईं, भदेस, हीला, लौर, डोरा, बिरमा, छेरी, औहतिया, ठिया, कौड़िया, कुबड्ड, ठिठोलियों, दिखनौती, भौजाई, परोथन, भौंदू, लुगाई, सौंतिया, गलबहियाँ, अरी, पेंचा, कौल, तिरकाई, रूकाइयों, लुढ़का, रमतूला, हओ, गुइयाँ, करिहाई, पारस, औलबाती, औखटी, सक्किन, भतइयौं, बुग्गी, तिड़ी–बिड़ी, गँवट्टों, पड़ोरा, साँकरी, छटाँक, ब्याह, साध, तनिक, बड़मोछा, भड़ुआ, डोकरा, लाड़, टंटा, पंजीरी, हलकी, सिंवन, कुनबा, हौलदिली।

कही ईसुरी फाग : घूरा, बखत, लूघरा, कंडा, निगोना, चपेटा, छूँटा, दुर, चखिया, बिटम्ना, मिलका, टिप्पस, लपाड़, अपढारे, भाभई, निगो, बिट्टी, बरेदियों, मठारा, नेठम, नीचट, लिड़इया, बिलात, कदुआ, सीकें, पडुआ, कलछौहा, चौंपे।

2. कहानी संग्रह

चिह्नार : बटोर, तहाने, झौरें, जरूली, उमेठ, अघाने, लीपापोती, कुल्ला–दातुन, चकफेरी, पड़ोसा, उपलों, इत्ते, होयगो, रहट, नासपीटे, खटिया, सूधरे, काय, आरसी, बौड़म, निराट, कने, खिच्याई, पगलैट, मतारी, नातर, तिजारी, टोटे, बछेउओं, लरिका, तज, मोड़ा, ठठुकाने, जौन, उतई, जैहे, हुइये, देउ, वर्माहूँ, हौन, ऐन, नेंक, नइयाँ, निछुद्दर, संगै, बिमार, बारौ, हमहि, रक्खत, निकरि, इनहूँ, सम्भार, हुइकै, दैहें, इहाँ, सासरे, कितहूँ, पकरि, खबाय, उरसैगी, हिरा, हौरी, होयगी, साँचऊ, हुइये, चइये, इहाँ, हतौ, छिमा।

ललमनियाँ : पथनवारे, रेवड़, चौचीती, सलूका, साँची, झल्लूस, झिरी, अगाई, हौदा, घड़ौची, पैछर, सिट्टर, हुलस, कइसे, अइसे, बिला, ठौर, बिलस्त, पेंठ, औने–पौने, हिये, पच्छ, हिरा, अघाते, चेत, गैलाऊ, ठुडकाने, खटिया, धाँगने, कलेऊ, आँ हाँ, नासिया, धजा, रिजक, परगास, अखरी, पहलौटी, अखेल, लाम, मगज, लडुआ–पेरा, कंडों, सास्तर, लफटंट, भड़ियाई, इंगेसन, पतलेई, पिढ़ी, घिची, हेटी, हती, लकदक, हंडा, मूड़, थिर, सिर्रिन, जनी, बिला–पपरिया, करई, परसन्द, हिलगी, नॉय, तुमारे, सगरे, ओसारें, परामटे, हँफियाती, चून, हैं कैं, दाड़ी, लॅय, थोरी, पढ़तु, लोड़ा, निरी, लइयो, महेरी, पोच, बांहुआ, घाम, खरहरी, छिटंकी, बिजूका, थरकुलिया, कथूलिया।

गोंमा हँसती है : लिड़इया, टेंटुए, लिड़ौरी, पंचा, ततैया, धाकड़, ससुरी, मईदार, मूढ़ा, विरथा, खाट, गलीचा, छयोंट–बढ़, चिरौरी, लूहर, सिर्रिन, धुतिया, रौथने, उमथाने, लॉघ, झोंटा, करिहा, सानी, दुह, महमहा, बरौठा, अटारियाँ, भीतों, ओटालों, पोटली, निमकौड़ी, ठिलिया, लिथड़ी, गँजेड़ी, ऊसर, निरीत, पतोहू, बेर, कलछौंहा, घूंटते, सुभीता, सरग, घड़ौंची, भीर–उछीर, मूंड़, बलैया, अनचीन्हें, तिड़ी–बिड़ी, बखरी, भुच्च, बागड़बिल्लू, लत्ता, लुक, टहल, काढ, नौकरिहा, नासमिटे, लिहाज, काय, भड़ियों, गोड़, ऊताताई, मुछीका, न्यारी, लदैनी, औंधा, रिस, सपाखाने, कनसुआ, बासन–बिलिया, हुलस, बिटोंरो, झरॉ, ठठ्ठा, न्यौता, छिमा, हंडा, साँची, भभका, दिबरी, गौंड़ें, नरियाये, नौने, अबा, जांगा, मस्कऊँ, थराई, पाउने, सबुर, ठरगजी, चन्दुर, फैंटा, छोरा, दगरे, गेंडुआ, नै, पौहे, गस्सा, इकलखुरा, हरहरा।

(इ) सामाजिक चेतना से परिपूर्ण भाषा-शैली :

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा–साहित्य में अपने स्वतंत्र भावों तथा निष्पक्ष चिन्तन को जन–जन तक पहुँचाकर जनमानस में सामाजिक चेतना जाग्रत की है। इनकी भाषा–शैली अन्य आंचलिक उपन्यासकारों से भिन्न एक अनूठे ढंग की है, जिसका सामाजिक चेतना की दृष्टि से काफी महत्व है। इनके उपन्यासों में परम्परागत रूढ़ियों एवं सामाजिक अंधविश्वासों का प्रबल विरोध है तथा इनकी कहानियाँ लोकजीवन पर आधारित और सामाजिक चेतना के धरातल पर हैं। मैत्रेयी की भाषा–शैली में प्रगतिशील भावना तथा सामाजिक यथार्थवादिता का स्पृहणीय चित्र अंकित हुआ है।

चाक की सारंग नैनी तथा अगनपाखी की भुवन हो या विजन की नेहा, ये सभी स्त्रियां संघर्षरत रहकर तिरस्कार, अपमान और उपेक्षा के कारण निराश नहीं होतीं, वरन् अपने अडिग, धैर्य, श्रम की ताकत तथा अटूट जिजीविषा का परिचय देती हैं। मैत्रेयी की भाषा–शैली में आंचलिकता की छाप पाठक के मस्तिष्क में ऐसे बिम्ब प्रस्तुत करती है कि पाठक का अन्तर्मन सामाजिक चेतना के उद्दाम प्रवाह में प्रवाहित हुए बिना नहीं रहता।

मैत्रेयी की भाषा–शैली में सामाजिक चेतना के विविध रूप दृष्टिगत होते हैं। बुन्देलखण्ड की सामाजिक कुरीतियों, विषमताओं की प्रतिक्रिया स्वरूप मैत्रेयी के कथा–साहित्य में व्यक्ति स्वातंत्र्य की सजग भावना स्थान–स्थान पर झलकती है। उग्रवादी विचारों के वर्णन में भाषा भी उग्र रूप धारण कर लेती है। एक ओर भौतिक प्रगति की वैज्ञानिक चकाचौंध तथा मशीनों की गड़गड़ाहट की ओर समाज का आकर्षण वर्णित है, तो दूसरी ओर अंधी धार्मिकता और रूढ़िवादिता का तीव्र विरोध भी दर्शाया है। यदि नारी के प्रति उदार दृष्टिकोण का जोरदार समर्थन है तो शोषितों के प्रति गहरी सहानुभूति भी मिलती है।

मैत्रेयी की शैली में स्थान–स्थान पर पुरुषवादी व्यवस्था पर व्यंग्यात्मक प्रहारों का समुचित उपयोग मिलता है। अपने तर्क को व्यंग्य के माध्यम से प्रभावपूर्ण

बनाने तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था के पाखण्डों को उजागर करने का एक उदाहरण– "हमें अपने स्वामी की वीभत्स मानसिकता का रोज–रोज शिकार होना रास नहीं आता। उसकी झाड़ और मारपीट हमारा क्रूरतम सौभाग्य है। यदि जैसा कि होता आ रहा था, होता जा रहा है तो क्या लाभ हुआ हमारी आर्थिक निर्भरता का? आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर औरत को पुरुष की तरह सामाजिक सहूलियतें नहीं मिलतीं, इसलिए उसे हरहालत में अपने पति को खुश रखना है, मन मारकर और तन तोड़कर।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि मैत्रेयी का तीखा व्यंग्य पुरुषवादी व्यवस्था पर कठोर प्रहार है तथा पाठक की मानसिकता को झकझोर कर यह सिद्ध करता है कि जो भी हो रहा है, वह समाज विरोधी है तथा समानता के स्तर पर अनुचित है।

मैत्रेयी ने कथा–साहित्य में अनेक स्थानों पर कवित्वपूर्ण तथा भावुकतापूर्ण गद्यात्मक शैली को अपनाया है। प्रभावपूर्ण गद्य शैली के अंकन में यथेष्ट प्रभावात्मकता है। भाषा भावमय, परिमार्जित एवं सरस शैली का मार्मिक विधान यत्र–तत्र दर्शनीय है। शैली का प्रवाह रसात्मकता उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए देखिये– "दुश्चिन्ता और संशयों के बीहड़ अरण्य में भटकते श्रीष। मछेरे के जालसी उलझी गुत्थियों में छटपटाते श्रीष केवल अटकलें लगाते रहे।"[2] "बार–बार वही दृश्य, कंधों पर कामाचारी के अजगर से हाथों की जकड़न फिर कंधे से नीचे सरकता भया वह स्पर्श वृश्चिक दंश सा।"[3]

मैत्रेयी ने सामाजिक जीवन में व्याप्त जाति–पाँत के घृणित दुर्व्यवहार, पूँजीवादी व्यवस्था के शोषण, अत्याचार और अन्यायों से पीड़ित भारतीय नारी की दमित भावनाओं को अपने उपन्यासों एवं कहानियों में स्थान–स्थान पर चित्रित किया है। उनके कथा–साहित्य के अधिकतर कथानकों के केन्द्र में नारी स्वांतत्र्य एवं नारी–अस्मिता ही विद्यमान है। इनके नारी पात्रों में मुक्ति की छटपटाहट है तथा

---

1. खुली खिड़कियां, मैत्रेयी पुष्पा, पृ0 101
2. ललमनियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, पृ0 62
3. उपरिवत्, पृ0 62

संघर्षशील रहने की अनवरत् चेष्टा भी है। नारी की इसी भूमिका को मैत्रेयी ने अपने कथा–साहित्य में अंतरंगता प्रदान की है और संघर्षशील नारी की प्रवृत्तियों को अपनी भाषा–शैली के माध्यम से सभी उपन्यासों एवं कहानियों में विशिष्ट रूप से उभारा है। 'इदन्नमम्' की मंदाकिनी हो या 'अल्मा कबूतरी' की अल्मा या 'झूलानट' की शीलो हो। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मैत्रेयी के कथा–साहित्य की भाषा–शैली सामाजिक चेतना से परिपूर्ण है तथा उनकी भाषा में बुन्देली समाज के सभी पहलुओं पर विचार किया गया है।

(च) मैत्रेयी पुष्पा के कथा-साहित्य में कहावतें तथा उक्ति प्रयोग :

साहित्यकार अपनी भाषा को प्रभावशाली स्वरूप प्रदान करने एवं अपने कथन में सजीवता लाने के लिए मुहावरे एवं कहावतों का प्रयोग करता है। कथन को सीधे ढंग से न कहकर किसी लोकोक्ति के माध्यम से जब प्रस्तुत किया जाता है, वह कथन श्रोता पर स्थाई प्रभाव छोड़ता है। कथन की सार्थकता इस बात में है कि पाठक या श्रोता उसे गहराई तक समझ लें। कवियों तथा लेखकों ने अपनी भाषा में चमत्कार लाने तथा कथन को बल प्रदान करने के लिए प्रायः कहावतों एवं मुहावरों के प्रयोग किये हैं। मैत्रेयी की भाषा में मुहावरे तथा लोकोक्तियों के स्वाभाविक प्रयोग प्रायः उपलब्ध होते हैं। यदि यह कहा जाए कि लेखिका को मुहावरों तथा कहावतों के प्रयोग में महारत हासिल है, तो अत्युक्ति नहीं होगी। मैत्रेयी पुष्पा का भाषा पर विलक्षण अधिकार है। उनके कथा–साहित्य में मुहावरे तथा लोकोक्तियों के बड़े ही सटीक और सार्थक प्रयोग हुए हैं। उनके उपन्यासों और कहानियों में मुहावरे तथा लोकोक्तियों को क्रमशः निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है–

इदन्नमम् : परदेशी की प्रीत रैन का सपना–दिया कलेजा काट हुआ नहीं अपना, विनास काले विपरीत बुद्धि, बारह बरस बाद घूरे के दिन भी फिरते हैं, चमरिया से चाची कही चौका में चली आयी, पर मरी मइया, आसों आये आँसू, न नौ मन तेल होगा न राधा

नाचेगी, रहें भिसौरों में और सिंधलद्वीप के सपने देखें, जब जागो तभी सबेरा, सूत न कपास कोरिया में लट्ठमलट्ठ, कानी के ब्याह को सौ जोखे, हथेली पे राई उगाना, आँख में सुअर का बाल उगना, साँप भी मर जाय और लाठी भी नहीं टूटे, बाँह फड़के बायीं–वीर मिले कै साँई, कबाब में हड्डी, नौ सौ मूसे खाय बिलइया हज्ज कों चली, तेरे मन कुछ और है कर्ता के कुछ और, बांस रहे न बांसुरी बजे, देखी–भाली लोमड़ी गावै सरग–पाताल, सोने पे सुहागा, नानी के आगें ननिहाल की बातें, खाली घर सैतान का अड्डा, दूध का जला छाछ भी फूँक–फूँक कर पीता है, एक अनार सौ बीमार, दिन देर ही तो अंधेर नहीं।

चाक : आ बैल मुझे मार, साँच को आँच नहीं, मुद्दई सुस्त, गवाह–चुस्त, कलावती की बात कुत्ता की लात, पुरजा–पुरजा कटि मरै तबहुँ न छाँड़े खेत, कुबड्डों की धौंस, बकरे की माँ कब तक सिन्नी बाँटेगी, जिनकों प्यारी इस्तिरी तिन कब प्यारे पूत, पेट में दाढ़ी होना, बारह बरस बाद घूरे के दिन भी फिरते हैं, ऊँट पहाड़ के नीचे आना, पिद्दी न पिद्दी का शोरबा, तिल का ताड़ बनाना, मन चंगा तो कठौती में गंगा, कोढ़ में खाज, गुरू कुम्हार शिष कुम्भ, अकेला चना क्या भाड़ फोड़ लेगा, मइया डाल–डाल तो बेटी पात–पात, कुत्ते को थोड़ी सी मांस–मज्जा लगी हड्डी मिल गई बस हो गया निहाल, शेर तो पूरा सियार पाकर भी हाथी के शिकार को निकल जाता है, एक लिखा सौ बका, मुफत का चन्दन घिस मोरे नन्दन, सीस जमाई का काटूँ अरु बेटी को डारूँ मार, धींग मारे न रोने दे, छोटे मुँह बड़ी बात, माँ मरी धिय को धिय मरी धींगरे कों, प्रेम न माने कोई अड़ंगा प्रेम न माने पोखर गंगा, खरबूजा को देखकर खरबूजा भी रंग

बदलता है, जहाँ न पहुँचे रेलगाड़ी वहाँ पहुँचे मारवाड़ी, तिरिया चरित्र न जाने कोई, खसम मार के सत्ती होई।

झूलानट : औरत की आँख में उल्लू की पुतरियाँ होती हैं, बोदे की लुगाई हाथ बेहाथ, बारह बरस बाद घूरे के दिन भी फिरते हैं, अंत भला तो सब भला, सफेद पिछौरिया की पूछ होती है, पति मरे पीछे तपसिन, राजा की बात कुत्ता की लात, बूढ़े मुँह मुहासे देखो लोग तमासे, कोढ़ में खाज, गुड़ को गोबर कर दे गोबर को गुड़, काठ का उल्लू, हाथ कंगन को आरसी क्या, बेटी का बाप नाथा हुआ बैल।

अल्मा कबूतरी : साँप के सपेलुए भी छोड़े नहीं जाते, चोरी और सीना जोरी, राजा की रानी एक बांदी हजार, पद पाए मद में आना, रहें भुसौरों में सिंघल दीप के सपने देखें, हाथों से तोते उड़ जाना, बारह बरस पीछे घूरे की भी फिर जाती है, जवानी देखकर जवानी डरती है, चोर की दाढ़ी में तिनका, प्यार तो पहाड़ सा भी हो ढह जाता है, गुड़ खाये गुलगुलों से परहेज, आया ऊँट पहाड़ तले, ब्याह कर और गंगा नहा, सौ रोगों की एक दवा, चोर–चोर मौसेरे भाई, जान जाए पर आदत न जाए, दूध का दूध और पानी का पानी, नौ सौ मूसे खाये बिलइया हज्ज करे, एक दिन में ही हथेली पर राई नहीं जमती, लाठी मारे पानी फटता है कभी, सावन के अंधे को हरा–हरा ही दिखता है, चार चाँद लगाना, खरबूजे को देखकर खरबूजे का रंग बदलना।

अगनपाखी : कहाँ गये राजा अमान जिनखों रोबे चिरइयाँ, पूत को पूत करेजे को टूक, धिय कौ पूत हरामी को मूत, हाथ कंगन को आरसी क्या, टटा की बेटी अटा में घुसा दे, कोढ़ में खाज, बीमारी बढ़ती है ताड़ की तरह घटती है तिल–तिल।

विजन : सोने पर सुहागा, हाथ कंगन को आरसी क्या, हारे को हरिनाम, कानी के ब्याह को सौ जोखिम, मरे को मारे शाहमदार, खिसियानी बिल्ली खम्मा नोचें, तू डाल–डाल मैं पात–पात, सैंया भये कोतवाल अब डर काहे का।

कस्तूरी कुण्डल बसै: मीत गए पर मीत न आया, दूध का जला छाछ भी फूँक–फूँक कर पीता है, तू डाल–डाल हम पात–पात, बेटी होते बुरी बेटी जाते बुरी, बेटा जाये खुशी बेटा ब्याहे खुशी, चींटे का गुड़ पर आना शिकार पर गीदड़ का झुकना, घायल की गति घायल जाने, बकरे की माँ कब तक सिरनी बाँटे, राजा की रानी एक बांदी हजार, चमरिया से चाची कही चौका में चली आई, बिल्ली मारे पहली रात, ये मुँह और मसूर की दाल, अपने हाथ न देते महावर।

कही ईसुरी फाग : अपना दाम खोटा परखइयों का का दोष, हाथ कंकन खों आरसी का, मन–मन भावे मूंड़ हिलावे, सूत न कपास कोरिया में लट्ठम–लट्ठ, जा को राखे साइयाँ मार सके न कोय, दूध का जला छांछ भी फूँक–फूँक कर पीता है, तिरिया चरित्र न जाने कोई, खसम मार के सत्ती होई, ईद का चाँद होना, मिट्टी के माधो।

चिह्नार : ढाक के तीन पात, बेटा बुढ़ापे की लाठी है, न्यारे पूत पड़ोसी दाखिल, जाकों राखें साइयाँ मार सके न कोय, दूध का दूध पानी का पानी, न हारी न बीमारी, खून का घूँट पीना, कहीं तो आग होगी ही, नहीं तो धुआँ कैसे उठेगा, मिट्टी कौ माधौ, सीधी उँगली घी नहीं निकलता, पाँव की जूती, ईंट से ईंट बजा देना, खील–मखाने होना, भरी थाली में कोई लात मारता है,

चौड़े–चौक लुट जाना, राजा की रानी एक, बाँदी हजार, छाछ का जला दूध भी फूँक–फूँक कर पीता है।

ललमनियाँ : दायजे के पीछें सतावें, बेटी आप घर कि बाप घर, भइया विस लेना, भतीजे विस देना, जैसा गुड़ डालो वैसा ही मीठा, मिट्टी कौ माधौ, गुड़ देखते के चींटे, घर में दाने न तन पै चीथरा, करेला नीम चढ़ा।

गोमा हँसती है : काग पढ़ाये पीजरा, पढ़ गये चारौ वेद, जब सुधि आई कुटुम की, रहे ढेंड़ के ढेंड़, जैसा गुड़ डालोगे, वैसा ही मीठा, राँड का पूत बिगड़े, रँडुआ की धिय, मरे पूत की बड़ी–बड़ी आँखें, मुई, नारि गृह सम्पत नासी, मूँड़ मुड़ाय भये संन्यासी, मन चंचल शैतान का वासा, गुसौरों में रहकर सिंघलद्वीप के सपने देखना, हरि भूलूँ, हरिनाम न भूलूँ, घोड़ा घास से यारी करे तो खाये क्या?, बकरे की माँ कब तक परसाद बाँटेगी, भूतों से पूत माँगना, सैंया बिना ना सासरौ, मइया बिन त्यौसार, ओखली में सिर देना, तू डाल–डाल, तो मैं पात–पात।

अष्टम् अध्याय

उपसंहार

मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा–साहित्य में जिस बुन्देलखण्डी समाज को रेखांकित किया है, वह समाज बहुवर्णी है। उसमें नट हैं, कबूतरी हैं, किसान हैं, निर्धन हैं तथा जीवन–यापन के लिए संघर्ष करते छोटे–बड़े पात्र हैं। इन्हीं पात्रों के आधार पर मैत्रेयी पुष्पा का कथा–साहित्य वर्तमान को प्रभावपूर्ण ढंग से पाठकों के सम्मुख रखता है। इस तरह मैत्रेयी पुष्पा के लेखन का सरोकार समाज के साथ दृढ़ता से जुड़ा हुआ है और संस्कृति पग–पग पर अपनी झलक मारती दिखलाई देती है।

जीवन के इन सामाजिक एवं सांस्कृतिक अनुभवों को मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों एवं कहानियों में अत्यन्त सहजता के साथ समावेशित किया है। इदन्नमम, बेतवा बहती रही, चाक, अल्मा कबूतरी, झूलानट, विजन, अगनपाखी, कस्तूरी कुण्डल बसै, कहीं ईसुरी फाग उपन्यासों और गोमा हँसती है, ललमनियाँ तथा चिह्नार कहानी संकलनों के कथानक पाठक को पूरे अंचल में कदम–कदम चलने के लिए प्रेरित करते हैं। इन सभी उपन्यासों एवं कहानियों के पात्र जीवन के यथार्थ को भोगते हुए दिखलाई देते हैं। जीवन के इस यथार्थ में राग, द्वेष, सहानुभूति तथा ईर्ष्या साथ–साथ दिखलाई देते हैं। इनके उपन्यासों और कहानियों का समाज न तो दीनता का प्रदर्शन करता है और न जीवन–संघर्ष से पलायन करता है।

''मैत्रेयी पुष्पा : कथा साहित्य का सांस्कृतिक अनुशीलन'' विषय पर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उनके जन्म, परिवार, सामाजिक–आर्थिक परिवेश, शिक्षा एवं संस्कार, व्यक्तित्व और स्वभाव को रेखांकित किया गया है। आपने अपने सम्पूर्ण साहित्य में भारतीय नारी समाज को अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत करके महिला सशक्तीकरण पर बल दिया है। सदियों से हो रहे शोषण, अन्याय एवं उत्पीड़न के खिलाफ जोरदार आवाज उठाने के लिए तथा सक्षम विरोध प्रदर्शन के लिए नारी वर्ग को सचेष्ट किया है। घर की चहारदीवारी के अन्दर बन्द रहकर घुट–घुट कर अन्याय सहना, अपनी उचित तथा न्यायसंगत बात भी न कह पाना, पुरुष सत्तात्मक पारिवारिक व्यवस्था के अधीन अपना

बेवश जीवन–यापन करना तथा यौन–उत्पीड़न को आँख बंद कर सहने के विरोध में सामूहिक आन्दोलन के लिए नारी जाति को उकसाने का कार्य मैत्रेयी पुष्पा ने अपने कथा साहित्य में सफलता पूर्वक किया है।

मैत्रेयी पुष्पा के साहित्यिक कृतित्व में पीढ़ीगत वैचारिक संघर्ष को सफलता से रूपायित करने वाला अनूठा उपन्यास "इदन्नमम" ग्रामीण समस्याओं पर प्रबुद्ध वर्ग द्वारा काल्पनिक समाधान प्रस्तुत करने वाला प्रयोगात्मक उपन्यास 'चाक', पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था से संत्रस्त नारी की दयनीय स्थिति को चित्रित करने वाला 'बेतवा बहती रही' उपन्यास, खानाबदोष कबूतरा जनजाति की संस्कृति को अभिव्यक्ति देने में सक्षम 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास तथा बुन्देलखण्ड में व्याप्त जातीय संघर्ष, प्रतिशोध, ईर्ष्या–द्वेष तथा लोक मान्यताओं के ज्यों के त्यों चित्र खींचने में समर्थ 'अगनपाखी' उपन्यास प्रमुख हैं।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' इनका आत्मकथात्मक उपन्यास है। 'झूलानट' उपन्यास में नवीन एवं प्राचीन प्रवृत्तियों में आन्तरिक संघर्ष को चित्रित कर स्त्री–शक्ति को पर्याप्त रूप से उभारने की पेशकश की गई है। 'कही ईसुरी फाग' उपन्यास बुन्देली लोक कवि ईसुरी तथा उनकी प्रेमिका रजऊ की प्रेम गाथा पर आधारित है। इसी प्रकार मैत्रेयी पुष्पा के कहानी संग्रह 'गोमा हँसती है', 'ललमनियां' तथा 'चिह्नार' समाज में व्याप्त विसंगतियों और अन्यायों को उजागर करते हैं। 'खुली खिड़कियाँ' मैत्रेयी के स्फुट निबन्धों का संग्रह है। इन निबन्धों में समाजिक मूल्यों एवं तथ्यों का तटस्थ विवेचन किया गया है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों एवं कहानियों में बुन्देलखण्डी समाज के पारिवारिक सम्बन्धों के विविध चित्र अंकित हैं। माता–पिता, पति–पत्नी, भाई–बहन के माधुर्य पूर्ण सम्बन्धों, यदि जीवन का सारस्य सृजित है, तो देवरानी–जिठानी, ननद–भाभी तथा सास–बहू के कटुतापूर्ण व्यवहारों से पारिवारिक क्लेश एवं सामाजिक विघटन की स्थिति निर्मित होती है। इनन्नमम उपन्यास की 'कुसुमा' परित्यक्ता एवं विधवा होते हुए भी प्रेम सम्बन्धों से जुड़कर जीवन का आनन्द लेती है। 'झूलानट' की शीलो अपने देवर

'बालकिशन' से प्रेम तो करती है किन्तु 'बछिया' (पुनर्विवाह) करने को तैयार नहीं होती। लेखिका ने 'शीलो' के माध्यम से स्वच्छंद प्रेमभावना को उचित ठहराया है। विजन उपन्यास में 'आभा दी' और 'डॉ0 नेहा शरण' जैसे पात्रों का सृजन कर लेखिका ने आर्थिक शोषण का मुखर विरोध चित्रित किया है।

अपने कथा साहित्य में मैत्रेयी पुष्पा ने कथा विस्तार के लिए नायक व नायिकाओं का सृजन कर औपन्यासिक वर्णन कौशल का परिचय दिया है। सारा घटनाक्रम नायक व नायिका के इर्द–गिर्द घूमता है। कथोपकथन एवं संवादों के माध्यम से पात्रों के चरित्र को उभारा गया है। इसी तरह प्रतिनायक एवं प्रतिनायिका, नायक व नायिकाओं के सहयोगी बनकर आये हैं। कुछ ऐसे पात्रों का भी सृजन हुआ है जो चारित्रिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं, लेकिन कहीं न कहीं कथावस्तु को प्रभावित अवश्य करते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य का समाज सदियों से जिस संस्कृति के अनुरूप जीवन–यापन कर रहा है, वह संस्कृति ही अंचल विशेष के समाज को प्राणवान बनाये हुए है। उनके उपन्यासों एवं कहानियों में घनीभूत संवेदना के साथ भावात्मक आत्मीयता है, इसी से उनका कथा साहित्य जीवन की वास्तविकता से ओत–प्रोत है। इनके कथा साहित्य में स्थानीय संस्कृति अपने सर्वांग रूप में साकार हुई है। संस्कृति का यथार्थ स्वरूप प्रतिबिम्बित है किन्तु आदर्शवादिता के पुट के साथ। प्राचीन संस्कृति के तत्वों– आध्यात्मिकता, अवतारवाद एवं पुनर्जन्म की प्रबल मान्यता से जनमानस पूर्णतः प्रभावित है। फिर भी पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव की झलक कहीं–कहीं दृष्टिगोचर है। सदियों से चली आ रही वर्णाश्रम व्यवस्था ध्वंश के कगार पर है, लेकिन बुन्देलखण्ड के पिछड़े क्षेत्रों की जनजातियों में अभी भी वर्णो की मान्यता है। पुनर्जन्म एवं परलोक की अवधारणा जनमानस में गहराई से परिव्याप्त है। तीर्थों, व्रतों एवं उत्सवों के प्रति दृढ़ आस्था एवं विश्वास सर्वत्र देखा जा सकता है।

भाषा सौष्ठव एवं शिल्प की दृष्टि से मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य

साहित्यिक गरिमा के अनुरूप है। लेखिका ने अपने भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम जिस भाषा को बनाया है, वह बुन्देलखण्डी मिश्रित खड़ी बोली है। पात्रानुकूल भाषा का व्यवहार अभिव्यक्ति में सहायक हुआ है। लोकभाषा के स्थानीय शब्दों का प्रयोग उनके भाषा व्यवहार के नैपुण्य को उजागर करता है। मैत्रेयी पुष्पा की भाषा शैली सामाजिक चेतना से परिपूर्ण है। कहावतों एवं मुहावरों के सुष्ठु प्रयोग उनके भाषायी ज्ञान के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

अंत में कहा जा सकता है कि 'मैत्रेयी पुष्पा : कथा साहित्य का सांस्कृतिक अनुशीलन' शोध के क्षेत्र में संभावना समन्वित अन्वेषण कार्य है। इस प्रबन्ध में प्राचीन संस्कृति का नवीन जीवन मूल्यों के आधार पर विश्लेषण किया गया है।

परिशिष्ट

आधार एवं संदर्भ ग्रन्थ

आधार ग्रन्थ :

उपन्यास

1. बेतवा बहती रही, मैत्रेयी पुष्पा, किताबघर प्रकाशन, संस्करण– 1994

2. चाक, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण– 1997

3. इदन्नमम, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण– 1994 तथा पेपरबैक्स– 1999

4. अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण– 2000 तथा पेपरबैक्स– 2004

5. अगनपाखी, मैत्रेयी पुष्पा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2001

6. झूलानट, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, पेपरबैक्स, प्रथम संस्करण– 2001

7. विजन, मैत्रेयी पुष्पा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2002

8. कस्तूरी कुण्डल बसै, मैत्रेयी पुष्पा, राजकमल प्रकाशन, संस्करण– 2002

9. खुली खिड़कियाँ, मैत्रेयी पुष्पा, सामयिक प्रकाशन, संस्करण– 2003

10. कही ईसुरी फाग, मैत्रेयी पुष्पा

कहानी संग्रह

1. चिह्नार – मैत्रेयी पुष्पा, आर्य प्रकाशन मंडल, तृतीय सं0 2004, IX/221, सरस्वती भंडार, गाँधीनगर, दिल्ली

2. ललमनियाँ – मैत्रेयी पुष्पा, किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण– 1996

3. गोमा हँसती है – मैत्रेयी पुष्पा, किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण– 1998

संदर्भ ग्रन्थ

1. छायावादी काव्य में सामाजिक चेतना – डॉ0 डी0पी0 बरनवाल
2. यशपाल के उपन्यास : सामाजिक कथ्य – डॉ0 चमनलाल गुप्ता
3. वैदिक साहित्य, संस्कृति और दर्शन, डॉ0 विश्वम्भर दयाल अवस्थी
4. अष्टाध्यायी – पाणिनि
5. संस्कृति एवं सभ्यता : भारतीय दृष्टिकोंण, डॉ0 बृजबिहारी निगम, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद
6. भारतीय संस्कृति का प्रवाह – प्रो0 इन्द्रविद्यावाचस्पति
7. अशोक के फूल – हजारी प्रसाद द्विवेदी
8. भारतीय संस्कृति – डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्र
9. भारतीय संस्कृति का उत्थान – डॉ0 रामजी उपाध्याय
10. शब्द साधना – श्री रामचन्द्र वर्मा
11. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि – डॉ0 कमला प्रसाद पाण्डेय
12. मानव और संस्कृति – श्याम चरण दुबे
13. भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, सोती वीरेन्द्र चंद्र, प्रथम संस्करण – 1998, प्रकाशन– राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली
14. भारतीय संस्कृति की रूपरेखा – बाबू गुलाबराय
15. भारतीय संस्कृति (महाकाव्यों के आलोक में) – डॉ0 देवराज
16. भारतीय संस्कृति का विकास, प्रथम खण्ड, मंगलदेव शास्त्री
17. मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति – डॉ0 मदनलाल गुप्त

18. कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक

19. गीता, श्रीमद् भगवतगीता

20. प्राचीन भारतीय संस्कृति, एस0एल0 नागोरी, प्रथम संस्करण 1996, श्रीमती शशि जैन, पोईन्टर पब्लिशर्स, एस0एम0एस0 हाइवे, जयपुर

21. अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, संक्षिप्त विवरण, डॉ0 मायारानी टंडन, हिन्दी साहित्य भण्डार, गंगा प्रसाद रोड, लखनऊ

22. धर्मशास्त्र का इतिहास

23. वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ. कृष्णा अवस्थी, पुस्तक संस्थान कानपुर

24. मनुस्मृति

25. हिन्दू संस्कार – डॉ0 राजबली पाण्डेय

26. वैदिक संस्कृति और सभ्यता – डॉ0 मुंशीराम शर्मा

27. भारतीय संस्कृति की गौरवशाली परम्परा, तनसुखराम गुप्त, प्रथम संस्करण–1997, सूर्य भारती प्रकाशन, 2596, नई सड़क, दिल्ली–110006

28. बारह महीने के व्रत, पर्व और त्यौहार, अशोक कौशिक, नई दिल्ली, डायमंड पॉकेट बुक्स

29. नरेश मेहता के उपन्यासों में सांस्कृतिक अनुशीलन, प्रेमलता गाँधी, प्रकाशन वर्ष 1996, भारतीय ग्रंथ निकेतन, 2713, कूचा चेलान, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

30. बुन्देलखण्ड का लोकजीवन, अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद', नमन प्रकाशन, मण्डपम, राठ रोड, उरई (उ0प्र0)

31. जिन्दगी की आँच और रंग, सम्पादक– गुरुचरण सिंह, आलेख– कविता का रचनात्मक विश्लेषण, डॉ0 राहुल, मंजुषा प्रकाशन, उत्तम नगर, नई दिल्ली, 2002

32. साहित्य और मनोभाषा शास्त्र, डॉ0 श्याम सनेही लाल शर्मा, ब्रजांचल शोध संस्थान, फिरोजाबाद, 2002

33. भूमिका : शैली तत्व : सिद्धान्त और व्यवहार, डॉ0 चन्द्रभान रावत, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 1988

पत्रिकाएं

1. हंस, सम्पादक – राजेन्द्र यादव, मार्च – 1993, समीक्षक– डॉ0 वेदप्रकाश अमिताभ
2. हंस, अगस्त– 1994, समीक्षक– रामधारी सिंह दिवाकर
3. हंस, सितम्बर– 1998, समीक्षक– वीरेन्द्र यादव
4. हंस, सितम्बर– 2000, समीक्षक– प्रेम कुमार मणि
5. हंस, अप्रैल– 2000, समीक्षक– अनन्त विजय
6. हंस, अप्रैल– 2002, समीक्षिका– रोहिणी अग्रवाल
7. अक्षरा, जनवरी–फरवरी, 2004, समीक्षक– राजनारायण बोहरे
8. साक्षात्कार, अगस्त 2002, साहित्य अकादमी मध्य·प्रदेश संस्कृति परिषद, समीक्षक–कान्ति कुमार जैन
9. साक्षात्कार, अगस्त– 2003, समीक्षक– कान्ति कुमार जैन
10. अकार, अंक– 2, जुलाई– 2001, समीक्षिका – डॉ0 प्रेमिला
11. पहल, अंक– 73, जनवरी–फरवरी 2003, समीक्षिका– रोहिणी अग्रवाल
12. सृजन समीक्षा, अंक – 2, अक्टूबर–नवम्बर–दिसम्बर, 2004